"बाँदा जनपद के ग्रामीण अधिवासों का भौगोलिक अध्ययन"

A Geographical Study of Rural Settlements of Banda District"

भूगोल विषय में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

२०००
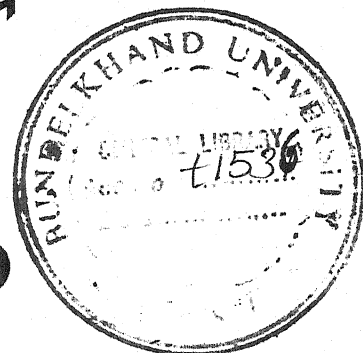
निदेशक
डॉ० कृष्ण कुमार मिश्र
रीडर, भूगोल विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अतर्रा (बाँदा)

शोधकर्ता
विचित्र वीर सिंह
शोधछात्र, भूगोल विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अतर्रा (बाँदा)

डॉ० कृष्ण कुमार मिश्र
रीडर, भूगोल विभाग
अतर्रा पोस्ट–ग्रेजुएट कालेज
अतर्रा (बाँदा), उ०प्र०

निवास
14/127, ब्रह्मनगर, अतर्रा
(बाँदा), उ०प्र०
 47573

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि विचित्रवीर सिंह द्वारा मेरे निर्देशन में "बाँदा जनपद के ग्रामीण अधिवासों का भौगोलिक अध्ययन" शीर्षक पर भूगोल विषय में पी–एच०डी० उपाधि हेतु अध्यादेश–7 के अन्तर्गत उल्लेखित समय में कार्य पूर्ण किया गया है ।

यह शोध प्रबन्ध ग्रामीण अधिवासों से सम्बन्धित एक मौलिक विकासात्मक अध्ययन है तथा मेरे निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में पूर्ण लगन व निष्ठा के साथ सम्पन्न किया गया है ।

(कृष्ण कुमार मिश्र)
शोध निदेशक

आभार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध श्रद्धेय डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र, रीडर भूगोल विभाग, अतर्रा, पी0जी0कालेज, अतर्रा (बाँदा) के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ । इस कार्य हेतु डॉ० मिश्र का आभार शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता । उन्होंने अपने व्यस्ततम् क्षणों में से समय निकालकर शोध को व्यवस्थित बनाने एवं यह रूप प्रदान करने का कार्य सम्पादित किया है। आप विद्वता, सरलता एवं सृजनात्मकता के अद्‌भुत मूर्ति हैं । अतः मैं ऐसे महान विद्वान के चरणों में श्रद्धावनत हूँ ।

मैं प्रो0 डी०एन०पाण्डेय प्राचार्य, अतर्रा पी०जी०कालेज अतर्रा, (बाँदा) एवं उन समस्त गुरूजनों का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे इस शोध कार्य में अपेक्षित सहयोग प्रदान किया है तथा अमूल्य सुझाव दिये । इसके अतिरिक्त मैं अध्ययन क्षेत्र के उन सभी लोगों का आभारी हूँ जिन्होंने क्षेत्रीय सर्वेक्षण एवं आंकड़ों के एकत्रीकरण में अपना अमूल्य समय व सहयोग दिया। विशेष रूप से मैं श्रद्धेया श्रीमती कुसुम मिश्रा का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मेरा सदैव उत्साहवर्धन किया तथा श्रद्धेय डॉ० मिश्र के मेधावी बच्चों पीयूष, प्रत्यूष तथा कु० प्रियंवदा एवं पुत्रवधू श्रीमती आराध्या के प्रति भी अपनी स्नेहिल कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे सदैव प्रेरणा तथा सहयोग दिया ।

मै श्री ज्ञान सिंह चौहान, श्री रणवीर सिंह चौहान,श्री कामेश्वर सिंह आदि विद्वान मित्रो के प्रति आभार प्रकट करता हूँ । साथ ही श्री आर0बी0 यादव जी का विशेष आभारी हूँ , जिन्होंने मानचित्रांकन के कार्य में सहयोग कर मुझे अनुग्रहीत किया ।

मैं अपने पूज्यनीय पिता श्री रामेश्वर सिंह व पूज्यनीया माता श्रीमती सुमित्रा देवी तथा अनुज श्री चतुर्भुज सिंह व जगतवीर सिंह तथा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती उर्मिला सिंह एवं प्रिय बच्चों का हृदय से आभारी हूँ जिनके सहयोग से यह कार्य समय से पूरा हो सका ।

अन्त मे मैं पी0डी0 कम्प्यूटर्स के प्रोपाइटर राजेश गुप्ता तथा कम्प्यूटर आपरेटर श्री बिहारी शरन निगम सिविल लाइन्स, बाँदा के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने समय से शोध प्रबन्ध का लेजर कम्पोजिंग का कार्य सम्पादित किया ।

दिनांक : 01.06.2000 **(विचित्रवीर सिंह)**

विषय-सूची

तालिका-सूची

LIST OF ILLUSTRATIONS

अध्याय-1

प्रस्तावना

(INTRODUCTION)

प्रस्तावना
(INTRODUCTION)

अधिवासों का अध्ययन मानव भूगोल की एक नवीनतम एवम् महत्वपूर्ण शाखा है जिसके अन्तर्गत सांस्कृतिक भूदृश्यावली के स्वरूप का अध्ययन, विश्लेषण व मार्ग दर्शन होता है । यह किसी स्थलखण्ड पर सभ्यता के इतिहास, विकास के स्वरूप व वस्तुस्थिति को प्रतिबिम्बित करता है । वस्तुतः ये व्यावहारिक भूदृश्य के क्रमबद्ध ज्ञान का वह विज्ञान है जो क्षेत्र में मानव के सम्बन्धों की भिन्नता व समरूपता को चित्रित करता है । जनसंख्या वितरण के सूक्ष्मतम् विवेचन से स्पष्ट होता है कि उपयुक्त भौगोलिक दशाओं वाले क्षेत्रों में संतुलित मानव बसाव, जबकि अनुपयुक्त भौगोलिक दशाओं वाले क्षेत्रों में बिखरें मानव बसाव मिलतें हैं, जो कि उस क्षेत्र के निवासियों के सामाजिक, आर्थिक व रहन-सहन के ढ़गों को प्रतिबिम्बित करतें हैं ।

सीडलंग्स ज्योग्राफी (Siedlungs Geographie) एक जर्मन शब्द है । अधिवास भूगोल शब्द इसी जर्मन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ व्यावसायिक प्रक्रिया में मानव द्वारा विकसित सांस्कृतिक भूदृश्यावली से होता है । ग्रीक शब्द इकेस्टिक्स (Ekistics) का अभिप्राय अधिवास विज्ञान से है । मानव के आवासन व कार्य स्थल के रूप में ग्रामीण अधिवास पूर्व एतिहासिक युग से ग्रामीण क्षेत्रों को इंगित करते हैं तथा मानव जीवन के आन्तरिक भाग का निर्माण करते हैं । ये मानव समाज के आवास व उत्पत्ति केंद्र हैं जो सम्पूर्ण भौगोलिक अध्ययन के केंद्र बिन्दु व जीवात्मा हैं ।

ग्रामीण अधिवास भूगोल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों एवं शोधकर्ताओं ने बहुत से लेख, शोधग्रन्थ व टीकायें लिखी है । रिटर को इस शाखा के जन्मदाता के रूप में सम्मान प्रदान किया जाता है । ग्रामीण अधिवासों के क्रमबद्ध अध्ययन का इतिहास बीसवीं शताब्दी के विद्वानों यथा ब्लास (1899) डिमांजिया (1920), ब्रून्स (1910) आदि से प्रारम्भ होता है जिन्होंने इस शाखा की वास्तिविक नींव डाली है। अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ के निर्देशन में ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों एवं इसके विविध पक्षों के अध्ययन के लिये ग्रामीण गृह आयोग का गठन हुआ जिसे ग्रामीण अधिवासीय भूगोल के अध्ययन का सुनिश्चित उद्गम कहा जा सकता है । इसका प्रथम प्रतिवेदन सन् 1928 में प्रकाशित हुआ जिसने भूगोलवेत्ताओं के दिल व दिमाक में हलचल

व जिज्ञासा पैदा कर दी लेकिन यह भी मानव अधिवासीय भूगोल की प्रायोगिक अवस्था ही थी । इसके पश्चात् विश्व के विभिन्न भागों में इस विषय पर काफी अध्ययन कार्य हुए लेकिन किसी ऐसे सर्वमान्य एवं सामान्य नियम का प्रतिपादन नहीं हुआ जिसको सब जगह प्रयोग किया गया हो या औद्योगिक भूगोल के स्थिति सिद्धान्तों से तुलनीय हो और राजनीतिक भूगोल की राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हों ।

विश्व के अनेक भागों की तुलना में भारत की भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक अवस्थाओं में बहुत बड़ी विभिन्नताएं देखने को मिलती हैं जिसके फलस्वरूप अधिवासीय स्वरूपों में भी विभिन्नतायें परिलक्षित होती हैं । अतएव वर्तमान अध्ययन, अधिवासीय अध्ययन में एक और कड़ी के रूप में भारतीय स्थानिक परिस्थितियों की वस्तुस्थिति को स्पष्ट करके कुछ नयें सिद्धान्तों के पटाक्षेप का निस्तारण है जिससे उलझी हुई ग्रन्थियों को सुलझाकर ग्राम्य वातावरण के सुखद स्वरूप को उद्धृत किया जा सकता हैं ।

ग्रामीण अधिवास संकल्पना (Concept of Rural Settlement)

अधिवास भूगोल की संकल्पना में मकानों की स्थानिक व्यवस्था, आवागमन मार्गों, औद्योगिक अवस्थिति, कृषि कार्य, भूमि उपयोग, पशुपालन स्थान, शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा प्राविधिक जानकारी, असामाजिक तत्वों तथा वातावरण के खतरें से सुरक्षा, मानव समाज के कल्याण के लिये किये गयें सभी कार्यों आदि को सम्मिलित किया जाता है । इनसे स्थान विशेष के परिवर्तनशील अधिवासीय गुणों के ज्ञान, उनकी अवस्थिति के कारण व उपरोक्त सभी के परिणाम तथा सांस्कृतिक एवं भौतिक सीमाओं के प्रभाव भी निर्देशित होते हैं । इसलिये अधिवासीय अध्ययन प्रकृति से पूर्णतया अनुशासित है जहाँ पर भूगोलवेत्ता बस्तियों के स्थानिक अवस्था का अध्ययन करता है । समाजशास्त्री सामाजिक समूह पर अध्ययन करता है । अर्थशास्त्री इसके आशान्वित अवस्थित आर्थिक लाभ का अध्ययन करता है। जबकि नियोजक इसमें सर्वोत्तम वातावरणीय अवस्थाओं के केन्द्रीय सीमांकन का प्रयास करता हैं ।

अधिवासीय संकल्पना मूल रूप से निम्नलिखित से सम्बन्धित है-

(क) प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग- वातावरण, मिट्टी, समय, स्थान, शक्ति, वस्तुओं, प्राविधिकी, धन, धरातल पर सर्वोत्तम मानव वसाव व वितरण के लिए अन्य संसाधन ।

(ख) **उपनिवेशन प्रतियोगिता एवं बसाव-** घनत्व, आर्थिक अवस्थाओं पर आधारित अधिवास का विकास एवं परिवर्तन, भूमि व्यवसाय का इतिहास और किसी प्रदेश में भोजन की उपलब्धता ।

(ग) **अधिवासीय विशेषताएँ-** जाति अधिवास, प्रकार, आकारिकी, दीवाल व छतों की निर्माण सामग्री, पेशेवर सेवाओं व सुविधाओं की उपलब्धता तथा ग्रामीण अधिवास का नगरीय अधिवासों में रूपान्तरण, ग्रामीण अधिवास के विकास एवं वृद्धि में स्पष्टतया महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता हैं ।

(घ) किसी निश्चित स्थान व समय में अधिवास उपलब्ध संसाधनों से गृह निर्माण, भोजन के उत्पादन, प्रकृति के प्रभाव से बचाव हेतु गृह तथा असामाजिक तत्वों (चोरों, डाकुओं) एवं जंगली जानवरों से सुरक्षा हेतु गृहों के सर्वोत्तम प्रयोग को अवसर प्रदान करता हैं ।

(ड.) ग्राम अधिवासों का नियोजित विकास, क्षेत्रीय आर्थिक विकास एवं जनकल्याण हेतु आवश्यक है ।

ग्रामीण अधिवास, समाज एवं व्यक्तियों की सूचनाओं के श्रोतों के अनुसार स्थानिक उपलब्ध संसाधनों के उपयोग से विकसित होतें है । ग्राम्य अधिवासों की उत्पत्ति की संकल्पना अपनी उत्पत्ति व विकास की प्रक्रिया में उपनिवेशीकरण, फैलाव व विभिन्न जातियों की प्रतिस्पर्धा से भी सम्बन्धित हैं । सामान्यतया अधिवास ऊँची भूमि, उपजाऊ क्षेत्र में, जहाँ पर जल की प्राप्ति सुलभ हो तथा जीवन सुरक्षित हो, विकसित होते हैं । इस तरह ग्राम्य अधिवास स्थायी कृषि व्यवस्था के साथ विकसित होते हैं ।

लूट का भय, जाति समूहों का प्रवास एवं एक राजनैतिक शक्ति की दूसरे पर कामयाबी, ऐतिहासिक समय में विभिन्न प्रकृति के अधिवासों की उत्पत्ति में अग्रणी भूमिका निभायी हैं । यादगार स्थान (चिन्ह), समय की वास्तुकलात्मक पद्धति, स्थान नाम, सीमान्त संगठन तथा ग्राम्य अधिवासों में जातीय समूहों के संघ का भी गांवों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान हैं । वस्तुतः जनसंख्या वितरण एवं घनत्व की संकल्पना अन्तर्सम्बन्धित है तथा इनका अध्ययन एक दूसरे को अलग करके सम्भव नहीं हैं । एक तरफ ऐतिहासिक समय से अधिवासों का अत्याधिक घनत्व मानव अधिवासों के लिये क्षेत्र की उपयुक्तता एवं कृषिगत सम्पन्नता पर आधारित क्षेत्रों में ही मिलता हैं । दूसरी तरफ निश्चित पारिस्थितिकीय अवस्था में

अधिवासों का वितरण, अधिवासों के समूहन या बिखराव को इंगित करता है। इसलिये ग्रामीण अधिवासों के प्रकार के विषय में यह दृष्टिकोण है कि सघन, अर्द्ध-सघन व बिखरे हुए अधिवास स्वरूप, स्थानिक विभिन्नता के द्योतक हैं ।

ग्रामीण अधिवासों का आकार व दूरी तथा विकास एक दूसरे से सम्बन्धित व अन्तः आश्रित हैं । प्रायः बड़े-बड़े अधिवासों के आपस की दूरी अधिक जबकि छोटे-छोटे अधिवासों की आपसी दूरी पास-पास होती है । अधिवासीय स्वरूप में वृद्धि से दूरी में कमी दृष्टिगत होती है ।

ग्रामीण आकारिकी पद्धति, स्वरूप, संकल्पना ग्रामीण अधिवासों के मापन से सम्बन्धित है जिसमें अधिवास के बाह्य स्वरूप मापन, गलियों व सड़कों की आन्तरिक संरचना आदि भी सम्मिलित हैं ।

गृह प्रकार की संकल्पना में दीवार व छत की निर्माण सामग्री, निर्माण ढंग, वास्तु कलात्मक शैली, कीमत तथा आंगन का स्थान, आन्तरिक बरामदा, छज्जा या बढ़ी हुई खपरैल, महिला एवं पुरूष निवास स्थल के सम्बन्ध में गृहों की क्षेत्रीय विभिन्नता, चिंतन के महत्वपूर्ण स्वरूप हैं । गृहों का घनत्व, व्यवसाय पर गृहों की कमी और मांग भी अध्ययन के महत्वपूर्ण पक्ष हैं ।

ग्रामीण अधिवासों की क्षेत्रीय पद्धति में अधिवासीय घनत्व की क्षेत्रीय अवस्था, जिसमें अधिवासीय गृह, अधिवास प्रकार तथा अधिवासों के अन्य तत्व भी सम्मिलित हैं ।

ग्रामीण सेवा केन्द्रों की संकल्पना के अन्तर्गत प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक सेवा केन्द्रों के साथ-साथ व्यापार एवं वाणिज्य में सेवा केन्द्रों/केन्द्रीय स्थानों की सभी पदानुक्रमीय श्रेणियां सम्मिलित हैं । वह केन्द्र जो अपने प्रभावित क्षेत्र को विभिन्न वस्तुए व सेवाएं प्रदान करतें हैं, सेवा केन्द्र कहें जाते हैं तथा इन केन्द्रों में सम्पन्न होने वाले कार्यो को केन्द्रीय कार्य कहा जाता है जबकि नगरीय क्षेत्र में सम्पादित कार्यो को नोड़ल कार्य की संज्ञा प्रदान की जाती हैं ।

सड़क के किनारे के अधिवासों में कुछ गृह सड़क के किनारे यात्रियों के ठहरने, खाने, पीने व धूम्रपान की सुविधा प्रदान करते हैं । भारत में सड़कों के किनारे पान व गुटखा की दुकानें एक सामान्य स्वरूप है । सड़क के किनारे के अधिवासीय स्वरूप से आवासीय अधिवास बहुत बड़े होते हैं जिनमें आवासीय घरों के साथ कुछ वाणिज्यिक कार्य भी होते हैं । इस तरह गाँव, पुरवों से विभिन्न कार्यो यथा कृषिगत, आवासीय, वाणिज्य तथा शिल्पकारी में बड़ा होता है ।

कस्बा तृतीयक कार्यकलापों, नित्य फुटकर बाजार, अधिक जनसंख्या का आकार, शैक्षिणिक संस्थाओं का विकास, उद्योग-धन्धों, अस्पताल, टेलीफोन एक्सचेन्ज, थोक बाजार आदि विभिन्न सुविधाओं से परिपूर्ण एक अधिवास होता है। जब कस्बे की आबादी एक लाख से अधिक हो जाती है या लगभग पहुँच जाती है, तब वह नगर कहलाने लगता है तथा जिन (नगरो) की जनसंख्या 10 लाख हो जाती है, उन्हें महानगर की संज्ञा प्रदान की जाती है । वस्तुत: अधिवासीय भूगोल में कुछ मिश्रित संकल्पनाये ऐसी है जो नगरीय व ग्रामीण अधिवास दोनों का स्वरूप प्रदर्शित करती हैं तथा जिनका विभाजन नगरीय एवं ग्रामीण में किया जा सकता है लेकिन इससे दोनों में अवरोध नहीं होना चाहिए । उदाहरणार्थ - ग्रामीण तत्वों के परिप्रेक्ष्य में यह सम्भव नहीं है कि सेवा केन्द्रों का पूर्णतया विभाजन किया जा सकें । अत: इनका अध्ययन नगरीय अध्ययन के साथ ग्रामीण अध्ययन को प्रमुखता देते हुए करना है । इस तरह का प्रयत्न अधिवासीय अध्ययन में केन्द्रीय स्थान अध्ययन में सहायक है । जैसा कि 1933 में वाल्टर क्रिस्टालर ने महत्वपूर्ण संकल्पना को जन्म दिया था । इस प्रकार का अध्ययन ग्रामीण अधिवास भूगोल के अध्ययन के विकास हेतु रोचक एवं न्यायिक क्रम के लिए आवश्यक है ।

भौगोलिक शब्द कोष में अधिवास एक बहुअर्थीय शब्द हैं इसको- एक स्थान जहाँ एक या अधिक व्यक्ति नियमित रूप से निवास करतें है, बताया गया है । अधिवास भूगोल के विषय का सम्पूर्ण स्वरूप 19वीं शताब्दी के जर्मन-फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं के प्रयोगों व अध्ययन से निखरा । जर्मन भूगोलवेत्ता कार्लरिटर ने भूगोल के विभिन्न क्षेत्रों पर टीकाएं की । ग्रामीण अधिवास भूगोल के सम्बन्ध में फ्रेडरिक (1908) द्वारा वर्णित प्रथम सन्दर्भ ग्रन्थ सूची से पता चलता है कि विभिन्न जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने गृह प्रकार विशेषरूप से उनका वितरण, निर्माण सामग्री तथा स्वरूप के सम्बन्ध में अध्ययन किया । मीटजेन (1895), श्लूटर (1899), ने अधिवासों की अवस्थिति, आकार एवं विकास के सम्बन्ध में चिन्तन किया । वेगन (1900), डिमाजिया (1920), लिफेवर (1945), आरोसो (1918), अहलमान (1928), हयूस्टन (1953), क्रिस्टालर (1938), बाउमैन (1926), डिकिन्सन (1967), कोहन (1951), हैगेट (1965), हडसन (1968,1969), स्टोन (1965), जार्डन (1966) ने अधिवासों की नई संकल्पना को जन्म दिया । हडसन (1969), ग्रासमैन (1971), वाय लुड (1961), मोरिल (1962), मिलर (1953), लैन्डिग (1947), आदि

ने अधिवास प्रक्रिया में क्षेत्रीय, सांस्कृतिक निष्कर्षों के कार्य का चित्रण किया। डाक्सिाडिस (1968) ने मानव अधिवास तन्त्र में ग्रामीण अधिवास भूगोल की स्थिति का एक सैद्धान्तिक मॉडल (चित्र संख्या 1.1) प्रस्तुत किया जो सराहनीय हैं ।

भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने पाश्चात्य भूगोलवेत्ताओं के विचारों का उदारवादी प्रयोग किया । देशपाण्डेय (1942), अली (1942), अहमद (1949), सिंह (1961) ने ग्रामीण अधिवास भूगोल का अर्थ, उद्देश्य तथा क्षेत्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया तथा बताया कि ग्रामीण गृह क्षेत्र भौतिक व सांस्कृतिक वातावरण की उपज होतें हैं ।

आर0एल0सिंह (1978), सिन्हा (1976), आर0बी0सिंह (1975), आर0के0मुकर्जी (1970), आर0सी0शर्मा (1972), शर्मा (1973), अयोध्या प्रसाद (1973), मिश्र (1994) ने अधिवास भूगोल के क्षेत्र की विस्तारपूर्वक चर्चा की । राष्ट्रीय भौगोलिक संस्था वाराणसी ने इस क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण कार्य किया है । ग्रामीण अधिवास भूगोल की नवीनतम परिभाषा इसी संस्थान की देन है । वस्तुतः ग्रामीण अधिवास भूगोल भूतल पर ग्रामीण वातावरण में मानव व्यवसाय की प्रक्रिया, प्रतिरूपों, कार्यों एवं उनके स्थानिक संगठनों से सम्बन्धित है (1975) । ठाकुर (1968) ने उत्तर बिहार के ग्रामीण अधिवासों पर अनेकों निबन्ध प्रकाशित किये हैं।

मण्डल (1980), सिंह (1978), तिवारी (1979), नन्दलाल (1980), मिश्र (1994) आदि ने ग्रामीण अधिवास भूगोल के विभिन्न पक्षों पर शोधात्मक कार्य प्रस्तुत किये हैं । इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में ग्रामीण अधिवासों के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में शोध कार्य हो रहें हैं ।

राष्ट्रीय विकास में ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन का महत्व (Improtance of The Study Of Rural Settlements In The National Development)

भारत एक कृषि प्रधान देश हैं जिसकी 70प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित हैं । विगत शताब्दी से ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात निरन्तर गिरता चला जा रहा है तथा नगरीय क्षेत्रों की उत्पत्ति एवं नगरों पर असाधारण बोझ बढ़ता जा रहा है । जिसके कारण नगरीय व्यवस्था जर्जर हो रही है तथा उसकी समस्याओं में सतत् वृद्धि हो रही है । इसका प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न जीवन स्तर, रोजगार की कमी, आवश्यक सुविधाओं का अभाव, असुरक्षा की भावना, निम्न शिक्षा स्तर, आर्थिक संसाधनों की कमी,

MODELS OF GENETIC APPROACH
(A) RETROGRESSIVE
?
Past
Present evidences
(B) RETROSPECTIVE
?
Past
Present evidences
(C) PROSPECTIVE
?
Past
Present evidences
Future
Fig.No. 1.1
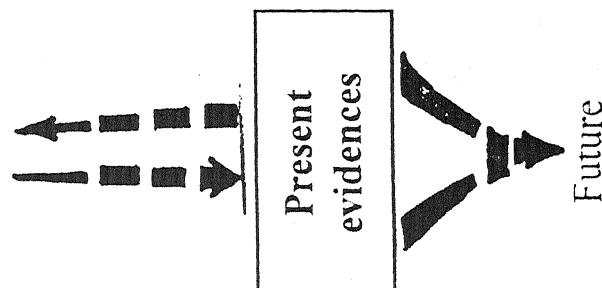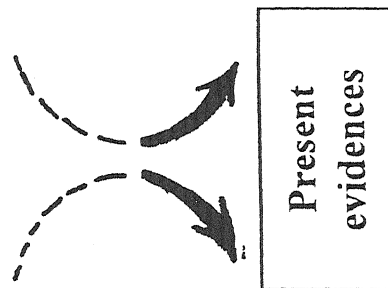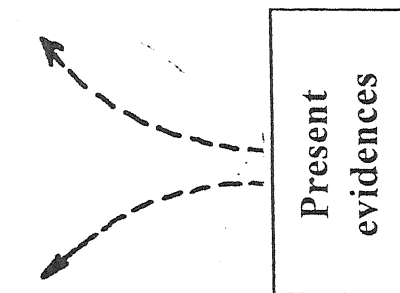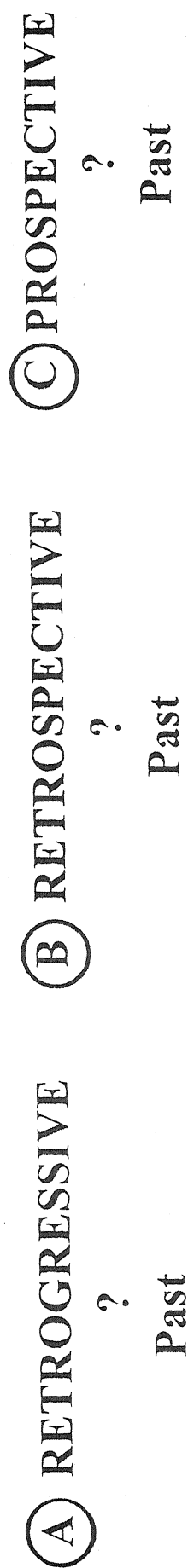
गरीबी, पिछड़ा हुआ ग्रामीण जीवन व सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति रही है ।

योजना आयोग के वर्तमान प्रतिवेदन के अनुसार भारत में 36 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहें हैं । जिसमे ग्रामीण एवं नगरीय प्रतिशत क्रमशः 52.2प्रतिशत व 36.8 प्रतिशत हैं । ऐसे व्यक्तियों के पास आधारभूत जीवन सुलभ वस्तुएं भी नहीं है ।

भारतीय ग्रामों की जर्जर अवस्था, उनके आवास एवं उनका आकार, जल निकास, निर्माण सामग्री, गलियों व रास्तों की अवस्था, छोटे एवं दूर-दूर फैलें खेतों की दशायें, सिंचाई के साधनों व नवीन प्राविधिकी का अभाव तथा उन तक पहुंचने वाले उपयुक्त रास्तों की कमी है । ग्रामों में 80 प्रतिशत व्यक्तियों के पास शौचालय जैसी परम आवश्यक सुविधाओं का पूर्णतया अभाव हैं । जहाँ पर पानी अधिक गहराई पर है, हैण्डपम्प सफल नहीं हैं, ऐसे गांवों में निम्न वर्ग के पास कोई भी जल स्रोत नहीं है । जहाँ पर पानी का जल स्तर ऊपर है, वहाँ पर 60 प्रतिशत व्यक्तियों के पास निजी जल स्रोत नहीं हैं । उन क्षेत्रों में जहाँ जल स्तर नीचा है, पेय जल का संकट विद्यमान हैं । आवासीय स्थानों की कमी व बड़े परिवार होने के कारण लगभग 40 प्रतिशत परिवार जानवरों के साथ ही निवास करतें हैं । उनके मकान जो एक कमरे, दो कमरे व आंगन वाले हो सकते है, में मानव निवास के साथ-साथ आवश्यक वस्तुओं व पशु योग्य खाद्यान्न तथा ईंधन भरा होता हैं । 20 प्रतिशत घर जो एक कमरे व खुले आंगन वाले होते है, में एक परिवार के सभी सदस्य पालतू पशु तथा आवश्यक वस्तुओं का संग्रह आदि होता है तथा सामाजिक क्रिया-कलापों को सम्पन्न करता हैं । 80 प्रतिशत व्यक्तियों के मकान घास-फूस व मिट्टी से निर्मित होते हैं तथा ग्राम की 60 प्रतिशत गलियां संकरी व तंग हैं तथा समस्त रास्तों व गलियों में गन्दा पानी खुला बहता रहता हैं । इससे इन रास्तों से निकलना तो मुश्किल होता ही है, साथ ही गन्दगी के आगार हो जाने के कारण यह बीमारियों के स्रोत सिद्ध होते हैं । इसी दयनीय अवस्था को देखकर ही महात्मा गांधी ने कहा था कि- ''भारत का सर्वांगीण विकास केवल ग्रामों के विकास पर ही निर्भर है । कृषि पदार्थ विपणन केन्द्रों की कमी व साहूकारों एवं अढ़ितियों की शोषण नीति तथा सरकारी उदासीनता के कारण कृषकों को अपनी उपज की सही कीमत न मिलने से जीवन स्तर तथा रहन-सहन नीचा रहता हैं । खेतों का आकार छोटा व उनकी दूरी अधिक हैं जिससे किसान

का अधिक समय रास्ते में ही नष्ट हो जाता हैं । उन्नतशील बीजों, औजारों व नवीन तकनीकी की जानकारी न होने से प्रति हेक्टेयर उत्पादन बहुत कम होता है। लघु एवं सीमान्त कृषकों की अधिकता होने के कारण आज भी भारतीय कृषक परम्परागत औजारों व कृषि विधियों का प्रयोग कर रहें हैं । अधिकतर समय खेत खाली पड़े रहते हैं तथा अन्नाप्रथा प्रचलित हैं ।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद व औद्योगिक नीति के परिणाम स्वरूप गांवों के उद्योग धन्धे लगभग मृतप्राय या नष्ट हो गये हैं । सूत कातने व कपड़े बुनने वाली जुलाहा जाति ने अपना व्यवसाय परिवर्तन कर लिया हैं । चर्मकार समुदाय अपना व्यवसाय बन्द करके कृषि पर निर्भर हो गया हैं । केवट जाति जो कि मछली उत्पादन में लगी हुई थी, नदियों व तालाबों के ठेके हो जाने से व्यवसाय विहीन हो गयी हैं । शिल्पकारी व कारीगरी कला, जो मुख्यतया लोहार व बढ़ई जाति करती थी, वनों को संरक्षित व प्रतिबन्धित करके खत्म कर दी गयी हैं । मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्हार भी गांवों में कम धन मिलने के कारण नजदीकी कस्बों में अपना धन्धा खोल लिये हैं । इसका कारण यह है कि कोई बड़ा उद्योग गांव में विकसित नहीं हैं । तेल व खरी उद्योग, जो कि तेली जाति कोल्हू में पेर कर किया करती थी, पूर्णतया खत्म हो गया हैं । आज ये कोल्हू अजायबघर में भी नहीं मिलते हैं । छत के लिये खपरैल उद्योग सामयिक है जो कि आवश्यकतानुसार लगभग पिछड़ी व दलित वर्ग की सभी जातियां बना लेती हैं । अनाज को भूनकर उसको स्वादिष्ट बनाने का काम भरभूँजा नामक जाति करती थी, उसने भी अपना व्यवसाय आर्थिक कारणों से बन्द कर दिया हैं । रस्सी बटने व मूंज बनाने का उद्योग, रेशे वाले पदार्थो के उत्पादन में कमी आने से कम हो गया हैं । इस पदार्थ का उपयोग प्रत्येक ग्रामीण को करना पड़ता है तथा उत्पादन भी ग्रामीण ही कर सकता हैं लेकिन विडम्बना यह है कि अधिकांश ग्रामीण इस आवश्यक वस्तु को शहर से प्राप्त करता हैं ।

गाँवों में कृषि के साथ पशुपालन दूसरा प्रमुख व्यवसाय हैं । भारत में जानवरों की संख्या विश्व के प्रत्येक देश से अधिक हैं लेकिन प्रति जानवर दूध उत्पादन विश्व में सबसे कम हैं । इसका प्रमुख कारण जानवरों की निम्न नस्ल, दयनीय अवस्था, पौष्टिक भोजन का अभाव व उचित देखरेख की कमी है । निम्न जीवन स्तर के कारण ग्राम्यवासियों का यह दूध भी आज नगरों व कस्बों में चला

आता है । वह केवल पशुपालक रह गये है न कि पशु पदार्थ उपभोक्ता । बछड़ों व बच्चों की उचित व्यवस्था न होने के कारण बैल कमजोर होते है । कृतिम गर्भाधान केन्द्र व उन्नतशील साड़ों का केवल उद्राहरण ही लिया जा सकता है । पशु सेवा केन्द्रों, पशु अस्पतालों की संख्या तो कम है ही, साथ में उनमें उपलब्ध सुविधाओं व डाक्टर का भी अभाव हैं ।

गांवों में मानव सुविधाओं का लगभग अभाव देखने को मिलता हैं। अध्ययन क्षेत्र की 35.7 प्रतिशत आबादी ही मात्र शिक्षित हैं । गांवों में यह मात्र 25.3 प्रतिशत ही हैं । शेष 74.7 प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं । शिक्षा ही विकास, उत्थान तथा परिवर्तन की धुरी होती हैं । आज भी अधिकांश भारतीय सैकड़ों वर्षो पुरानी मान्यताओं, किम्वदन्तियों पर आस्था व पूर्ण विश्वास करते है । रोगों को दैवीय प्रकोप समझते हैं । पुरानी घिसी पिटी मान्यताओं को जीवन का आधार मानते हैं तथा वैज्ञानिक प्रगति व आधुनिक तकनीकी पर सहज विश्वास नहीं रखते व कृषि में इसके प्रयोग को घबड़ाते हैं । उनका सबसे बड़ा अधिकारी लेखपाल होता हैं। जिसे वह समझते है कि वह उनकी कृषि भूमि का दाता हैं । शिक्षा संस्थाओं में बेसिक विद्यालयों की संख्या तो कुछ पर्याप्त कही जा सकती है लेकिन उनका प्रबन्ध, उनका समय, उनकी अध्ययन व्यवस्था व पद्धति अत्यन्त दयनीय हैं । एक अध्यापक सभी कक्षाओं को पढ़ाता हैं । यदि पाठशाला खुल गयी तो बच्चे यह समझते है कि हम स्कूल नहीं काँजी हाउस जा रहें हैं । 20 प्रतिशत बेसिक विद्यालयों के पास स्वयं का भवन नहीं हैं । लगभग 60 प्रतिशत स्कूल भवन मृतप्राय हैं, जिनमें स्कूल नहीं लगता । पेड़ों के नीचे प्राचीन भारत के ऋषि मनीषियों के आश्रमों की भाँति कक्षायें चलती हैं । ग्रामीण सर्वेक्षण के दौरान यह भी देखने को मिला कि प्राइमरी विद्यालयों के अध्यापकों के पास पढ़ानें का समय ही नही हैं । वह वर्ष भर किसी न किसी सर्वेक्षण में व्यस्त रहतें हैं ।

गाँवों में वैद्य, हकीम पर्याप्त मात्रा में हैं लेकिन वह रोगों के लक्षणों व रोगों से परिचित नहीं है । निजी दवाखाना भी 3-4 गांवों के बीच में मिल जाता हैं । जिसके डाक्टर किसी अस्पताल के कम्पाउन्डर या मेडिकल प्रैक्टीशनर का डिप्लोमा वाले होते हैं । अधिकांशतः झोला छाप डाक्टर गांवों में घूमते नजर आते हैं । आयुर्वेदिक, यूनानी या ऐलोपैथिक चिकित्सालयों का वितरण लगभग विकास खण्ड स्थल पर या कुछ अधिक मिलता हैं । इनमें भी चिकित्सा अधिकारियों की

नियुक्ति व उपस्थिति एक समस्या है । लगभग 20 गांवों में एक सरकारी चिकित्सालय, 50 गांवों में एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र देखने को मिलता है ।

मकान अधिकतर कच्चे है जिनका वितरण विषमतापूर्ण है । आर्थिक संसाधनों के वितरण के अनुसार कुछ व्यक्तियों के पास दो या अधिक मकान है जबकि कुछ व्यक्तियों के पास एक कमरे व खुले मैदान वाला गृह ही है । दलितों के पास मकानों की कमी है, यह एक कमरे वाले मकान में अपने सभी सामान, परिवार व जानवरों के साथ निवास करते है । भूमि वितरण में भी दोषपूर्ण व्यवस्था है । कुछ व्यक्तियों के पास काफी भूमि है । यह व्यक्ति बटाई की खेती करवाकर भी पर्याप्त अनाज कमा लेते है जबकि कुछ व्यक्ति भूमिहीन है, जो अधिक भूमि वाले व्यक्तियों की भूमि बटाई पर लेकर जीवन-यापन करते है । लगभग 20 प्रतिशत व्यक्ति भूमिहीन या लगभग भूमिहीन है ।

गांव व नगर एक दूसरे से सड़कों द्वारा जुड़े है । यह सम्बन्ध इस समय कच्चे रास्ते पूरा करते है जिनमे परिवहन के साधनों की कमी है, जिससे अधिकतर समय रास्ते में ही व्यतीत हो जाता है । इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हमारे गांव, जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के प्रधान स्रोत है । विभिन्न समस्याओं से ग्रसित है । अतः इस सम्बन्ध में सभी को सम्यक् रूप से विचार विमर्श करना चाहिए । प्रकृति की गोद में बसे यह गांव कभी नैसर्गिक सुन्दरता के आधार माने जाते थे किन्तु आज मानव द्वारा अपनी सांस्कृतिक मर्यादा के प्रतिकूल प्रकृति का अति दोहन, खनन तथा खुला दुरूपयोग करने से गांव विनाश की ओर बढ़ रहे है (मिश्र, 1999) ।

इन समस्त गम्भीर समस्याओं के कारण ग्रामीण अधिवासों का अध्ययन राष्ट्रीय महत्व का विषय हो गया है । अतः समन्वित ग्रामीण विकास व राष्ट्रीय विकास हेतु ग्रामीण अधिवासों का अध्ययन आज की देशकाल व परिस्थिति को ध्यान में रखकर करना अत्यन्त आवश्यक है । चूंकि अधिकांश जनसंख्या को शरण देने वाले गांवों की प्रगति पर ही देश की प्रगति निर्भर करती है । वर्तमान समय में गांवों के समग्र विकास हेतु पंचायतों को शासन द्वारा अधिक अधिकार दिये गये है लेकिन यह तभी सम्भव है जब गांवों के सर्वांगीण विकास पर ग्राम्यवासियों, समाजसेवकों, स्वयंसेवी संस्थाओं, राजनीतिज्ञों, वैज्ञानिकों की सम्मिलित रूप से सहभागिता हों ।

ग्रामीण अधिवासों के उपागम एवं सिद्धान्त (Approaches And Principles of Rural Settlements)

वस्तुतः किसी भी भू-दृश्य की जानकारी प्राप्त करने में ऐतिहासिक सन्दर्भ अपना विशेष महत्व रखतें हैं । मानवीय बस्तियां एवं मानव समूह अन्य जैविक तत्वों की भाँति उत्पन्न होते, विकसित होते तथा समाप्तप्राय हो जाते हैं । डाक्सियाडिस (1969) का मानना है कि यह प्रक्रिया अनेक घटकों द्वारा निर्धारित होती है फिर भी प्रादेशिक स्तर पर प्रतिरोध की मात्रा को प्रमुख घटक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है ।

जैसे किसी स्थान पर पहुंचने के लिये अनेक मार्गो का सहारा लिया जा सकता हैं, ठीक उसी प्रकार ग्रामीण अधिवास भूगोल का अध्ययन भी अनेक दृष्टिकोण से सम्भव हैं जिन्हें उपागम या विधियां कहा जा सकता है मिश्र (1994)। ग्रामीण अधिवास भूगोल के उपागम, अधिवासों की उत्पत्ति एवं विकास एवं वितरण, कार्यात्मक विभाजन एवं पदानुक्रम आकार एवं प्रतिरूप, ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विभिन्न आयामों, गृहीय भवनों एवं आवासीय समस्याओं तथा नियोजन आदि से सम्बन्धित हैं मण्डल (1978) । ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन में समान्यतया निम्न उपागमों का प्रयोग होता है ।

1. उत्पत्ति मूलक या विकासात्मक उपागम;

(अ) प्रतिगामी उपागम, (ब) सिंहावलोकन उपागम; तथा (स) आगामी उपागम ।

2. पर्यावरणीय उपागम;
3. कार्यात्मक उपागम;
4. आकारिकीय उपागम;
5. क्षेत्रीय अध्ययन उपागम;
6. गुणात्मक एवं परिमाणात्मक उपागम;
7. अन्तरानुशासित उपागम;
8. प्रणाली या तन्त्र विच्छेदन उपागम ।

उत्पत्ति मूलक या व्रिकासात्मक उपागम- इसे ऐतिहासिक उपागम भी कहते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत अधिवासों का अध्ययन समय के सन्दर्भ में किया जाता हैं । इसकी सहायता से बस्तियों का ऐतिहासिक विकास, मानवीयकरण तथा तद्जनित समस्याओं को आसानी से समझा जा सकता हैं । प्रथमतः इस

उपागम का मीटजेन (1895) ने प्रयोग किया । विकासात्मक उपागम को अधोलिखित तीन उपागमों में विभाजित किया जा सकता है, जो एक दूसरे के पूरक हैं (चित्र मॉडल संख्या 1.2) ।

(अ) **प्रतिगामी उपागम-** इस उपागम के पक्षधरों में ब्लाश (1954) का नाम महत्वपूर्ण है । इस विधि का प्रयोग विशेषत: अधिवासों के ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डालने के लिये किया जाता है ।

(ब) **सिंहावलोकन उपागम-** इस उपागम के माध्यम से हाल के इतिहास द्वारा वर्तमान काल की अवस्थाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता हैं । इस उपागम की विशेषता वर्णित करने वालों में रोगर डायन (1949) अग्रणी हैं ।

(स) **आगामी उपागम-** यह उपागम भविष्य के अधिवासों से सम्बन्धित हैं लेकिन भूत व वर्तमानकाल के अधिवास भविष्य की सम्भावित आवश्यकताओं का प्रतिबिम्बन कर सकते हैं । इस उपागम के प्रमुख वक्ता जुलार्ड (1964) हैं ।

2. **पर्यावरणीय उपागम-** इस उपागम में धरातलीय दशायें यथा- उच्चावच्च दशायें, वन भाग, जलवायु दशायें, जल प्राप्ति, भोजन, रोजगार, प्राविधिकी ज्ञान, कृषिगत व्यवस्थाएँ, खनिज विदोहन एवं उद्योग धन्धों के विकास आदि तत्वों को सम्मिलित किया जाता हैं । इन सभी तत्वों का किसी स्थान के ग्रामीण अधिवासों के प्रकार, पद्धति, विकास व छितराव पर गहरा प्रभाव पड़ता हैं । उपयुक्त पर्यावरणीय तत्व अकेले या सामूहिक रूप से किसी स्थान की ग्रामीण बस्तियों के विभिन्न आयामों को प्रभावित करते हैं ।

3. **कार्यात्मक उपागम-** इस उपागम में अधिवासों के कार्यो के अध्ययन पर बल दिया जाता हैं । इसे आर्थिक आधार उपागम भी कहा जाता हैं । ग्रामीण बस्तियों में सम्पन्न होने वाले विविध कार्यो एवं उनकी विशेषताओं के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी की जाती हैं । इस उपागम के अन्तर्गत ग्रामीण सेवा केन्दों के विभिन्न आयामों का अध्ययन महत्वपूर्ण हैं ।

4. **आकारिकी उपागम-**डिमान्जिया (1920) ने इस उपागम को मूलभूत उपागम माना । इनका मानना है कि किसी भी अधिवास की आकृति, स्थिति, अवस्थिति, कार्यात्मक संरचना उस अधिवास के उद्‌भव का सूचक होती हैं । इसके अन्तर्गत ग्रामीण अधिवासों की बाह्य एवं आन्तरिक संरचना का अध्ययन किया जाता हैं । प्रत्येक ग्रामीण बस्ती में चार भाग (समांगी भाग, संचरण भाग, केन्द्रीय

Community Scale	I	II	III	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII	IX	X	XI	XII
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
EKISTIC UNITS	ANTHOROPOS/Mon	ROOM	HOUSE	HOUSEGROUP	SMALL NEIGHBOUR-HOOD/Hamlet	NEIGHBOUR HOOD / Village	SMALL POLIS/Market Village	POLIS / Town	SMALL METROPOLIS	METROPOLIS	SMALL MEGALOPOLIS	MEGALOPLIS	SMALL EPEROPOLIS	EPEROPOLIS	ECUMENOPOLIS
ELEMENTS: NATURE															
ELEMENTS: Anphropos/Man															
ELEMENTS: SOCIETY		Rural Settlement Geography													
ELEMENTS: SHILLS															
ELEMENTS: NET WORKS															
GEOGRAPHIC DIMENSIONS															
Synthesis : Human Settlements	$3m^2$	15	50	0.005 Km^2	0.03	0.2	1.2	7	40	300	5 T	80 T	0.3 M Km^2	6 M	40 M
POPULATION	1	2	4	40	250	1.5 T	9 T	50 T	300 T	2 M	14 M	100 M	700 M	5 TM	30 TM

Fig.No. 1.2

भाग व विशिष्ट भाग) पायें जाते हैं । नियोजन की दृष्टि से यह उपागम अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

5. **क्षेत्रीय अध्ययन उपागम-** इस उपागम में प्रदेश को अधिवास क्षेत्रों में बांटा जा सकता हैं । अधिवासों का क्षेत्रीय अध्ययन उपागम राजनीतिक सीमाओं से प्रभावित नहीं हैं वरन् यह प्राकृतिक तत्वों का अनुसरण करता हैं । इस उपागम में विभिन्न इकाई का एक ही अध्ययन दुहराने की समस्या नहीं होती । उदाहरणार्थ- एक ही जलवायु कटिबन्धों में विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रफल वालें विभिन्न देश हो सकते हैं लेकिन उनकी उसी जलवायु कटिबन्ध पर क्षेत्रीय दशायें सर्वत्र समान होती हैं तथा केन्द्र की आवासन दशायें भी लगभग समान होती हैं ।

6. **गुणात्मक एवं परिमाणात्मक उपागम-** ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन में गुणात्मक एवं परिमाणात्मक उपागम का महत्वपूर्ण स्थान हैं । गुणात्मक उपागम में विभिन्न स्वरूपों को व्यक्तिगत रूप से देखकर अनुभाविक तथ्यों के आधार पर वर्णन किया जाता हैं जबकि परिमाणात्मक उपागम की मुख्य विशेषता सामान्य से विशिष्ट की ओर तार्किक एवं गणितीय विद्या से अग्रसर होना हैं । इसमें विविध परिस्थितियों से सम्बन्धित आंकड़ों का संग्रह कर उनका परीक्षण किया जाता हैं और तत्पश्चात् प्राप्त परिणामों को प्रस्तुत किया जाता है । बर्च (1967), स्टोन (1968), मुकर्जी (1970), तिवारी (1979) इत्यादि ने परिमाणात्मक उपागम को अपने अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान दिया हैं ।

7. **अन्तरानुशासित उपागम-** इस उपागम के अन्तर्गत विभिन्न शाखाओं एवं इससे सम्बन्धित अन्य विज्ञानों में प्रयोग की जाने वाली विधियों को ग्रामीण अधि ावास भूगोल की विभिन्न समस्याओं के अध्ययन के लिये प्रयोग किया जाता है। जैसे- अधिवासों के कार्यात्मक वर्गीकरण में उपयोग की जाने वाली विधि को फसल संयोजन प्रदेश के निर्धारण में प्रयुक्त किया जाता हैं ।

8. **प्रतिरूप एवं तन्त्र उपागम-** ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन में आधुनिकतम उपागमों में इसका महत्वपूर्ण स्थान हैं । प्रतिरूप के सम्बन्ध में हैगेट (1965) का मानना है कि प्रतिरूप वास्तविक परिस्थितियों की कुछ विशेषताओं के निदर्शन हेतु वास्तविकता का एक आदर्श निरूपण हैं । इनके माध्यम से किसी घटना, तथ्यों के समूहों की व्याख्या सरल, संक्षिप्त एवं शीघ्र हो जाती है क्योंकि अपाकुंचन करते समय इसके अन्तर्गत अनावश्यक बातों को छोड़ दिया जाता है । जिसके फलस्वरूप

सामान्यीकृत एवं सरलीकृत स्वरूप ही मिल पाते हैं (मिश्र, 1994)। प्रतिरूप निश्चय व अनिश्चयवादी (मिश्र, 1968) होते हैं । इसके अतिरिक्त वस्तुओं, गुणों तथा इनके अन्तर्सम्बन्धों तथा अन्योन्याश्रिताओं की विशेषताओं के विश्लेषण हेतु तन्त्र विधि का प्रयोग किया जाता है । पूर्ण स्वतन्त्र इकाई के रूप में कार्य करने वाले ग्रामीण अधिवासों को बन्द तन्त्र तथा बाहर से आदान-प्रदान रखने वाले ग्रामीण अधिवासों को खुले तन्त्र के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता हैं।

ग्रामीण अधिवासों के सिद्धान्त- भूगोलवेत्ता ग्रामीण अधिवासों का अध्ययन विभिन्न स्तर पर करते हैं । इनके द्वारा सबसे निचले स्तर पर संरचना के गुणों व विशेषताओं का विवेचन किया गया हैं यथा- खेतघर, खेत, बाड़ा, गृह तथा रास्ते । इन तत्वों पर विचार करके डाक्यिाडिस (1968) ने अधिवासों को चार भागों- रिहायसी घर, चौक, रास्ते तथा विशेष भाग में बांटा है (चित्रसंख्या-1.3) । दूसरे स्तर पर भूगोलवेत्ता इस संरचना के कार्यात्मक सहसम्बन्ध को व्यक्त करते हैं, जो ग्रामीण अधिवासों के अन्तर और गतिमान विशेषताओं को चित्रित करते हैं । प्रारम्भ में ग्रामीण अधिवास भूगोलवेत्ता मानव वसाव की प्रक्रिया, प्रतिरूपों, कार्यो तथा उनमे स्थानिक संगठनों से उसी प्रकार सम्बन्धित थे जैसा कि भू आकृति विज्ञान की संकल्पना स्थल रूप- संरचना, प्रक्रम व अवस्था के परिणाम से सम्बन्धित होते हैं।

उपर्युक्त दोनों अध्ययनों से ग्रामीण अधिवासों को उत्पत्ति के सिद्धान्त का विकास हुआ है । डाक्सियाडिस (1976) ने अधिवास निर्माण के पांच सिद्धान्तों का उल्लेख किया हैं ।

1. मनुष्यों के सम्भाव्य सम्पर्क का अधिकतमीकरण;
2. मानव प्रयत्नों का न्यूनतमीकरण;
3. व्यक्तियों के रक्षात्मक स्थान का अनुकूलतमीकरण;
4. वातावरण के साथ मानव सम्बन्धों के गुणों का अनुकूलतमीकरण;
5. उपरोक्त सभी सिद्धान्तों के संश्लेषण का अनुकूलतमीकरण ।

पहला सिद्धान्त मानव के शक्ति के सम्बन्धों का प्राकृतिक व सांस्कृतिक तत्वों के साथ अधिकतमीकरण है किसी भी स्वरूप के ग्रामीण अधिवास पड़ोसी के साथ शक्ति सम्बन्धों के अधिकतमीकरण का ही परिणाम होते हैं क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं । इसलिए यह असम्भव है कि वह सामाजिक सम्बन्धों से दूर एकान्त जीवन व्यतीत करे । यह सम्बन्ध जाति स्थानान्तरण के

PARTS OF HUMAN SETTLEMENTS

ANY SETTLEMENT CONSISTS OF :
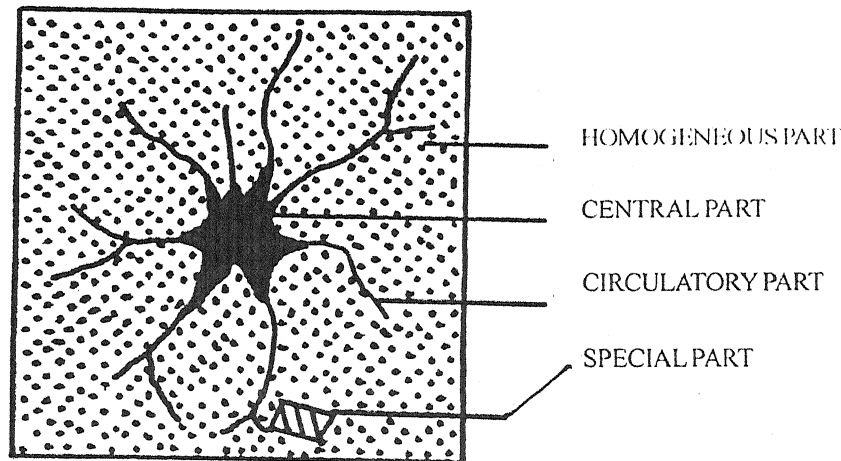
A VILLAGE CONSIST OF :
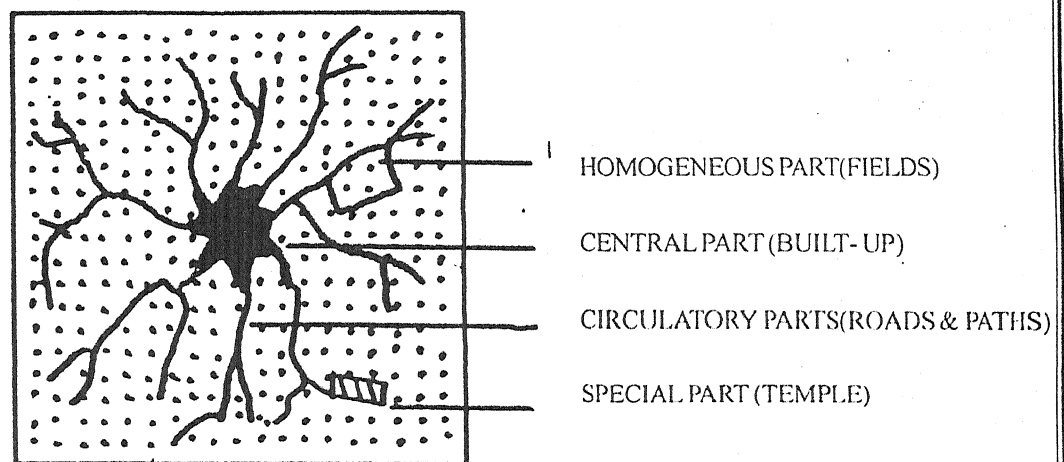
THE BUILT-UP AREA OF THE VILLAGE CONSISTS AGAIN OF :
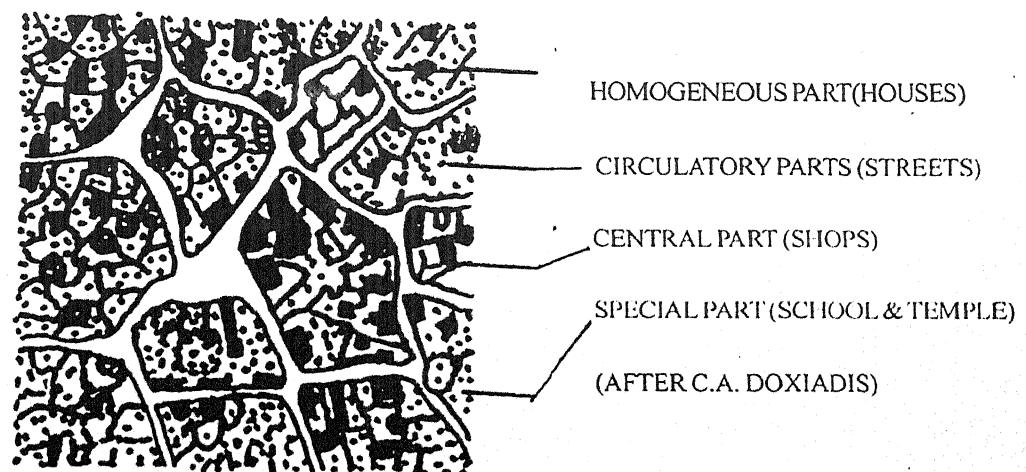
Fig. No. 1.3

स्वरूप, शादी स्थानान्तरण, रिश्तेदारी के सम्बन्ध, पड़ोसियों से दोस्ती पूर्ण सम्बन्ध या इसको प्रशासनिक कार्यालयों, स्वास्थ्य केन्द्रों, औद्योगिक संस्थानों, शैक्षणिक संस्थाओं, धार्मिक केन्द्रों आदि में देखा जा सकता है ।

ग्रामीण अधिवासों की रचना में प्रयत्नों के न्यूनतमीकरण का सिद्धान्त निवासियों में मनुष्य की वास्तविक व शक्ति सम्बन्ध प्राप्त करने में सबसे कम प्रयत्नों के सामान्य नियम के अनुसार सहायता करता है । जैसे – सघन एवं प्रकीर्ण अधिवास तन्त्र में कृषिगत गतिविधियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है ।कृषकों की इच्छा व कोशिश होती है कि आवास से पशु समुदाय के समूहन, कृषि औजारों को खेतों तक पहुँचाने की दूरी तथा खलिहान आदि की दूरी कम से कम हो, इसलिये वह सभी कार्य अधिकतम नजदीक ही करना चाहता है । सघन अधिवासों में कृषि भूमि के बीच में मानव पहुँचने, कृषि औजार ले जाने तथा जानवरों को चारागाह तक ले जाने की दूरी के अनुसार स्थापित करना बुद्धिमत्ता होती है । इस प्रकार अधिवास उन्हीं स्थानों पर सामान्यतया: स्थापित होते हैं जहॉ पर कार्य, यात्रा, जलापूर्ति, मनोरंजन, रोजगार अवसर, सामाजिक व वाणिज्यिक सम्बन्धी सुविधायें बहुत कम खर्च व कम परेशानियों से सम्भव हो सकती हैं ।

अधिवासों की बनावट का तीसरा सिद्धान्त मनुष्यों की सुरक्षात्मक स्थान के अनुकूलतमीकरण से सम्बन्धित है उदाहराणार्थ – अधिवासीय स्थिति के लिये अपेक्षाकृत उच्च भूमि की आवश्यकता होती है जहॉ पर बाढ़ का जल न पहुँच सके। सामाजिक सुरक्षा, चोर डाकुओं का भय व उनसे सुरक्षा तथा बीमारियों के बचाव हेतु सुरक्षात्मक स्थान की आवश्यकता है । वातावरण की जटिलताओं व प्रदूषण से बचाव भी आवश्यक होता है । ग्रामीण अधिवास स्थापना में मनुष्य के रक्षात्मक स्थान की आवश्यकता एक प्रमुख बिन्दु है चाहे अधिवास स्थायी व अस्थायी अथवा एक अकेला गृह या गृहों का समूह के रूप मे विकसित हो । किसी भी अधिवास स्थापना में मनुष्य के सुरक्षात्मक स्थान की आशा, सुरक्षात्मक विचारधारा यथा – चोर डाकुओं से भय, जलवायु के खतरे से सुरक्षा व बचाव, आग से सुरक्षा तथा अन्य दैवी प्रकोंपों से बचाव आदि महत्वपूर्ण है ।

चौथा सिद्धान्त वातावरण के साथ मानव सम्बन्धों के गुणों की आशा है । कहावत है कि प्रकृति मानव निवास को निर्देशित करती है लेकिन मनुष्य वातावरण को समायोजित व स्थानान्तरित करके जीवन को अधिक उपयुक्त बनाने

की कोशिश करता है । उदाहरणार्थ - मकानों के निर्माण के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग द्वारा, यथा - जल, खनिज, खाद्यान भण्डार, निर्माण नदी में बॉध बनाकर, नहर बनाकर व यातायात,संचार का विकास करके व जीवन को अधिक उपयुक्त बनाने की कोशिश करता है । जहॉ पर वातावरण की अवस्थायें विपरीत होती हैं वहॉ पर मानव जीने के लिये वातावरण के सम्बन्धों के साथ अनुकूलन करने की कोशिश करता है । सामान्यतयाः कहा जाता है कि ग्रामीण अधिवासों की अवस्थिति, प्रकार तथा पद्धति उस भूमि से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती है जिसका वह प्रयोग करते हैं, तथा आर्थिक उन्नति एवं निवासियों द्वारा ज्ञात प्राविधिकी का भी प्रयोग किया जाता है ।लेकिन प्राकृतिक बाधाओं तथा सामाजिक सुरक्षा की समस्या के कारण प्रत्येक स्थल मानव निवास के लिए उपयुक्त नहीं होता है । इसलिये पेयजल की उपलब्धता, यातायात सुविधाओं, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा बाजार की समीपता आदि वातावरण के साथ मानव सम्बन्धों के गुणों की आशा के महत्वपूर्ण संघटक प्रतीत होते हैं ।

पॉचवा सिद्धान्त उपरोक्त सभी सिद्धान्तों के एकीकरण की आशा से सम्बन्धित है । किसी स्थान के किसी निश्चित समय पर वातावरण के प्राकृतिक आर्थिक, सांस्कृतिक तथा जैविक तत्वों के साथ अधिकतम समायोजन से ग्रामीण अधिवासीय पद्धति को वास्तव में पूर्णता के साथ देखा जा सकता है । यह मानव की योग्यता व एकीकरण की क्षमता पर निर्भर है ।इसके अलावा आर्थिकी का प्रकार, उत्पादक या व्यवस्थात्मक संगठन तथा वितरण भी अधिवासों के स्वरूप व विशेषताओं को निर्धारित करने में सहायता प्रदान करते हैं (चित्र संख्या 1.4) ।

उद्देश्य एवं विषय वस्तु (Aims And Objectives)

ग्रामीण अधिवासों की विषय वस्तु एवं उद्देश्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर विचार प्रस्तुत किये है ।भारत की राष्ट्रीय भौगोलिक सोसायटी वाराणसी ने ग्रामीण अधिवासों के विभिन्न आयामों से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण प्रकाशन किये है तथा इनसे सम्बन्धित विषय क्षेत्र को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है जो वर्तमान समय में अधिवासों के विभिन्न आयामों के शोध कार्य में लगे शोधार्थियों के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करते है । शोधार्थी ने विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विषय वस्तु तथा ग्रामीण अधिवासों की विभिन्न विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये ग्रामीण बस्तियों का भौगोलिक अध्ययन निम्न उद्देश्यों के अन्तरगत किया है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

FIVE PRINCIPLES OF SETTLEMENT- FORMATION

ZATION OF POTENTIAL CONTACTS 2- AT A MINIMUM OF EFFORTIN TERMS OF ENERGY, TIME & COST

TIAIN CONMSIONS IN A
REA ....

MAN WILL SELLECT THE LOCATION
WHICH ALLOWS A MAXIMUM OF POTENTIAL
CONTACTS

20 30 40 .50 0 Km 10 20 30 40 50 0 Km 10 20 30 40 50
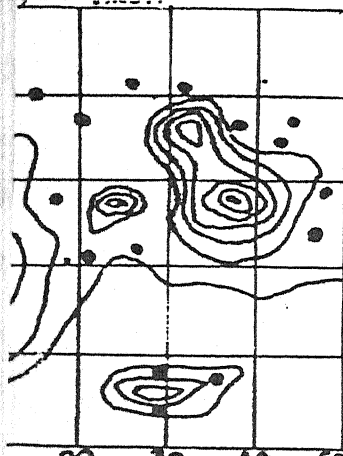
ZATION OF MAN'S
TIVE SPACE IF HE IS ALONE
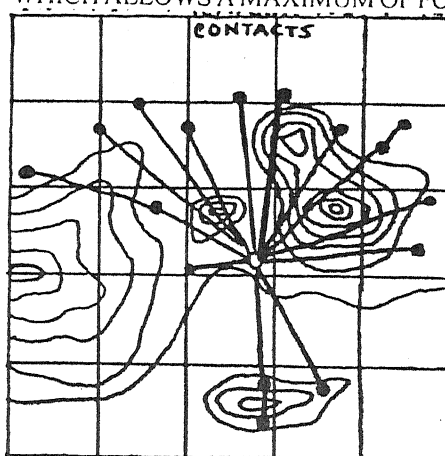
OR WITH OTHERS
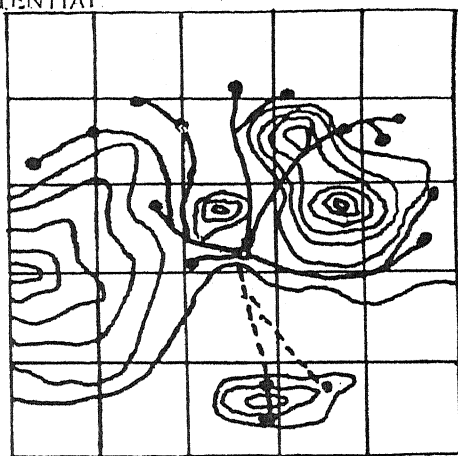
4- OPTIMIZATION OF THE QUALITY
OF MANS RELATIONSHIP WITH HIS
ENVIRONMENT

IER ELEMENTS
IER CONTACTS
CTION FOR PROTECTIVE PURPOSE

2 4 6 8 10 0 Km 10 20 30 40 50

NATURE
MAN
NETWORKS
SHELLS
SOCIETY
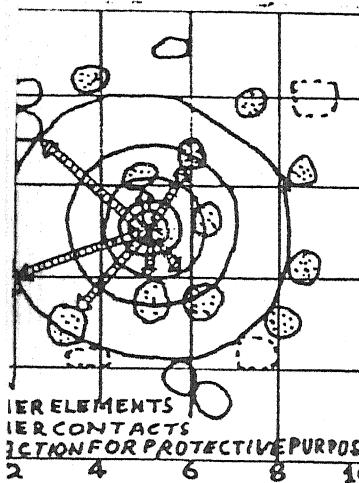
THE FIVE ELEMENTS OF HUMAN
SETTLEMENT ARE NOW OUT OF BALANCE
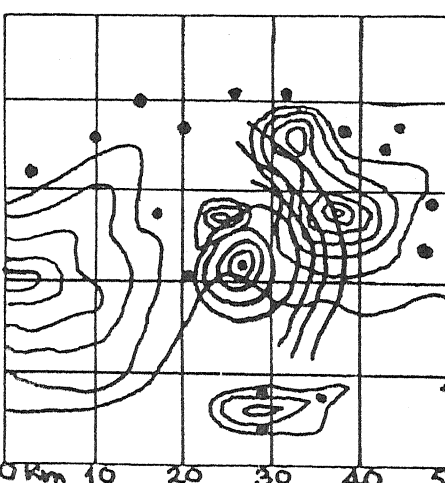
5- OPTIMIZATION IN THE SYNTHESIS OF
ALL PRINCIPLES
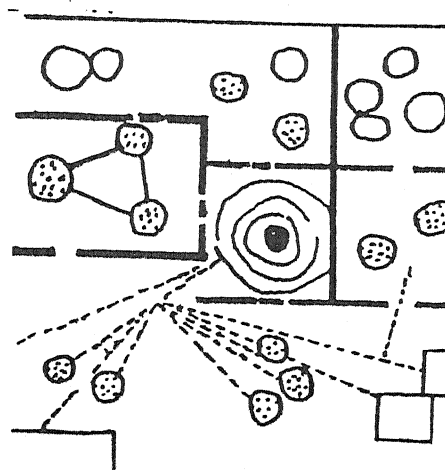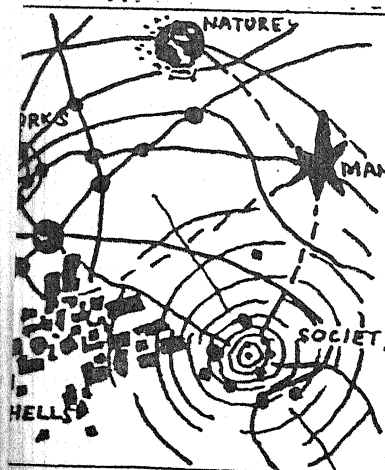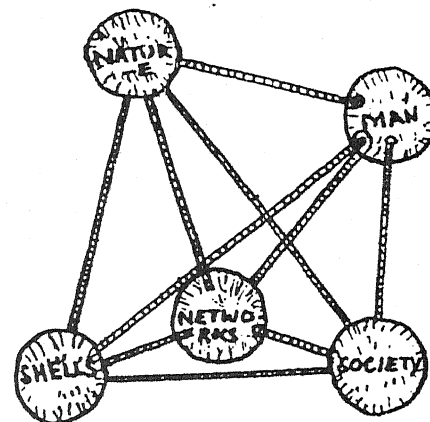
- MAN
- SOCIETY
- SHELLS
- HUMAN CONTACTS
- NATURE

,No. 1.4

After.C.A.Doxiabis

ग्रामीण अधिवास सामाजिक, आर्थिक, भौतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक तत्वों, जो समुदायों को विकसित करते हैं, के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में मानव समुदाय की सम्पूर्णता का अध्ययन है । इन तत्वों का प्रभाव गृह कार्य हेतु भौतिक आवश्यकताओं, शक्ति, आपूर्ति, परिवहन, संचार, जल उपलब्धता तथा सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा और कल्याण की सेवायें, शासन व्यवस्था पद्धति, सरकार, कानून तथा आर्थिक प्रबन्ध एवं कला हेतु - सांस्कृतिक सुविधाओं, मनोरंजन छुट्टी आदि तत्वों के द्वारा, कम किया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर जनसंख्या प्रवास वृद्धि, विस्थापित व्यक्तियों की पुर्नवास की मांग आदि कारक जो ग्रामीण अधिवासों की समस्यायें हैं, सम्पूर्ण अध्ययन की आवश्यकता व क्षेत्र को बढा देते हैं ।

स्थायी अधिवास सभ्य जीवन का स्वच्छ स्वरूप है । आवारा या भ्रमणकारी तथा अर्द्ध खानाबदोस व्यक्ति पूर्व ऐतिहासिक काल में अव्यवस्थित जीवन जीते थे । वे अपनी जीविका हेतु शिकार, वन्य खाद्य पदार्थ एकत्रीकरण, मत्स्य आखेट आदि पर निर्भर थे । स्थायी अधिवास उनकी समझ शक्ति के बाहर की बात थी । उस असभ्य व भ्रमणकारी जीवन पद्धति के परिवर्तित होने से स्थाई कृषि हेतु एक निश्चित स्थान पर निवास करने, कार्य करने के साथ स्थायी जीवन का उदभव हुआ । किसी भी क्षेत्र में अधिवासों की पद्धति तथा विशेषतायें, कृषि के संगठन और अभ्यास से घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है । इसका ऐतिहासिक उद्‌भव तथा मानव का सांस्कृतिक विकास भी इसी से प्रारम्भ हुआ हैं ।

किसी अन्य सांस्कृतिक स्वरूप की तरह, निवास स्थल भी समय तथा स्थान द्वारा उद्‌भूत हुये ।इसने अपने आपको अपने समय व अपने क्षेत्र की कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट किन्तु अनिवार्य गुणात्मक तत्वों को अन्दर रखा है । इस प्रकार इन्होनें हमें एक महत्वपूर्ण एकीकरण का उपलब्ध स्वरूप प्रदान किया जिसमें सांस्कृतिक भूदृश्यावली की अन्तर-क्षेत्रीय अस्थायी परिवर्तन पद्धति तथा अन्तर-क्षेत्रीय विशेषतायें परिलक्षित होती हैं । जब गुणों के आधार पर अधिवास का विस्तार अधिक होता है तथा निश्चित क्षेत्रों के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों में अन्तर बहुत बड़े होते हैं, तब उनमें से सभी विभिन्न क्षेत्रों के गुणों को सम्मिलित कर सकते है, जबकि प्राकृतिक संसाधन व आर्थिक विकास अधिवासों की वृद्धि व स्थापना का सम्पूर्ण स्वरूप है, अन्य कारण सांस्कृतिक भूगोल, इतिहास, सांस्कृतिक प्रक्रिया तथा सांस्कृतिक क्षेत्र एवं

स्थानीय महत्वपूर्ण कारक यथा - उच्चावच्च वितरण एकीकृत अन्तर तथा क्षेत्रीय विशेषतायें महत्वपूर्ण भाग हैं । अधिवासों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है । जनसंख्या की वितरण पद्धति के विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा ग्रामीण अधिवासों की दूरी व आकार के विशेष परिप्रेक्ष्य में है ।

ग्रामीण अधिवास मानव भूगोल के दो मूल तत्वों - गृह तथा रास्तों की व्यवस्था व समूहन का भूआकृतिक दिग्दर्शन है । इस तरह अधिवास भूगोल भूमि पर मानव व्यवसाय की प्रक्रिया में निर्मित सुविधाओं का वर्णन करती है इसकी पद्धति व वितरण एक तरफ आवास के बहुलक से सम्बन्धित है तो दूसरी तरफ प्राकृतिक कारकों यथा - जल आपूर्ति, ढाल, वन तथा बेकार भूमि से अन्तर-सम्बन्धित है । अधिवासों का वाह्य स्वरूप, समय, संस्कृति तथा क्षेत्र, के वस्तु कलात्मक शैली का दर्पण होता है । इसकी वितरण पद्धति भूदृश्य में अन्तर प्रगट करती है।

प्रस्तुत शोध परियोजना का मुख्य उद्देश्य बांदा जनपद की ग्रामीण बस्तियों के विविध पक्षों का भौगोलिक अध्ययन करना है । उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में स्थित यह एक अविकसित क्षेत्र है जहॉ इस विषय पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है ।

इस शोध परियोजना के अन्तर्गत अंग्राकित महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति करने का प्रयास किया गया है ।

1. बाँदा जनपद में प्राकृतिक, अर्थिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक संरचना का विवरण प्रस्तुत करना ।
2. बाँदा जनपद के ग्रामीण अधिवासों के उन्नयन हेतु किये जा रहें विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करना ।
3. बाँदा जनपद की ग्रामीण बस्तियों की उत्पत्ति एवं विकास का विश्लेषण प्रस्तुत करना ।
4. अध्ययन क्षेत्र की बस्तियो के प्रकार, वितरण, गृह प्रतिरूप, गृह प्रकार एवं गृह निर्माण कार्यत्मक गृहीय संरचना को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करना ।
5. अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार, घनत्व, दूरी और प्रकीर्णन आदि के विश्लेषण द्वारा वितरण प्रतिरूप का वर्णन करना ।
6. ग्रामीण बस्तियों की संरचना, प्रतिरूप एवं आकृति विश्लेषण तथा स्थानिक सम्बन्धों का सांख्यिकीय विधियों के आधार पर विश्लेषण करना ।

7. बाँदा जनपद के ग्रामीण सेवा केन्द्रो के विभिन्न आयामों की कार्यात्मक संरचना एवं जनसंख्या के मध्य सम्बन्ध आदि की समीक्षा करना ।
8. बाँदा जनपद में ग्रामीण अधिवासें के विकास हेतु संतुलित विकास योजना का प्रारूप तैयार करना ।

परिकल्पनाएँ (Hypotheses)

इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीण अधिवासों के समग्र अध्ययन हेतु निम्न परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं ।ग्रामीण अधिवासों से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों के विश्लेषणात्मक अध्ययन हेतु जिन मुख्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है, वह निम्नलिखित हैं ।

1. अध्ययन क्षेत्र में स्थित ग्रामीण अधिवासों का उद्भव एवं विकास, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा जातीय प्रक्रियाओं का फल है ।
2. ग्रामीण अधिवास न्यून, मध्यम एवं तीव्र गति से परिवर्तित हो रहे हैं ।
3. अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण गृह, स्थानिक क्षेत्र में उपलब्ध सस्ते पदार्थो द्वारा निर्मित हैं ।
4. ग्रामीण सेवा केन्द्रों के मध्य एक कार्यत्मक पदानुक्रम पाया जाता है ।
5. ग्रामीण अधिवास कार्य एवं आकार तथा आकार एवं बस्ती सूचकांक की दृष्टि से अन्त: आश्रित है ।
6. ग्रामीण निवासियों की स्थानिक पसदंगी क्षेत्र में वर्तमान तत्वों में निर्भर करती है ।
7. विभिन्न विकासात्मक योजनाओं के क्रियान्वयन के बावजूद आज भी गाँव अविकसित है ।

विधितन्त्र (Methodology)

प्रस्तुत शोध परियोजना के व्यवस्थित अध्ययन हेतु प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग किया गया है । अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीण अधिवासों के उद्भव एवं विकास, कार्य तथा कार्यात्मक संरचना, जनसंख्या, नियोजित विकास तथा कृषि के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित करने के लिये द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है । द्वितीयक आँकड़ें सांख्यिकीय प्रकाशनों जैसे विभिन्न दशकों (1901-1991) की जनपद जनगणना पुस्तिकाओं, ग्राम - नगर निदर्शनी, इलाहाबाद बैंक द्वारा प्रकाशित बाँदा जनपद की क्रेडिट योजना (1991-1994),

जनपद के सांख्यिकीय विभाग द्वारा प्रकाशित सांख्यिकीय पत्रिका (1991-1998) आदि से प्राप्त किये गये । इसके अतिरिक्त जनपद के विभिन्न कार्यालयों के विषय से सम्बन्धित ऑकड़ें प्राप्त किये गये हैं । अप्रकाशित सांख्यिकीय अभिलेखों से भी सूचनायें एकत्रित की गयी हैं जिनकी प्राप्ति विभिन्न कार्यालयों से, जैसे - ग्राम्य विकास अभिकरण, स्वास्थ्य विभाग, जिला विद्यालय निरीक्षक व सामुदायिक विकास केन्द्रों, जिला कलेक्ट्रेट तथा नगर एवं ग्राम्य नियोजन स्थानों द्वारा की गई है ।

ग्रामीण अधिवासों के विभिन्न आयामों से सम्बन्धित सैद्धान्तिक जानकारी हॉसिल करने के उद्देश्य से अनेकों शोध पत्र, भौगोलिक पत्रिकायें समाचार पत्र तथा पुस्तकों का अध्ययन किया गया है । ग्रामीण अधिवास के विकास, कार्य एवं कार्यात्मक प्रकृति, गृहीय संरचना, ग्राम्य आकारकी, ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विभिन्न आयामों तथा ग्रामीण अधिवासों की समस्याओं से सम्बन्धित प्राथमिक ऑकड़ें प्रश्नावलियों के माध्यम से चयनित ग्रामों में जाकर एकत्रित किये गये हैं । ऑकडों की सत्यता के परीक्षण हेतु ग्राम प्रधान, जूनियर व प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों, अनुभवशील व ग्राम्य विकास में रूचि रखने वाले लोगों व पंचायत सेवकों तथा ग्राम्य विकास अधिकारियों व लेखपालों से भी साक्षात्कार किया गया है ।

प्राथमिक आंकड़ों को एकत्रित करने के बाद आंकड़ों की गणना की गई । अनेकों सांख्यिकीय विधियाँ जैसे - सह सम्बन्ध, मानक विचलन आदि विधियों का उपयोग शोध परियोजना को पूर्ण करने के लिये किया गया है। इसके अलावा कुछ प्रतिरूपों का भी प्रयोग सैद्धान्तिक विश्लेषण के लिये किया गया। आंकड़ों की गणना व विभिन्न सांख्यिकीय विधियों से प्राप्त परिणामों को मानचित्रों एवं आरेखों द्वारा प्रस्तुत किया गया हैं । शोध क्षेत्र के मानचित्रों का निर्माण धरातल पत्रक एवं जनगणना विभाग से प्राप्त मानचित्रों के आधार पर किया गया है ।

पाठ योजना (Lesson Plan)

प्रस्तुत शोध परियोजना की विषय वस्तु को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

प्रथम अध्याय प्रस्तावना से सम्बन्धित है ।इस अध्याय में ग्रामीण अधिवासों की संकल्पना, राष्ट्रीय विकास में ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन का महत्व, ग्रामीण अधिवासों के उपागम व सिद्धान्त का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । ग्रामीण अधिवासों की परिभाषा, उद्देश्य, मुख्य परिकल्पनायें तथा अध्ययन में प्रयुक्त विधियों के

माध्यम से संकल्पनात्मक पक्ष स्पष्ट किया गया है । इसके अतिरिक्त क्षेत्र में उपलब्ध कुछ प्रमुख सुविधाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। ग्रामीण जनसंख्या की बहुलता तथा आर्थिक दृष्टि से अविकसित कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण अध्ययन क्षेत्र का चुनाव किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में अध्ययन क्षेत्र की प्रादेशिक संरचना का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । प्रस्तुत अध्याय को तीन उप विभागों - भौतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा जनसंख्या एवं परिवहन में विभक्त करके अध्ययन किया गया है । भूगर्भिक संरचना की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र भारत के दक्षिणी प्रायद्वीपीय पठार के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के उत्तरी भाग का एक हिस्सा होने के साथ-साथ गंगा यमुना के मैदान के सम्पर्क क्षेत्र में भी आता हैं । अतः इस भूभाग में पहाड़ी व मैदानी दोनों प्रकार की विशेषतायें पायी जाती हैं । अस्तु पहाड़ी एवं मैदानी क्षेत्रों की भौतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन किया गया है । इसके अतिरिक्त क्षेत्र में उपलब्ध विभिन्न अवस्थापनाओं का भी विश्लेषण किया गया है ।

तृतीय अध्याय ग्रामीण बस्तियों के उद्भव एवं विकास से सम्बन्धित है । इसे ग्रामीण अधिवासों के उद्भव एवं विकास के परीक्षण हेतु चार उप विभागों- प्राचीन ग्रामीण अधिवास, मुगलकालीन ग्रामीण अधिवास, ब्रिटिशकालीन ग्रामीण अधिवास एवं स्वतंत्रता के पश्चात ग्रामीण अधिवास में विभाजित किया गया है । इसके अन्तर्गत विभिन्न भौतिक एवं सांस्कृतिक कारकों की व्याख्या की गई है जो ग्रामीण अधिवासों के विकास व वितरण प्रतिरूप को प्रभावित करते हैं ।

चतुर्थ अध्याय ग्रामीण बस्तियों के प्रकार एवं वितरण प्रतिरूप से सम्बन्धित है जिसमें ग्रामीण बस्तियों की स्थिति एवं वितरण, बस्तियों के आकार, घनत्व तथा प्रकीर्णन की प्रकृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया हैं । साथ ही ग्रामीण बस्तियों के प्रकार एवं प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारकों का भी विस्तार पूर्वक परीक्षण किया गया हैं ।

पंचम् अध्याय ग्राम्य आकार संगठन एवं स्थानिक सम्बन्ध से सम्बन्धित है जिसके अन्तरगत सर्वप्रथम सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है, तत्पश्चात आकृति विश्लेषण के गुणात्मक व मात्रात्मक दृष्टिकोणों का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त मानव भूमि अनुपात एवं जाति क्रम विन्यास तथा ग्रामीण अधिवासों एवं कृषि क्षेत्रों के मध्य के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया है।

षष्टम् अध्याय में ग्रामीण निवास स्थल की व्याख्या की गई है ।ग्रामीण निवास स्थल संकल्पना, गृह प्रकार एवं उनका वितरण, गृह निर्माण में प्रयुक्त सामग्री, ग्रामीण अधिवासों की आकारिकी एवं प्रकार तथा निवास स्थल की सामान्य आकारिकी का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है ।

सप्तम् अध्याय ग्रामीण सेवा केन्द्रों से सम्बन्धित है । इसमें सर्वप्रथम केन्द्रीय स्थान एवं सेवाकेन्द्रों के संकल्पनात्मक पक्ष का विश्लेषण किया गया है । तत्पश्चात ग्रामीण सेवा केन्द्रों की कार्यात्मक संरचना एवं पदानुक्रम का परीक्षण किया गया है । इसके अतिरिक्त कार्यो एवं जनसंख्या तथा जनसंख्या एवं बस्ती सूचकांक के मध्य सम्बन्ध जानने का प्रयास किया गया है तथा सेवा केन्द्रों के प्रभाव क्षेत्र पर भी प्रकाश डाला गया है ।

अष्टम् अध्याय ग्रामीण अधिवासों के नियोजन एवं सारांश से सम्बन्धित है। इसमें सर्वप्रथम उर्पयुक्त अध्यायों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् अधिवासों के विकास से सम्बन्धित विभिन्न योजनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है । ग्राम्य विकास में सेवा केन्द्रों की प्रयोज्यता पर भी प्रकाश डाला गया है । ग्रामीण भूदृश्य परिवर्तन में ग्रामीण सेवाकेन्द्रों के योगदान की व्याख्या करने के साथ-साथ समन्वित ग्रामीण विकास को ध्यान में रखकर ग्राम योजना प्रतिरूप तथा गृह निर्माण योजना भी प्रस्तुत की गई है ।

References

1. Ahmed, E. (1942) : Rural Settlement in the United Provences of Agra and Oudh, Unpublished Ph. D. Thesis.
2. Ahlamann, H.W. (1928) : The Geographical Study of Settlement, Geographical Review, Vol. 18, PP. 93-128.
3. Ali, S.M. (1956) : The Towns of Indian Desert, Proceedings International Geographical Seminar, A.M.U,P. 285.
4. Aurousseau, M. (1918) : The Arrangement of the Rural Population in Pieardy and Flanders, Geographical Journal, Vol. 51, PP. 393-394.
5. Blache, P. Vidal De La. (1899) : De Habitation Surles Plateaux Limoneaux dur Nord de la France, Congress International de Geogrophie de Berlin Deuxieme Partie Berlin.

6. Bowman, I. (1926) : The Scientific Study of Settlements, Geographical Review, Vol. 16, PP. 647-653.

7. Brunhes, J. (1910) : La Geographic Humaine, Paris.

8. Bylund, E. (1960) : Theoretical Geography, Lund Studies in Geography Series, General and Mathematical Geography, No. 1, P. 142.

9. Christaller, W. (1938) : Siedlungs Geographie und Kommunal Wirtschaft, Petermann's Mitteilun Gen, Vol. 84, PP. 49-53.

10. Demangeon, A. (1920) : La Habitation Rural on France, Annales de Geographie, Vol. 21, PP. 352-375.

11. Despande, C.D. (1941) : Market Village and Fairs of Bombay, Karnatak: Indian Geographical Journal, 16, P. 327.

12. Dickinson, R.E. (1967) : The Scope and Status of Urban Geography : An Assessment Readings in Urban Geography, PP. 10-26.

13. Doxiadis, C.A. (1968) : Ekistics, An Introduction to the Science of Human Settlement. (New York : Oxford Uni. Press,) P. 222.

14. Friedrich, E. (1908) : Die Forteschrette der Anthopo-Geographie, Geographische Johrbuch, Vol. 31, Section 3-4, PP. 440-461.

15. Grossman, D. (1971) : Do We have a. Theory of Settlement Geography? Professional Geographer, Vol. 23, PP. 197-203.

16. Haggett, P. (1965) : Locational Analysis in Human Geography, London, Edward Arnold, P. 87.

17. Houston, J.M. (1953) : A Social Geography of Europe, London, P. 80.

18. Hudson, J.C. (1968) : Pattern Recognition in Impirical Map Analysis, Journal of Regional Science, Vol. 9, PP. 184-199.

19. Hudson. J.C. (1969) : A Locational Theory for Rural Settlement, A.A.A. G. Vol. 59, PP. 365-381.

20. Jordon, T.G. (1966) : On the Natural Settlement Geography, The Professional Geographer, Vol. 18, PP. 26-28.

21. Kohn, C.F. (1951) : The Use of Aerial Photogrphs in the Geographic

Analysis in Rural Settlements, Photogrammetric Engineering, Vol. 17, PP. 759-771.

22. Lefevre, M.A. (1945) : Principles, et Problems de Geographic, Humaine, Brusseles.
23. Mandal, R.B. (1980) : Introduction to Rural Settlements, New Delhi, p.29.
24. Meitzen, A. (1895) : A Wonderungen, Anbau, und Oslgermanes der Keltan, Romer, Finnen und Slawen, Berlin, 3 Volumes.
25. Miller, V.C. (1953) : A Quantitative Geomorphic Study of Drainage Basin Characteristics in the Clinch Mountain Area, Virginia and Tennessee.
26. मिश्र, कृष्णकुमार (1994) : अधिवास भूगोल,कुसुम प्रकाशन, अतर्रा ।
27. Morrill, R.L. (1962) : Simulation of Central Place Pattern over Time, Lund Studies in Geography, Series B, Human Geography No. 24.
28. Mukerji, A.B. (1970) : Spacing of Rural Settlement in Rajasthan, A Spatial Analysis.
29. NandLal, (1980) : Rural Settlements- Planning and Development, Chugh Publication, Allahabad.
30. Prasad, A. (1973) : Chota Nagpur - Geography of Rural Settlements, Ranchi University.
31. Schluter, O. (1899) : Bemerhungen, Zur Siedelunges Geographie, Geographische Zeitschrift, Vol. 5, PP. 65-84.
32. Sharma, R.C. (1972) : Settlement Geography of the Indian Desert, K.B. Publication, New Delhi.
33. Sharma, G.R. (1973) : Mesolithic Lake Culture in the Ganga Valley, India- Proc. Pre. Hist. Society, Vol. 39, PP. 129-146.
34. Singh, R.B. (1975) : Rajput Clan Settlement in Varanasi District, N.G.S.I. Research Publication, No. 12, P. 134.
35. Singh, R.L. (1961) : Meaning, Objectives and Scope of Settlement Geography, Nat. Geog. Journal of India, Vol. 7, PP. 12-20.
36. Singh. R.L. and Singh, R.N. (1968) : Eastern U.P. in India : Regional Studies, Edited By R.L. Singh.

37. Singh. R.L. and Singh, R.P.B. (1978) : Spatial Planning in Indian Perspective : An Approach Toward Theory and its Application (Varanasi, N.G.S.I.), P. 12.

38. Sinha, V.N.D. (1976) : Chota Nagapur Plateau : A Study of Settlement Geography, New Delhi, PP. 72-75.

39. Stone, K.H. (1965) : The Development of the Focus for the Geography of a Rural Settlements ,Economic Geoeraphy. Vol.41, P. 347.

40. Tiwari, R.C. (1979) : Spatial Distribution and Types of Rural Settlements in the Lower Ganga-Yamuna Doab, National Geographer,Vol. 14, No. 2, PP. 129-146.

41. Wagner, H. (1900) : Lehrfush der Geographie, Hannauer, PP. 752-789.

अध्याय-२
प्रादेशिक-संरचना
(REGIONAL- STRUCTURE)

प्रादेशिक संरचना
(REGIONAL STRUCTURE)

स्थिति एवं विस्तार

उत्तर प्रदेश की दक्षिणी सीमा पर स्थित अध्ययन क्षेत्र बांदा जनपद (इस जनपद में वर्ष 1998 में दो जनपद बन गयें है- बांदा तथा चित्रकूट) का विस्तार 24^0 34' उत्तरी अक्षांश से 25^0 55' उत्तरी अक्षांश तक तथा $80^00.7'$ पूर्वी देशान्तर से 81^0 55' पूर्वी देशान्तर तक है । अध्ययन क्षेत्र के पूर्व में इलाहाबाद, पश्चिम में हमीरपुर तथा उत्तर में फतेहपुर जनपद स्थित हैं (चित्र संख्या 2.1) । इसके अतिरिक्त इसकी दक्षिणी सीमा मध्यप्रदेश राज्य के रीवा, सतना, पन्ना तथा छतरपुर जनपदों द्वारा निर्धारित होती है । अध्ययन क्षेत्र का विस्तार पूर्व से पश्चिम 147 कि0मी0 तथा उत्तर से दक्षिण 104 कि0मी0 है । ऐतिहासिक, भूगर्भिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह बुन्देल खण्ड का अभिन्न अंग है । इसका कुल विस्तार 7624 वर्ग कि0मी0 है जिसमें 7578 वर्ग कि0मी0 पर ग्रामीण क्षेत्र का विस्तार है । वर्तमान समय में अध्ययन क्षेत्र दो जनपदों, बाँदा व चित्रकूट में विभक्त है । बाँदा जनपद में 4 तहसीलें- बाँदा, बबेरू, अर्तरा, व नरैनी हैं । चित्रकूट जनपद में कर्वी व मऊ तहसीलें हैं । ग्रामीण सामुदायिक विकास को ध्यान में रखकर अध्ययन क्षेत्र बाँदा जनपद में नरैनी, महुआ, कमासिन, बबेरू, बिसण्डा, जसपुरा, तिन्दवारी, बडोखर खुर्द व चित्रकूट जनपद में चित्रकूट, पहाड़ी, मानिकपुर, मऊ, रामनगर विकास खण्डो में विभजित किया गया है । अध्ययन क्षेत्र में कुल 1344 ग्राम हैं जिनमें 3 वन ग्राम सम्मिलित है । कुल आबाद ग्राम 1207 हैं जो तालिका संख्या-2.1 एवं चित्र संख्या 2.2 से स्पष्ट है ।

भूगर्भिक संरचना एवं धरातल (Geological Structure and Relief)

अध्ययन क्षेत्र चित्रकूट व बांदा जनपद गंगा-यमुना के विस्तृत मैदान एवं दक्षिण पठारी भाग के मिलन बिन्दु पर स्थित है। जिसमें एक तरफ कैम्ब्रियन युगीन अति प्राचीन शैले विद्यमान हैं तो दूसरी तरफ नदियों द्वारा लायी गयी जलोढ़ मिट्टी के निक्षेप से समतल मैदानी भाग स्थित है (चित्र संख्या 2.3) । इस समतल मैदानी भाग में जलोढ़ निक्षेपित मिट्टी की गहराई 1046 फीट तक हैं। अध्ययन क्षेत्र का दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी भाग आर्कियन युग की प्राचीनतम शैलों से बना हुआ है । नरैनी तहसील में तरौंहा, कालिंजर एवं पचोखर के आस-पास बिखरे हुए रूप

तालिका संख्या- 2.1

अध्ययन क्षेत्र में विकास खण्ड एवं उनका क्षेत्रफल तथा ग्रामों की संख्या (1991)

जनपद	विकास खण्ड	कुल क्षेत्रफल वर्ग कि0मी0	कुल ग्राम	आबाद ग्राम	औसत ग्राम क्षेत्रफल वर्ग कि0मी0
बाँदा	नरैनी	602.78	158	146	4.128
	महुआ	412.73	133	118	3.497
	कमासिन	527.79	76	75	7.037
	बबेरू	607.22	84	80	7.590
	बिसण्डा	306.73	57	57	5.381
	जसपुरा	409.32	45	45	9.096
	तिन्दवारी	597.95	89	79	7.569
	बड़ोखर खुर्द	671.70	76	72	9.329
चित्रकूट	चित्रकूट	508.79	144	128	3.982
	पहाड़ी	580.85	150	123	4.722
	मानिकपुर	1003.89	114	107	9.382
	मऊ	405.86	122	100	4.858
	रामनगर	338.88	93	73	4.642
	योग	7054.49	1341	1203	
	वन ग्राम	583.86	3	3	
	कुल योग	7578.35	1344	1206	

स्रोत- सांख्यकीय पत्रिका, बाँदा जनपद, 1997 ।

में बुन्देलखण्ड नीस के शैल दृष्टिगत होते हैं (बाँदा गजेटियर, 1977)। अपक्षय व अपरदन के फलस्वरूप डकन ट्रैप का यह प्राचीनतम हिस्सा आज अपनी मूल अवस्था में न रहकर बल्कि स्थान-स्थान पर घिसकर सपाट हो गया है । इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में धरातलीय विषमता विस्तृत रूप में दृष्टिगोचर होती है । विन्ध्यन क्रम उत्तर के अलावा बुन्देलखण्ड ग्रनोइट के चतुर्दिक अर्द्धवृत्तकार माला के रूप में विस्तृत है (सक्सेना, 1971) । इस क्रम की चट्टाने मुख्यत: बाँदा जनपद की नरैनी, अतर्रा एवं मऊ तहसीलों में फैली हैं । ऐतिहासिक काल से ही सुन्दर इमारती पत्थर के भण्डार

400 0 400
CHINA
PAKISTAN
INDIA
STUDY AREA
KALPI
YAMUNA. R.
GANGA R.
RAEBARLI
FATEHPUR
YAMUNA. R.
ALLAHABAD
BANDA
STUDY AREA
KEN. R.
MAHOBA
CHHTRAPUR
PANNA
SATNA
RAILWAYS
HIGHWAYS
RIVER
26
25
25
80°
81°
KM 10 5 0 10 20 30 KM
Fig. No. 2.1

ADMINISTRATIVE SET-UP
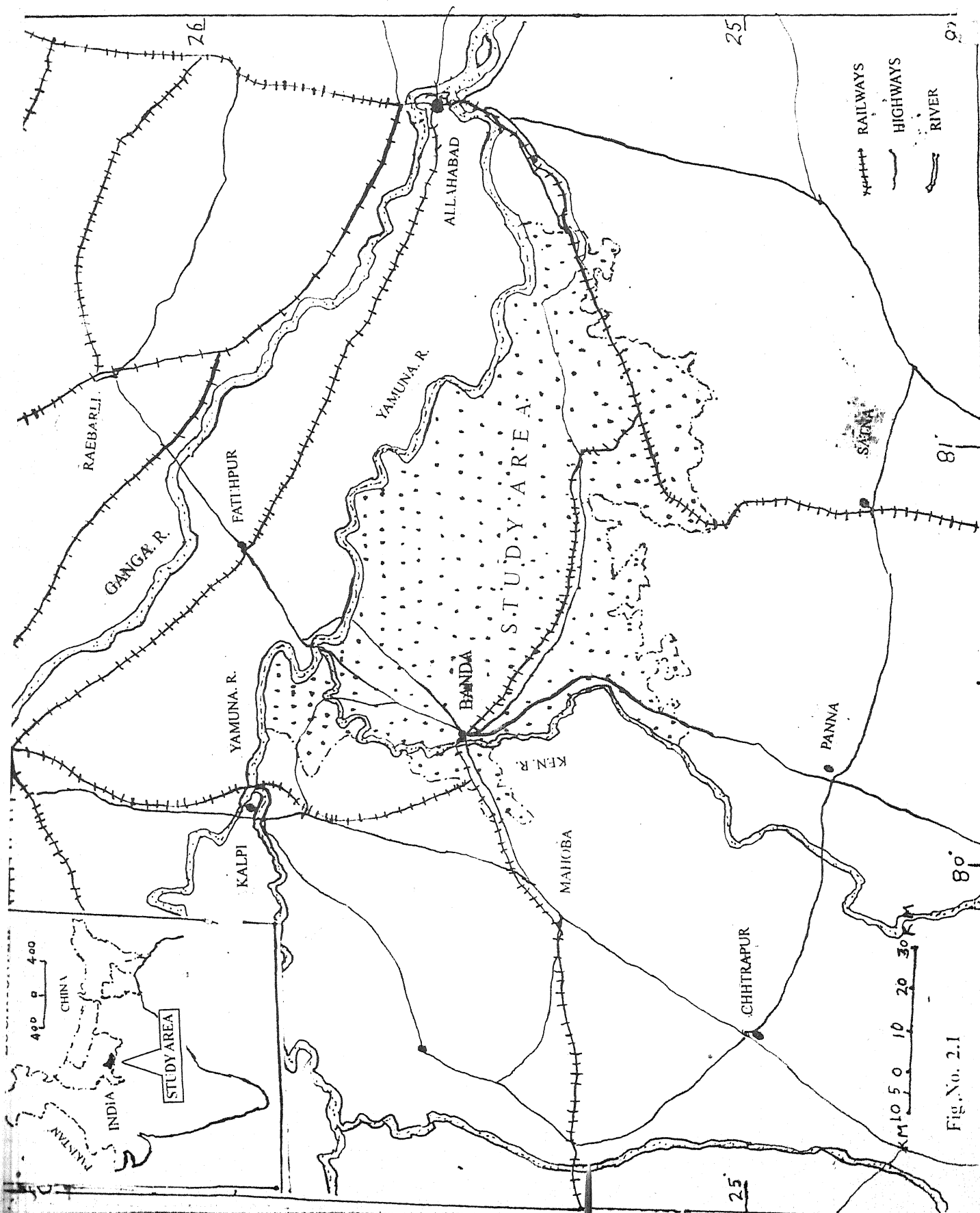
Fig. No. 2.2
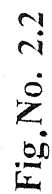
DISTRICT - BANDA
Geology
N
S
Alluvium Dun Gravels
Bundelkhand GraniteGneisses
Vindhyan Rocks- Curnool System
Kaimur Series
5 0 5 10 15 20

होने के कारण विन्ध्यन क्रम के बलुवा पत्थर आर्थिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण रहे हैं। स्पेट (1967) के मतानुसार विन्ध्यन क्रम के बलुआ पत्थर से सुन्दन पत्थर शायद विश्व में कहीं नहीं पाए जाते हैं । अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भाग में केन एवं पयस्वनी नदियों द्वारा निर्मित कन्दरायें अपना विशेष स्थान रखती हैं । ग्राम मंगावन के समीप बालुकायुक्त चट्टानों में पयस्वनी द्वारा निर्मित गहरी एवं संकरी कन्दरायें इसका प्रमुख उदाहरण हैं । बुन्देलखण्ड श्रेणी की ऊंचाई 400 फीट से 2000 फीट तक है । इस क्षेत्र की औसत ऊँचाई समुद्र तल से 1000 फीट के लगभग है । विन्धयन श्रेणी की ऊँचाई पूर्व से पश्चिम की ओर जाने पर बढ़ती जाती है । इसकी ऊँचाई कभी भी मैदानी भाग की औसत ऊंचाई से 500 फीट से अधिक नहीं पायी जाती है । पन्ना श्रेणी अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी सीमा पर पूर्व से पश्चिम विस्तृत है जिसकी ऊंचाई विन्ध्यन श्रेणी व पन्ना श्रेणी के मध्य स्थित पठार की सामान्य ऊंचाई से 500 फीट से अधिक है । इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में यत्र-तत्र पहाड़ियाँ पायी जाती हैं तथा धरातल काफी ऊबड़-खाबड़ है (चित्र संख्या 2.4) ।

अध्ययन क्षेत्र का उत्तरी एवं उत्तरी पश्चिमी भाग मैदानी है जो नदियों द्वारा जमा की गयी जलोढ़ मिट्टी द्वारा निर्मित है । अध्ययन क्षेत्र के इस जलोढ़ निक्षेप को दो भागों में बांटा जा सकता है ।

1. बांगर
2. खादर

वस्तुतः बांगर भूमि उच्च भूमि को कहते हैं जहाँ बाढ़ का प्रभाव नहीं हो पाता जबकि खादर का अर्थ निम्न भूमि से है जहाँ प्रति वर्ष बाढ़ का पानी पहुंच जाता है । अध्ययन क्षेत्र का मैदानी ढ़ाल दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर है। समुद्र तल से इस भाग में स्थित पैलानी की ऊंचाई 112 मीटर, पूर्वी मैदान में अवस्थित कर्वी की ऊंचाई 132 मीटर तथा राजापुर की ऊंचाई 104 मीटर है ।

भ्वाकृतिक विभाग (Physiographic Divisions)

स्थलाकृतिक विशेषताओं एवं नदियों के आधार पर अध्ययन क्षेत्र को निम्नलिखित भ्वाकृतिक विभागों में विभक्त किया जा सकता है (चित्र सं0 2.5)।

1. केन, चन्द्रावल मैदानी भाग;
2. गडरा व बागै निम्न भूमि क्षेत्र;

3. अपखण्डित निम्न भूमि क्षेत्र;
4. विन्धयन उच्च भूमि क्षेत्र ।

केन, चन्द्रावल मैदानी भाग- यह भाग अध्ययन क्षेत्र के पश्चिमी एवं उत्तरी-पश्चिमी भाग में स्थित है । इसमें केन व चन्द्रावल नदियों ने उत्पादक भूमि का अपरदन कर दिया है जिससे अधिकाशतः भूमि का स्वरूप ऊबड़-खाबड़ हो गया है । केन नदी द्वारा प्रभावित दक्षिणी भाग पठारी है, जहाँ पर यत्र-तत्र टीले व उच्च भूमि भी दृष्टिगोचर होती है । उत्पादन की दृष्टि से यह कृषि क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसके अधिकांश दक्षिणी-पश्चिमी भाग में कंकरीट मिट्टी पायी जाती हैं । नदियों के किनारे खादर भूमि में उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी मिलती है, जो उत्पादन की दृष्टि से अत्यधिक महत्व की भूमि हैं ।

गड़रा-बागै निम्न भूमि क्षेत्र- इस क्षेत्र में बांदा जनपद के तिन्दवारी, महुवा, बड़ोखर खुर्द विकास खण्ड का पूर्वी भाग, बिसण्डा, बबेरू, कमासिन एवं नरैनी विकास खण्ड का अधिकतर भाग सम्मिलित है । यह समतल मैदानी क्षेत्र हैं जो अत्यधिक उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी से निर्मित हैं । इसमें विभिन्न प्रकार की फसलें यथा- धान, गेंहूँ, मसूर, सरसों आदि उगायें जातें हैं । पर्याप्त मात्रा में गन्ना का उत्पादन भी इस क्षेत्र में होने लगा है । यह क्षेत्र बांदा जनपद का प्रमुख धान उत्पादक क्षेत्र है जो उपजाऊ मिट्टी से बना हुआ हैं ।

अपखण्डित निम्न भूमि क्षेत्र- यह अपखण्डित निम्न भूमि क्षेत्र चित्रकूट जिले में कर्वी व मऊ तहसील के निम्न भूमि (उत्तरी भाग) पर विस्तृत हैं । उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाली नदियाँ यथा- बागै, पयस्वनी, गुन्ता द्वारा इसका निर्माण हुआ है । उत्तर में यमुना नदी द्वारा निर्मित जलोढ़ मिट्टी का क्षेत्र हैं । यहाँ पर विस्तृत रूप में कृषि की जाती हैं । उत्पादन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण भाग हैं । इस क्षेत्र के दक्षिणी भाग में यत्र-तत्र बिखरी हुई पहाड़ियाँ देखने को मिलती हैं, जो विन्धयन श्रेणी का अंग हैं ।

विन्धयन उच्च भूमि क्षेत्र- अध्ययन क्षेत्र में विन्धयन उच्च भूमि नरैनी तहसील के दक्षिणी-पश्चिमी भाग से चित्रकूट तहसील के पूर्वी-दक्षिणी भाग (मानिकपुर विकासखण्ड) तक विस्तृत एक पेटी में हैं । इस क्षेत्र में विन्धयन श्रेणी की पहाड़ियां फैली हुई हैं । इनका दक्षिण से उत्तर विस्तार कालिंजर से गिरवाँ तक तथा पश्चिम

Physical
Below 500
500 to 750
750 to 1000
1000 to 1250
1250 to 1500
Above1500
Hill
N
S
5 0 5 10 15 20
Km
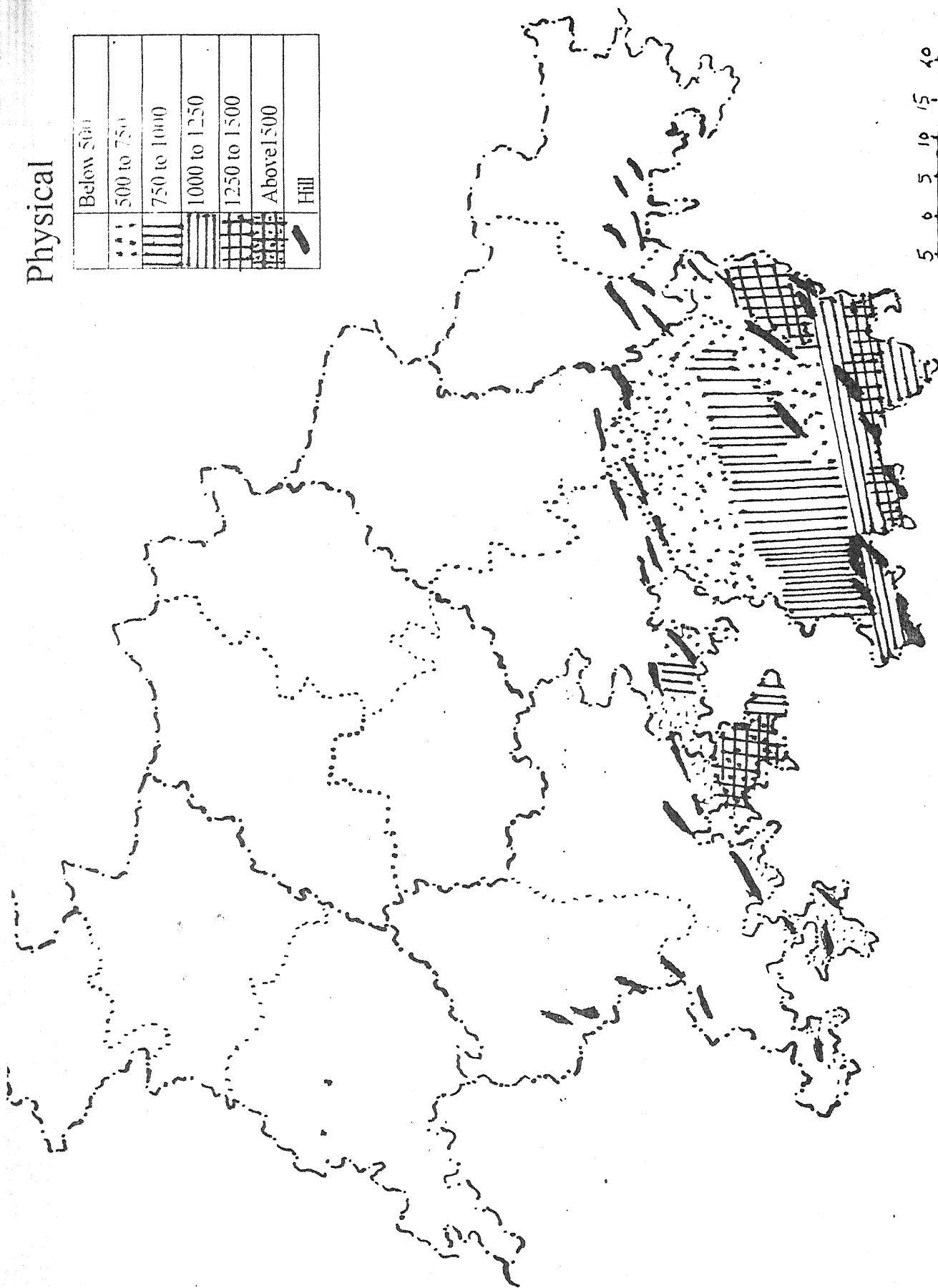
Fig.No. 2.4
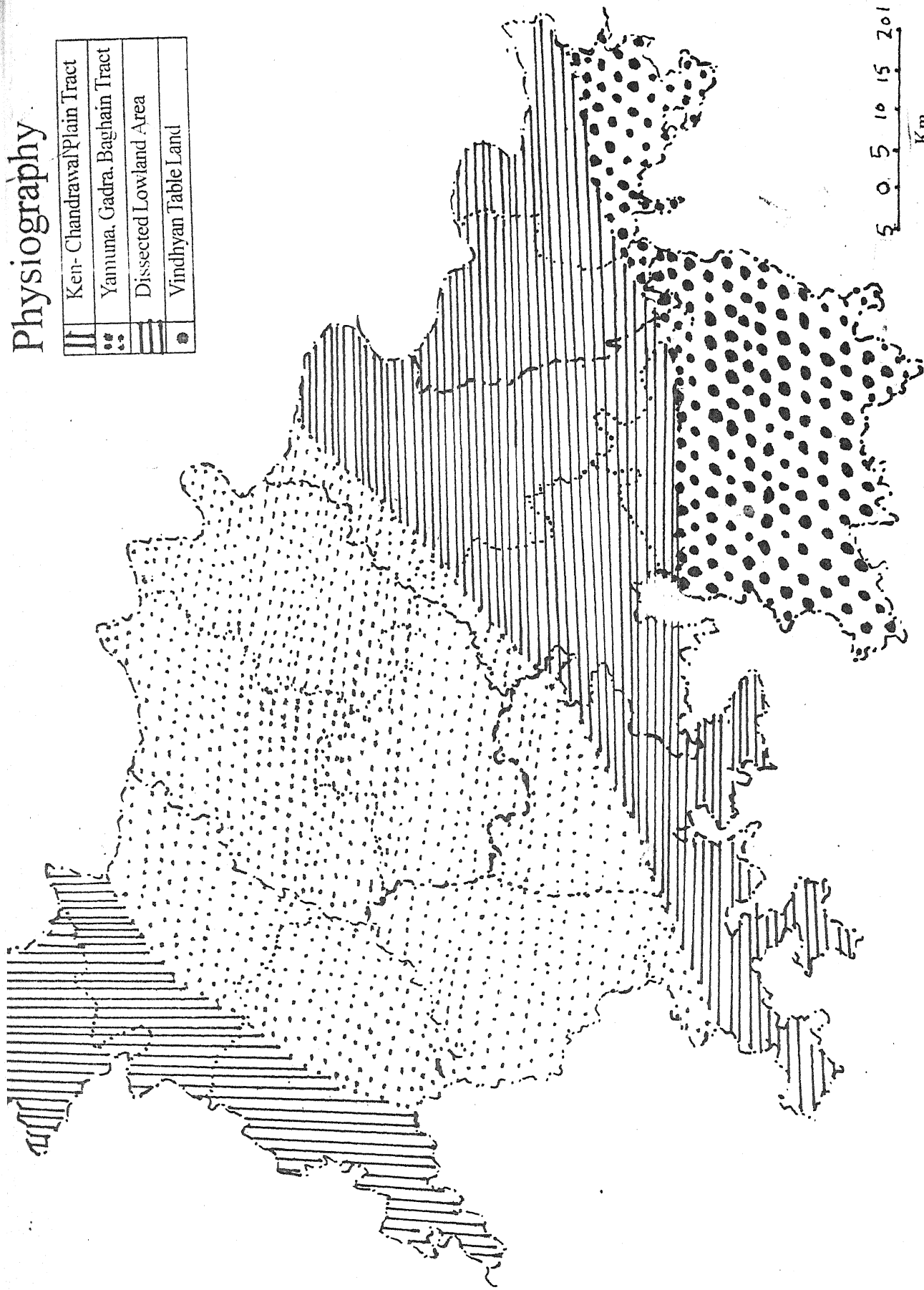
Physiography
Ken- Chandrawal Plain Tract
Yamuna, Gadra, Baghain Tract
Dissected Lowland Area
Vindhyan Table Land
N
S
5 0 5 10 15 20
Km
Fig. No. 2.5

से पूर्व यह श्रंखला कालिंजर से मानिकपुर तक फैली हैं । अध्ययन क्षेत्र का ¼ भाग इस पेटी में अवस्थित है ।

जलवायु (Climate)

वस्तुतः दीर्घकालीन मौसम की औसत अवस्था को जलवायु कहते हैं । अध्ययन क्षेत्र की जलवायु बुन्देलखण्ड के अन्य जनपदों की भाँति मानसूनी है जो ऊष्ण व उपोष्ण कटिबन्ध के आधार पर स्वास्थ्यवर्धक है । यहाँ का मौसम कर्क रेखा की समीपता, चट्टानी व कंकरीला धरातलीय स्वरूप, वनों की न्यूनता के कारण औसत रूप से अधिक शुष्क रहता है । ग्रीष्म ऋतु शीघ्र प्रारम्भ हो जाती है तथा देर तक रहती है । शीत ऋतु भी शुष्क होने के कारण अधिक प्रभावित करती है । वर्षा जून के अन्त में प्रायः देर से प्रारम्भ होती हैं । वार्षिक औसत उच्चतम तापमान 44.05 डिग्री सेन्टीग्रेट तथा औसत न्यूनतम तापमान 10.01 डिग्री सेन्टीग्रेट रहता हैं । जून का उच्चतम तापमान 49.5^0 सेन्टीग्रेट तक पहुंच जाता है । मई व जून में सूर्य की तीव्र किरणें व पश्चिमी हवा (लू) वातावरण को अत्यधिक कठोर व असहनीय बना देते हैं तथा दिसम्बर व जनवरी के महीने में शीत लहरी से भी वातावरण सिहर उठता हैं । दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह व जून के प्रथम पक्ष में न्यूनतम तापमान 4^0 सेन्टीग्रेट तक गिर जाता हैं । इन दोनों विषमतायुक्त अवस्थाओं में वार्षिक तापान्तर के साथ मौसमी तापान्तर भी उत्पन्न होता है । पश्चिमी या पूर्वी हवायें ही अधिकततर वर्ष भर चलती हैं । हवा की गति ग्रीष्म ऋतु में अत्याधिक तीव्र रहती हैं । मई व जून में अधिकतर आंधियाँ भी आती हैं । तालिका संख्या- 2.2 में पांच वर्षो के औसत मासिक तापमान व वर्षा को दिखाया गया है ।

तालिका संख्या- 2.2

वर्ष 1994 से 1998 तक का औसत तापमान व वर्षा

माह	जन	फर0	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अग0	सित0	अक्टू0	नव0	दिस0
वर्षा MM.	8.8	8.2	5.1	2.1	1.1	12.01	74.4	268.6	96.5	16.6	8.8	9.3
औसत तापमान ^{0}से0ग्रेड	12.2	20.6	25.4	30.4	36.2	44.0	35.5	29.1	27.8	22.4	16.1	10.01

स्रोत- जिला कलेक्ट्रेट बांदा से एकत्रित आंकड़े ।

अध्ययन क्षेत्र में वर्षा मुख्यतया ग्रीष्म मानसून जो कि जून के अन्तिम सप्ताह (25 जून) तक आतें है, से होती है । वार्षिक सामान्य वर्षा 946 मिमी0 (1995) होती है जिसका 85 प्रतिशत भाग जून के अन्तिम सप्ताह से मध्य अक्टूबर (25 जून से 15 अक्टूबर) तक प्राप्त होता है । नवम्बर से मई तक कुल सामान्य वर्षा 150मिली मीटर से कम होती हैं । तालिका संख्या 2.4 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक वर्षा 268.6 मिली मीटर अगस्त माह में तथा न्यूनतम वर्षा 1.10 मिमी० मई माह मे होती है । जनवरी-फरवरी माह में कुछ चक्रवातीय वर्षा भी होती हैं । स्थानीय स्तर पर परीक्षण से स्पष्ट हुआ हैं कि वर्षा वितरण में पर्याप्त मात्रा में विविधता देखने को मिलती है यथा- किसी क्षेत्र में वर्षा अधिक तथा किसी क्षेत्र में वर्षा कम होती हैं । यह भी स्पष्ट हुआ है कि जनवरी/फरवरी माह में ओलें पड़ने की पर्याप्त संभावना होती है ।

प्रवाह तन्त्र **(Drainage System)**

अध्ययन क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली प्रमुख नदियां यमुना, केन, चन्द्रावल, बागै, पयस्वनी, गुन्ता, ओहन व गड़रा प्रमुख है (चित्र संख्या 2.6)। इसके अतिरिक्त उसरा, मटियारा, रेवई, गलगल, लोनी, कोल, वानगंगा, सुर्खी, बघेला, मोहिया, मोहड़ा, सरवा आदि बरसाती नालें है । शोध क्षेत्र की प्रमुख नदियाँ व उनका प्रवाह क्षेत्र निम्नवत है –

नदियाँ:-

यमुना नदी- नारायढ़ गांव की सीमा में यमुना नदी बांदा जिले को स्पर्श करती है तथा लगभग 215 किलोमीटर की लम्बाई में प्रवाहित होती हुई फतेहपुर, कौशाम्बी एवं इलाहाबाद जिलों से बांदा को अलग करती है । यमुना नदी का स्वभाव दक्षिणी किनारे को काटने का रहा है और इसी कटान के कारण कई गांव जैसे सादीपुर, जो मुगलकाल में पैलानी परगना का मुख्यालय था- पूरी तरह कट चुका है । जौहरपुर तथा बेंदा अपने मूल स्थानों से बहुत दूर अलग-अलग ढेरों में बसने को मजबूर हुए हैं ।

केन नदी- मध्य प्रदेश क्षेत्र के दमोह जिले में जन्म लेती हुई केन नदी पन्ना जिले से बहती हुई बांदा जिले में विल्हरका गांव के पास प्रवेश करती है । दो किलोमीटर प्रवाह के पश्चात् यह नदी छतरपुर की ओर तथा पुनः बांदा जिला में बरसड़ा मानपुर गांव के पास से प्रवाहित होती हुई अन्ततः बांदा जिला के चिल्ला घाट के पास
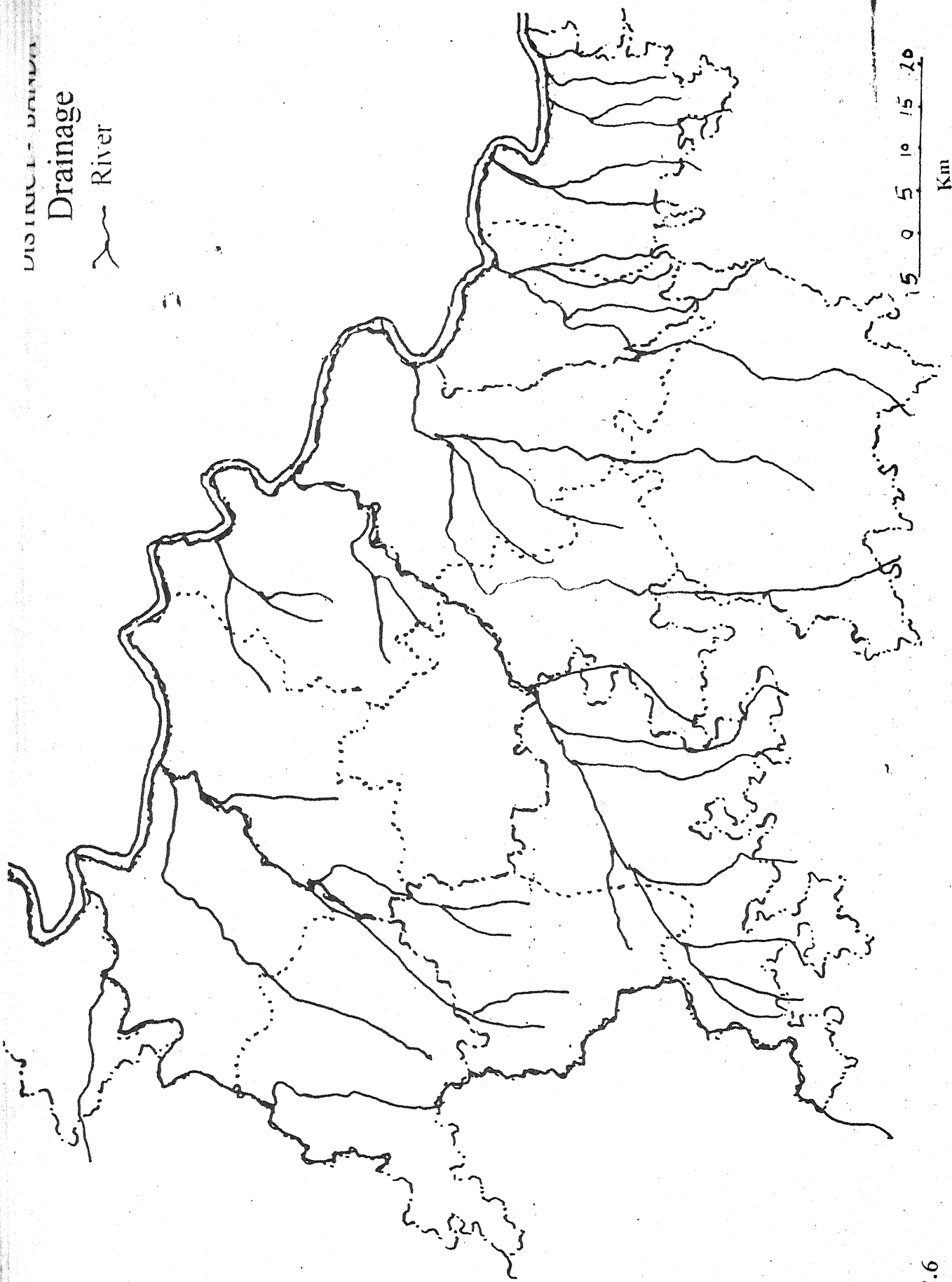
Fig. No. 2.6

यमुना में समाहित हो जाती है । यमुना की बाढ़ के समय केन का पानी रूककर ऊपर चढ़ता हैं । इस क्रिया में नदी कई गांवों के खेतों में उपजाऊ मिट्टी छोड़ जाती हैं ।

चन्द्रावल नदी- केन की प्रमुख सहायक नदी चन्द्रावल महोबा-हमीरपुर जिले की ओर से बांदा जिले में प्रवेश करती है तथा पैलानी के पास केन नदी में मिल जाती है । चन्द्रावल के अन्य सहायक नाले हैं : श्याम, केल, बिछई तथा गवाई आदि जो प्रमुखतः वर्षा ऋतु में प्रवाहित होकर नदी को भरते हैं ।

बागै नदी- केन के बाद जिले की दूसरी महत्वपूर्ण नदी बागै है, जो पन्ना जिले के कौहारी के पहाड़ से निकलकर बांदा जिले में मसौनी भरतपुर गांव के पास प्रवेश करती हैं । उत्तर-पूरब की ओर प्रवाहित होती हुई यह नदी जिले को लगभग दो बराबर भागों में बांटती हैं । बबेरू तथा कर्वी तहसीलों को अलग करती हुई यह नदी बिलास गांव के पास यमुना नदी में समाहित हो जाती है । वर्षा में बाढ़ के समय के अतिरिक्त यह नदी छिछली हो जाती हैं और अनेक स्थानों पर पैदल चलकर पार की जा सकती हैं । इस नदी की प्रमुख सहायक नदी नाले : रंज, मदरार, बरार, करेहली, बानगंगा, विसाहिल तथा बरूआ : आदि हैं ।

पयस्विनी- सतना (म0प्र0) जिले से निकलकर यह नदी चित्रकूट के अनेक उत्श्रुत स्रोतों के माध्यम से जलापूर्ति कर कर्वी तहसील में कनकोमा गांव के पास यमुना में समाहित हो जाती हैं । इस नदी की प्रमुख सहायक नदी है घान रूकमाददरी, जो पाठा क्षेत्र के पास से निकलकर कर्वी तहसील में सेमरदहा होते हुए सगवारा के पास पयस्विनी में मिल जाती हैं ।

बरदहा- रीवा (म0प्र0) के पर्वतीय क्षेत्र से निकलकर अध्ययन क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली यह एक ऐसी नदी है जो पाठा क्षेत्र के लिये पेयजल का एक मात्र साधन है । यह बेधक प्रपात तथा धारकुण्डी जैसे दर्शनीय स्थलों के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । मानिकपुर क्षेत्र में बरदहा पर एक बांध बनाया गया हैं, जिससे सिंचाई की जाती हैं ।

गड़रा- जमरेही तथा अघरौरी गांव के पास इसकी दो धारायें निकलकर मुरवल के पास एक होती हैं, जो बांदा और बबेरू तहसीलों को विभक्त करती हुई जलालपुर के समीप यमुना नदी में मिल जाती हैं । इसके पूरब में मटियारा, पश्चिम में उसरा नाले इसमें मिलते हैं ।

गुन्ता- मऊ तहसील में कई सहायक नालों जीवन्ती, सटेथा, खुरसहा, बनगवां, बरेरी (लोनी) आदि से मिलकर गुन्ता एक बारहमासी नदी है जिस पर बांध बनाकर सिंचाई की जाती हैं ।

मिट्टियाँ (Soils)

मिट्टी मानव जीवन का आधारभूत संसाधन हैं जिसे प्रकृति ने मानव को उपहार स्वरूप प्रदान किया है । मिट्टियों में अनेक तत्व पाए जाते है जिसमें आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, बोरान, जिंक, कार्बन-डाई-ऑक्साइड, फास्फोरस, पोटेशियम, मैगनीज, लोहा और सोडियम आदि मुख्य हैं । कुछ तत्व प्रकृति द्वारा मिट्टी को निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं तथा कुछ तत्वों की पूर्ति मानव उर्वरकों का प्रयोग करके करता हैं । मिट्टी प्राकृतिक वातावरण का एक प्रमुख तत्व हैं । मनुष्य की अनिवार्य सम्पदा में मिट्टी एक मुख्य अंग है । यह मिट्टी प्राथमिक क्रिया-कलापों- कृषि, पशुपालन, वन व वन्य उद्योग तथा कृषि व्यवसायों का आधार हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में पायी जाने वाली मिट्टियों के स्वरूप में बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों के समान पर्याप्त विविधता पायी जाती हैं । मृदाओं की भौतिक दशा तथा रासायनिक तत्वों के आधार पर इन्हें पांच भागों में विभक्त किया जा सकता हैं (चित्र संख्या 2.7) ।

1. **दोमट या कछारी मिट्टी-** बलुई तथा चिकनी मिट्टियों के मिश्रण से इस मिट्टी का निर्माण होता है जिसके कण न तो अत्याधिक मोटे और न अत्याधिक बारीक होते हैं । इस मिट्टी में कणों के मध्य स्थान होने के कारण पानी सरलता पूर्वक सोख जाता हैं एवं स्थिर रहता है । इसमें पौधों की जड़ आसानी से अन्दर तक पहुंच जाती है । यह कृषि के लिये आदर्श मिट्टी हैं । इसमें रवी की फसल में मुख्य रूप से गेहूँ या गेहूँ व सरसो या गेहूँ चना की अच्छी फसल होती हैं । बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में खरीफ की फसल नहीं होती लेकिन जहाँ बाढ़ का पानी नहीं पहुंचता वहाँ खरीफ की उत्तम फसल होती है । सिंचाई के साधनों के विकास के फलस्वरूप इसमें दो फसले उगाई जाने लगी हैं । खादर भूमि में 15 कुन्तल प्रति एकड़ गेहूँ की पैदावार खाद व सिंचाई के बिना होती हैं । इस मिट्टी का रासायनिक विश्लेषण के आधार पर विभिन्न तत्वों का प्रतिशत वर्ष 1995 (ग्राम पैलानी) में निम्नवत है जो तालिका संख्या- 2.3 में प्रदिष्ट हैं ।

Soils
DOMET SOIL
MAR SOIL
PARUA SOIL
KABAR SOIL
RANKER SOIL
N
S
5 0 5 10 15 20
Km
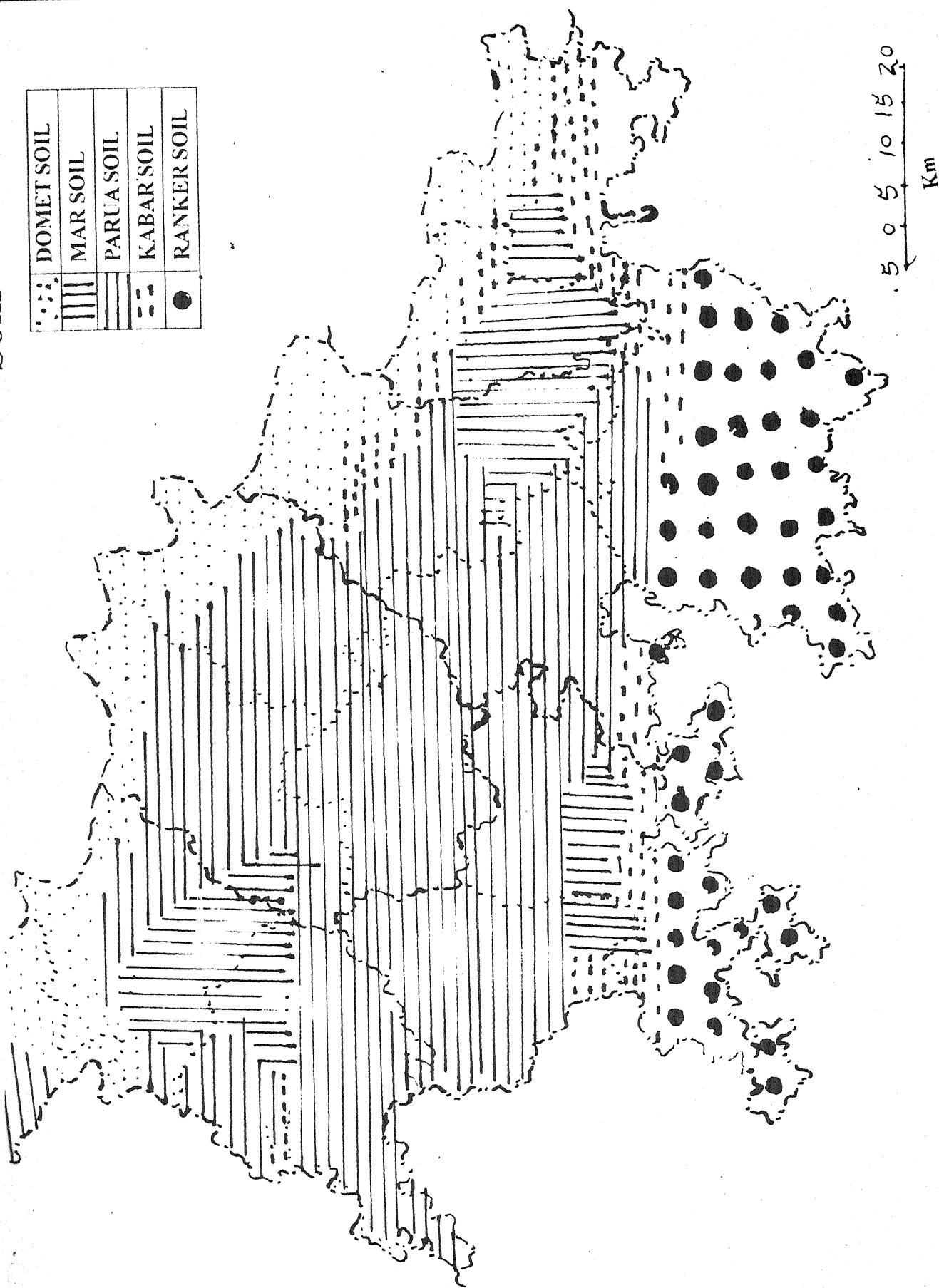
Fig. No. 2.7

तालिका संख्या- 2.3

पैलानी गांव में रासायनिक विश्लेषण के आधार पर दोमट मिट्टी में पाए जाने वाले रासायनिक तत्व (1995)

रासायनिक तत्व	प्रतिशत
एल्युमिना	4.4
लोहा	3.1
चूना	0.49
मैगनीशियम	0.32
पोटाश	0.64
फास्फोरस	0.80
नाइट्रोजन	0.25

स्रोत : मृदा कार्यालय, बाँदा जनपद, 1995 ।

प्रतिवर्ष बाढ़ व मिट्टी के निर्माण के आधार पर इस मिट्टी को दो भागों में बांटा जा सकता है -

अ. कछार अव्वल;

ब. कछार दोयम ।

जहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ का पानी भर जाता हैं और नई मिट्टी बिछ जाती हैं उसे कछार अव्वल की संज्ञा दी गयी है । जहाँ पर कभी-कभी 4-5 वर्षो में अत्याधिक बाढ़ का पानी पहुंचता हैं या निक्षेप से उस मिट्टी का निर्माण हुआ हैं, उसे कछार दोयम की संज्ञा दी गयी है ।

मार- काली मिट्टी (मार) अध्ययन क्षेत्र की दूसरी प्रमुख उपजाऊ मिट्टी है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 11 प्रतिशत भाग पर पायी जाती हैं । इस मिट्टी में आद्रता धारण करने की अत्याधिक शक्ति होती हैं । इसका रंग काला है तथा इसमें चूने की मात्रा अत्यधिक होती हैं । यह मिट्टी 66 से 78 प्रतिशत तक जल ग्रहण कर सकती है। चूना तथा एल्युमिनियम की मात्रा अधिक तथा जीवाश्म पदार्थों व लवण की मात्रा कम पायी जाती हैं । अध्ययन क्षेत्र में यह बिखरे हुए भागों में मिलती है । उत्पादन की दृष्टि से इसे चार भागों में बांटा गया हैं -

(1) ए मार, (2) बी मार, (3) सी मार, (4) डी मार ।

ए मार सर्वोत्तम मार भूमि होती हैं । इसका रंग काला तथा उपजाऊ शक्ति, आर्द्रता धारण करने की शक्ति अत्याधिक होती हैं । बी मार का रंग काला

व उपजाऊ शक्ति तथा आर्द्रता धारण करने की शक्ति पर्याप्त होती हैं । सी मार हल्के काले रंग की अधिक आर्द्रता धारण करने वाली मिट्टी हैं, जबकि डी मार काले व भूरे रंग की कम उपजाऊ व कम आर्द्रता धारक मिट्टी हैं ।

रासायनिक विश्लेषण के आधार पर विकासखण्ड तिन्दवारी के ग्राम पचनेही की मार मिट्टी में पाए जाने वाले विभिन्न तत्वों की मात्रा की स्थिति को तालिका संख्या 2.4 में दर्शाया गया है -

तालिका संख्या- 2.4

ग्राम पचनेही की मार मिट्टी में पाए जाने वाले विभिन्न रासायनिक तत्व (1995)

रासायनिक तत्व	प्रतिशत
एल्युमिना	9.39
लोहा	11.24
चूना	1.81
मैगनीशियम	1.79
पोटाश	0.54
जल, जीवाश्म	5.83

स्रोत : मृदा कार्यालय, बाँदा जनपद, 1995 ।

काबर- यह हल्की, भूरी, गहरी सिलेटी एवं काली मिट्टी मिश्रित मिट्टी हैं। अध्ययन क्षेत्र में पायी जाने वाली यह मिट्टी मध्यम उपजाऊ मिट्टी है । इसमें बालू के कणों की अधिकता रहती हैं तथा जीवांश अधिक पाया जाता है । उत्पादकता के आधार पर इस मिट्टी को दो भागों में बांटा जा सकता हैं -

(1) ई काबर, (2) एच काबर

ई काबर अच्छी चिकनी मिट्टी हैं । इसमें बालू के कण अपेक्षाकृत कम रहतें हैं । इस मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कृषक की मेहनत पर निर्भर करती हैं । एच काबर अपेक्षाकृत निम्न भूमि है, इसमें बालू के कण अत्याधिक होते हैं।
पडुवा-यह भूरी तथा ग्रे भूरी मिट्टी एक अच्छी उपजाऊ मिट्टी है । इसमें सभी उपजाऊ तत्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । सिंचाई के साधनों के विकसित हो जाने पर यह अत्याधिक उपजाऊ मिट्टी हो गई है जिसमें कई फसलें पैदा की जा सकती हैं। सिंचाई इस मिट्टी के लिए अत्यधिक लाभदायक हैं । अध्ययन क्षेत्र में इस मिट्टी के सिंचित क्षेत्रों में 2-3 फसलें उगाई जाती हैं । उत्पादकता के आधार पर इस मिट्टी को तीन भागों में बांटा जा सकता है-

(1) एल पडुवा, (2) के पडुवा, (3) एन पडुवा

एल पडुवा इस मिट्टी की सर्वोत्तम मिट्टी है । इसमें बालू के कण नहीं मिलते । यह मिट्टी चीका मिट्टी की तरह होती हैं । के पडुवा में बालू के कण पाये जाते है । जबकि एन पडुवा में बालू के कणों के साथ-साथ कंकड़ व पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े भी मिलतें हैं । इस तरह एन पडुवा एक कमजोर किस्म की मिट्टी हैं जो कम उपजाऊ होती हैं । इसमें अधिकतर खरीफ की फसलें उगाई जाती हैं ।

रांकर या लाल भूरी मिट्टी- यह मिट्टी अध्ययन क्षेत्र के 30 प्रतिशत भाग पर पायी जाती हैं । यह मृदा बुन्देलखण्ड में अन्यत्र पायी जाने वाली मृदा से मिलती जुलती हैं । यह मिट्टी अधिकांशतया नदियों द्वारा अपरदित भागों व विन्धयन श्रेणी के क्षेत्रों में मिलती हैं । इसमें खनिज पदार्थो के बड़े-बड़े कण विद्यमान हैं । निचली सतहों पर मृदा के कण छोटे होते हैं तथा बालूका जमीन मिलती हैं । इस मिट्टी में जलोत्कर्षण तीव्र गति से होता हैं । भूमिगत जल स्तर काफी नीचे मिलता हैं जो 15 से 30 मीटर तक है । इसमें जीवांश की मात्रा बहुत कम मिलती हैं । चूने की मात्रा 16 से 19 प्रतिशत तक मिलती हैं । इस मिट्टी में विशेषकर ज्वार, बाजरा, मक्का तथा कुछ रबी की फसलें भी होती हैं । अध्ययन क्षेत्र में अधिकतर यह नरैनी तहसील व कर्वी तहसील के दक्षिणी भाग (मानिकपुर क्षेत्र) तथा मऊ तहसील के दक्षिणी भाग में मिलती हैं तथा कुछ मात्रा बांदा तहसील के जसपुरा विकासखण्ड में भी मिलती हैं ।

वन एवं उद्यान **(Forest & Orchards)**

अध्ययन क्षेत्र की वनस्पति उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी कोटि की है । इस वनस्पति के प्रमुख वृक्ष- आम, महुआ, जामुन, आंवला, शीशम, नीम, पीपल, बरगद, इंगोहटा, करील, खैर, बांस, बबूल, तेन्दु, पलास आदि हैं । क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में घासें वर्षा ऋतु में उगती है - जिनमें मुसैल, मूंज, पसई, गुन्ना, धुनियां, बनवार आदि मुख्य हैं । इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की चारे वाली घासे भी उगती हैं- जिनमें धुनियां, हरियार, धूब मुख्य हैं । विगत वर्षो में वनों की अंधाधुन्ध कटाई के कारण तेजी से वनों का क्षेत्रफल घटा हैं । भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ दबाव तथा नई जोतों की प्राप्ति से बंजर भूमि का तेजी से ह्रास हुआ हैं जिससे वन व उद्यानों के क्षेत्र में तेजी से कमी आ रही हैं । वर्ष 1991 में कुल वन क्षेत्रफल 77,701 हेक्टेयर तथा उद्यानों का कुल क्षेत्रफल 9110 हेक्टे0 था, जो अध्ययन क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल का मात्र 13 प्रतिशत भाग हैं । विकासखण्ड स्तर पर वनों व उद्यानों के

क्षेत्रफल में अत्याधिक विषमता देखने को मिलती हैं। अधिकतर वन क्षेत्र मानिकपुर विकासखण्ड में (34,252हेक्टे0) तथा न्यूनतम वन क्षेत्र कमासिन विकासखण्ड में (19 हेक्टे0) मिलता है (तालिका संख्या 2.5) यहाँ पर वनों के एवं उद्यानों के अन्तर्गत पाई जाने वाली भूमि कुल ग्रामीण प्रतिवेदित क्षेत्रफल का मात्र 9.8 प्रतिशत तथा 1.15 प्रतिशत रह गयी है जो पर्यावरण सन्तुलन की दृष्टि से काफी कम है । सांराशतः प्राकृतिक संसाधनों के दुरूपयोग से गांवों की अस्मिता खतरे में पड़ गई है । इसके लिए यह आवश्यक है कि पृथ्वी के हरे-भरे श्रंगार को न उजाड़े तथा प्रकृति के साथ सदैव संवेदनशील रहें (मिश्र, 1999) ।

तालिका संख्या 2.5

विकास खण्डों में वनो व उद्यानों का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में),1997

विकासखण्ड	वन	उद्यान
नरैनी	509	1326
महुवा	294	387
कमासिन	19	170
बबेरू	14	146
बिसण्डा	205	152
जसपुरा	681	95
तिन्दवारी	371	367
बड़ोखर खुर्द	114	63
चित्रकूट	12257	152
पहाड़ी	20241	139
मानिकपुर	34252	5496
मऊ	5906	392
रामनगर	2490	215
योग	77701	9110

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बाँदा जनपद, 1997 ।

जन्तु-परिवार (Fasuna)

वन्य जन्तु- अध्ययन क्षेत्र में प्रमुख वन्य जन्तु रोझ, नील गाय, सियार, लोमड़ी, हिरन, बन्दर, लकड़बग्घा, भेड़िया, डग्गर प्रमुख हैं । अन्य वन्य जन्तु गिलहरी, नेवला, बिल्ली, चूहा, सर्प, अजगर, गोह, आदि भी पाए जातें हैं । अध्ययन क्षेत्र में प्रमुखतया मोर, उल्लू, तोता, कोयल, सारस, बतख, बगुला, कबूतर, चमगादड़, चील, डेउका, गीध आदि पक्षी बहुतायता से मिलते हैं ।

पालतू पशु- अध्ययन क्षेत्र में प्रमुख पालतू पशु गाय, बैल, भैंस, भैंसा, बकरी, भेड़, ऊंट आदि हैं । गाय, भैंस व बकरी दूध प्राप्ति हेतु पाले जाते हैं लेकिन प्रति जन्तु

दूध उत्पादन बहुत कम हैं जिसका प्रमुख कारण पथरीला व कंकरीला धरातल, अधिकतर हरे चारे का अभाव तथा पिछड़ी हुई प्रजाति के दूध पशुओं का होना है।

आर्थिक संरचना (Economic Structure)

भू-उपयोग (Land-use) - यह सर्वमान्य हैं कि भूमि सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है इसके साथ यह कृषि उत्पादन तथा अधिकाधिक जनसंख्या के पोषण का प्रमुख आधार हैं। तालिका नं0 2.6 ए व बी से स्पष्ट हैं कि अध्ययन क्षेत्र में भू-उपयोग की पद्धति तथा क्षेत्रीय विशेषताओं में पर्याप्त विभिन्नता हैं । 1997 में अध्ययन क्षेत्र के कुल ग्रामीण क्षेत्रफल 788911 हेक्टे0 में से शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल 512876 हेक्टे0 था तथा 83626 हेक्टे0 पर एक से अधिक बार फसलें उगाई गयीं । इस प्रकार कुल बोया गया क्षेत्रफल 615888 हेक्टे0 था । सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 67 प्रतिशत भाग पर शुद्ध कृषि क्षेत्र हैं । उद्यानों के अन्तर्गत मात्र 9118 हेक्टे0 भूमि थी जो मात्र 1.15 प्रतिशत भाग ही हैं । वन 77701 हेक्टे0 पर है जो 9.8 प्रतिशत भाग हैं । सकल परती बंजर भूमि का क्षेत्रफल 98703 हेक्टे0 हैं जो 12.9 प्रतिशत हिस्सा हैं (चित्र संख्या 2.8) । तालिका संख्या 2.6 ए0 व बी0 में यह स्पष्ट परिलक्षित हैं कि विकास खण्ड स्तर पर पर्याप्त विविधता हैं ।

तालिका संख्या- 2.6 ए

भू-उपयोग (हेक्टेयर में), 1997

विकासखण्ड	कुल प्रतिवेदित क्षेत्र	वन	कृषि योग्य बंजर भूमि	वर्तमान परती	अन्य परती	कृषि के अयोग्य भूमि	कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की गयी भूमि
जसपुरा	35473	681	628	1816	867	1328	2337
तिन्दवारी	57458	371	738	1828	1381	1798	3737
बड़ोखर खुर्द	64945	114	1268	1816	2188	1642	4686
बबेरू	68115	114	1338	1768	4564	1287	3378
कमासिन	51565	19	1175	1319	3962	673	2999
बिसण्डा	46661	285	718	1462	1822	466	2928
महुआ	51385	293	1188	2871	1818	2888	3685
नरैनी	88385	589	4258	4628	3274	4418	5858
पहाड़ी	72181	28242	1988	6521	2196	1156	3587
चित्रकूट	63248	12457	1738	3547	2286	2231	2947
मानिकपुर	114581	34292	6862	5823	3974	16624	5823
रामनगर	35867	2498	1218	3887	1718	1863	1564
मऊ	48883	5986	5875	3633	2986	2346	2893
योग	788911	77781	28864	39311	31324	36932	45438

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बाँदा जनपद, 1997 ।

DISTRICT- BANDA
LAND - USE
NET SOWN AREA
FOREST, ORCHARDS
LAND UNDER OTHER USE
FALLOW & NON AGRICULTURAL LAND
CULTIVA BLE WASTE LAND
100%
0
10%
20%
30%
40%
50%
60%
70%
80%
90%
Fig No. 2.8
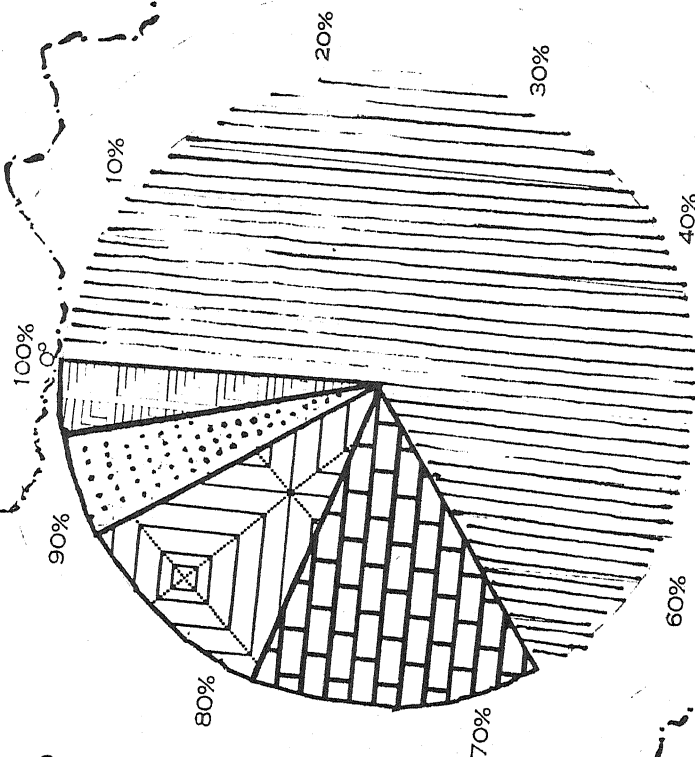
तालिका संख्या- 2.6 बी

भू-उपयोग (1997)

विकासखण्ड	चारागाह	उद्यानों, बांगों, वृक्षों का क्षेत्र0	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	कुल बोया गया क्षेत्र	सकल बोया गया क्षेत्रफल		
						रबी	खरीफ	जायद
जसपुरा	22	54	28548	1189	29658	28827	9629	2
तिन्दवारी	137	439	47187	1734	48381	37316	11846	19
बड़ोखर खुर्द	94	282	53183	4854	57398	44662	12355	98
बबेरू	38	188	47624	2158	58472	37488	13871	1
कमासिन	8	151	41261	4196	44836	31418	12597	21
बिसण्डा	39	132	39385	18714	52889	35185	21888	16
महुआ	26	248	48856	18722	68353	35879	24847	27
नरैनी	54	712	57618	11929	73349	43878	38286	65
पहाड़ी	–	113	36386	4418	48896	38998	17898	8
चित्रकूट	–	131	37983	7978	58382	43878	15122	181
मानिकपुर	–	5277	35846	4298	36612	22396	14214	1
रामनगर	–	284	22931	1778	24758	15885	8925	24
मऊ	14	888	24396	2578	26754	15831	11595	119
योग	424	8661	512876	83626	615888	412477	282985	494

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बाँदा जनपद, 1997 ।

फसल सहचर्य (Crop Association)- अतीत काल से कृषि अध्ययन क्षेत्र का एक आदिम व्यवसाय रहा है। रबी एवं खरीफ अध्ययन क्षेत्र का प्रमुख फसल चक्र हैं । नहर सिंचित क्षेत्र में यह एक वर्ष में ही पूरा हो जाता हैं जबकि असिंचित या अर्द्ध सिचिंत क्षेत्रों में यह चक्र दो वर्षो में पूरा होता हैं । जायद की फसल एक गौण फसल के रूप में मात्र दो प्रतिशत क्षेत्रफल में उगाई जाती हैं । 250 हेक्टे0 में गन्ने की फसल भी उगाई जाती है । अध्ययन क्षेत्र के कुल कृषित क्षेत्र के 80.64 प्रतिशत भाग पर रबी तथा 32.78 प्रतिशत भाग पर खरीफ की फसल उगाई गई । 13.42 प्रतिशत भाग पर दोनों फसलें (रबी व खरीफ) एक वर्ष में पैदा की गयी हैं । गन्ना एक गौण उपज के रूप में उगाया जाता हैं जबकि इसका उत्पादन व्यापारिक स्तर पर किया जा सकता हैं । विकास खण्ड स्तर पर रबी व खरीफ फसल सहचर्य में अत्याधिक विषमता देखने को मिलती हैं । बिसण्डा, नरैनी व महुआ विकासखण्डों में एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र सर्वाधिक है, जो

स्पष्ट करता हैं कि यहाँ खरीफ व रबी (धान व गेहूँ) का फसल सहचर्य प्रतिवर्ष नियमित रूप से होता है, जैसा कि तालिका संख्या- 2.6 बी से स्पष्ट हैं ।

सिंचाई (Irrigation)- अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत वर्ष 1998 में कुल सिंचित क्षेत्र 103703 हेक्टे0 तथा असिंचित क्षेत्र 674346 हेक्टे0 था जो अभी सिंचाई के साधनों के विकास की सम्भावनाओं को दर्शाता है । जनपद प्रतिशत भूमि आज भी सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर है यदि बरसात ठीक हुई तो उपज अच्छी और यदि नहीं, तो किसानों की वर्ष भर की मेहनत बरबाद हो जाती है । वर्षा आधारित खेती होने के कारण अधिकांश भाग में केवल एक ही फसल लेकर सन्तोष करना पड़ता है (मिश्र, 1997) । अध्ययन क्षेत्र का पाठा क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक जल स्रोत गांव से दूर हैं । यद्यपि इन जल स्रोतों से यहाँ के निवासियों की जल समस्या तो हल हो जाती है किन्तु नियमित उपयोग में जल का आभाव स्पष्ट दिखाई देता है । पानी के एक कण में श्रम व समय बहुत लगता है (मिश्र, 1999) । विकासखण्ड स्तर पर सिंचाई के साधनों के वितरण में अत्याधिक विषमता है । सिंचन साधनों में महत्वपूर्ण स्थान नहरों का है । दूसरा स्थान कुओं व तीसरा स्थान ताल-तलैयों का आता है । सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र महुवा विकासखण्ड के अन्तर्गत है, जबकि न्यून सिंचित क्षेत्र मानिकपुर विकास खण्ड मे है (तालिका संख्या- 2.7) ।

तालिका संख्या-2.7

कुल सिंचित/असिंचित क्षेत्र

विकासखण्ड	सिंचित क्षेत्रफल		असिंचित क्षेत्रफल (हे0)
	हे०	प्रतिशत मे	
नरैनी	15935	15.36	65725
महुआ	18235	34.82	34157
कमासिन	4021	7.69	48231
बबेरू	9542	16.63	48033
बिसण्डा	15051	32.51	31295
जसपुरा	1651	05.55	34357
तिन्दवारी	6752	10.64	51245
बड़ोखर खुर्द	7507	10.11	56783
चित्रकूट	8182	14.43	48577
पहाड़ी	6889	8.47	75814
मानिकपुर	4822	4.46	103446
मऊ	3079	6.24	45978
रामनगर	2037	6.41	29772
योग	103703	13.34	674346

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बाँदा जनपद, 1997 की गणना पर आधारित है ।

खनिज व उद्योग (Minerals And Industries)

अध्ययन क्षेत्र का वह भाग, जो प्राचीन चट्टानों से उदभूत हैं, खनिज सम्पदा में धनी हैं । निर्माण सामग्री के रूप में पत्थर की पटिया व ढोके बहुतायता से नरैनी, मानिकपुर व चित्रकूट विकासखण्डों में मिलते हैं । इस ग्रेनाइट गिट्टी के अधिकतर क्रेसर भरतकूप व नरैनी में स्थित हैं जो एक उद्योग के रूप में हैं । शोध क्षेत्र में सिलिका सैन्ड, चूने का पत्थर, पेरोफिलाइट, डिसपोर, डोलोमाइट, बाक्साइट तथा ग्लास सेण्ड पर्याप्त मात्रा में मिलता हैं । पेरोफिलाइट तथा डीसपोर का प्रयोग कागज उद्योग में, पेन्ट में एक फिल्टर के रूप में होता हैं । उत्तम ग्लास सैण्ड मऊ व मानिकपुर विकास खण्डों में पर्याप्त मात्रा में मिलता हैं । पत्थर प्रत्येक पहाड़ में पाये जाते है जो सड़क निर्माण सामग्री (गिट्टी) तथा इमारत की छत में प्रयोग हेतु आसानी से उपलब्ध हैं। बड़ोखर विकास खण्ड व नरैनी विकास खण्ड में केन के किनारे बहुमूल्य शजर पत्थर मिलता है ।

अध्ययन क्षेत्र में कोई भी बड़ा उद्योग नहीं हैं । बांदा नगरीय क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र में एक सूती मिल लगाई गयी थी जो 1999 में बन्द कर दी गयी हैं । कार्यशाला अधिनियम के तहत 221 इकाईयां पंजीकृत हैं, जिनमें 1990 व्यक्ति रोजगार में हैं । अध्ययन क्षेत्र के एक लाख व्यक्तियों में मात्र दस व्यक्ति ही अपनी जीविका उद्योग धन्धों से कमा रहें हैं जो बहुत ही न्यून हैं । कुटीर उद्योगों में-सन से रस्सी बटने का कार्य, मूंज घास से मूंज बटने का कार्य, मिट्टी के बर्तन बनाने का उद्योग, चमड़ें के जूते बनाने का कार्य, हल-बक्खर व बैलगाड़ी बनाने का कार्य तथा छोटे-छोटे लोहें के यंत्र बनाने का कार्य कुटीर उद्योग के रूप में अत्याधिक छोटे पैमाने पर होता हैं । वस्तुतः गांवों के परम्परागत उद्योग धन्धे जिनमें गावों की लगभग एक चौथाई जनसंख्या कार्यरत थी तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को संतुलित रूप प्रदान करने में सहयोग देते थे, आज मरणासन्न अवस्था में हैं । सन्तुलित विकास के लिए इन्हे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है । इनके द्वारा केवल उन्हीं उपभोक्ता वस्तुओं को नहीं बनाना चाहिए । जिनकी मात्र हमारे किसानों को आवश्यकता है बल्कि ऐसी वस्तुओं का निर्माण भी किया जाना चाहिए, जिनकी जरूरत शहरों में भी रहती है (मिश्र, 1997) ।

सांस्कृतिक संरचना (Cultural Structure)

वस्तुतः देश व क्षेत्र के विभिन्न भागों में प्राकृतिक वातावरण को संशोधित करके, सांस्कृतिक भूदृश्य का निर्माण करने वाला मानव भौगोलिक अध्ययन

का केन्द्र बिन्दु है (ट्रीवार्था, 1953) । जनसंख्या एवं अधिवास एक दूसरे से घनिष्ट रूप से अन्तर्सम्बन्धित हैं । अध्ययन क्षेत्र की सांस्कृतिक संरचना यथा- जनसंख्या, जनसंख्या वृद्धि, जनसंख्या का वितरण एवं घनत्व, स्त्री-पुरूष अनुपात तथा व्यावसायिक संरचना मुख्य रूप से निम्नवत है ।

जनसंख्या संरचना (Demographic Structure)

जनसंख्या वृद्धि- 1991 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की कुल जनसंख्या 1862139 थी जिसमें 1011230 पुरूष व 850909 महिलाएं थी । कुल ग्रामीण जनसंख्या 1622718 थी, जिसमें 880464 पुरूष व 742254 महिलाएं थी । विगत शताब्दी में (1981-91) जनसंख्या वृद्धि 21.4 प्रतिशत थी जबकि 1971-81 के मध्य यह 24.78 प्रतिशत तथा 1961-71 के मध्य 20.78 प्रतिशत की गति से जनसंख्या में वृद्धि हुई । इस शताब्दी की सर्वाधिक वृद्धि 1971-81 के मध्य 24.4 प्रतिशत हुई जबकि न्यूनतम वृद्धि 1911-21 के मध्य -7.7 प्रतिशत हुई थी (तालिका संख्या- 2.8) । विकासखण्ड स्तर पर कुल जनसंख्या, स्त्री-पुरूष जनसंख्या तथा वृद्धि को तालिका संख्या- 2.9 में दिखाया गया है -

तालिका संख्या- 2.8

जनपद में जनसंख्या वृद्धि, 1901-1991

जनसंख्या जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या	ग्रामीण जनसंख्या	वृद्धि प्रतिशत
1901	619186	578528	×
1911	645222	609199	+5.2
1921	602828	562458	-7.7
1931	640848	597258	+6.1
1941	740219	686931	+15.0
1951	790247	731445	+16.5
1961	953731	890270	+19.7
1971	1182215	1084259	+21.8
1981	1533990	1352905	+24.8
1991	1862139	1622718	+21.4

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बाँदा जनपद, 1997 एवं गणना पर आधारित ।

तालिका संख्या- 2.9

विकासखण्ड स्तर पर जनसंख्या (1991)

विकासखण्ड	कुल ग्राम	क्षेत्रफल वर्ग किलोमीटर	जनसंख्या	पुरूष	स्त्री	वृद्धि प्रतिशत में
चित्रकूट	128	508.79	123697	66607	57090	27.88
पहाड़ी	123	580.75	133516	71647	61869	19.42
मानिकपुर	107	1587.75	115838	62385	53453	21.74
नरैनी	146	602.78	198111	107883	90228	23.21
महुवा	118	412.73	152411	93271	69140	16.62
कमासिन	75	527.79	119671	65094	54577	19.51
बबेरू	80	607.22	144290	78477	65813	18.97
बिसण्डा	57	306.73	132303	71801	60502	19.05
जसपुरा	45	409.32	79515	43045	36470	20.89
तिन्दवारी	80	597.95	124021	68133	55886	11.39
बड़ोखर खुर्द	72	671.70	134982	74515	60468	22.79
मऊ	100	485.86	98993	52582	46411	21.88
रामनगर	73	338.88	65370	35023	30347	20.37
योग	1207	7578.35	1622718	880464	742354	

स्रोत : राष्ट्रीय सूचना केन्द्र बांदा से प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 1991 में जनसंख्या का घनत्व 244 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है । जबकि स्त्री-पुरूष अनुपात मे एक हजार पुरूषों पर 842 महिलाएँ है । वर्ष 1971-81 के मध्य यह अनुपात 1000 पुरूषों पर 864 महिलाएं थीं । स्त्री-पुरूष का यह अनुपात सम्पूर्ण देश व उत्तर प्रदेश की तुलना में बहुत निम्न है । यहाँ पर पिछड़ापन व अशिक्षा के कारण कम उम्र में लड़कियों का विवाह होना तथा शीघ्र बच्चे होने से स्त्री मृत्यु दर पुरूषों की तुलना में विगत दशाब्दियों में अधिक रही है । स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव व प्रसूत केन्द्रों की कमी भी इसका एक कारण है ।

अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 1991 में साक्षरता 35 प्रतिशत है जबकि 1981 में साक्षरता मात्र 23.3 प्रतिशत थी । साक्षरता में 1981 के पश्चात् तीव्र गति से वृद्धि हुई है । पुरूष साक्षरता 51.5प्रतिशत तथा स्त्री साक्षरता 16.4 प्रतिशत (1991) है । विकासखण्ड स्तर पर साक्षरता में अत्याधिक विषमता विद्यमान है । तालिका संख्या- 2.10 में कुल साक्षर व्यक्ति पुरूष और स्त्री साक्षर व उनका प्रतिशत

दिखाया गया है । सर्वाधिक साक्षरता तिन्दवारी विकासखण्ड में 39.9 प्रतिशत तथा न्यूनतम साक्षरता मानिकपुर विकासखण्ड में 25.7 प्रतिशत रही है ।

तालिका संख्या- 2.10

जनपद में विकासखण्ड स्तर पर साक्षर व्यक्ति तथा उनका प्रतिशत, 1991

विकासखण्ड	साक्षर व्यक्ति			साक्षरता का प्रतिशत		
	पुरूष	स्त्री	कुल	पुरूष	स्त्री	कुल
जसपुरा	18007	4664	22671	52.2	16.3	35.9
तिन्दवारी	30554	8675	39229	55.9	19.9	39.9
बड़ोखर खुर्द	32592	7478	40070	54.2	15.8	37.3
बबेरू	32336	6573	38909	51.3	12.8	34.1
कमासिन	24268	3883	28151	46.4	9.1	29.7
बिसण्डा	25772	4000	29772	44.4	8.4	28.2
महुवा	34543	8190	42733	51.1	14.9	34.9
नरैनी	39073	7765	46838	44.9	11.1	29.8
पहाड़ी	26025	4954	30979	45.7	10.2	29.4
चित्रकूट	24694	4147	28841	46.6	9.3	29.6
मानिकपुर	20010	3296	23306	40.4	8.0	25.7
रामनगर	11802	2153	23955	42.7	9.3	27.5
मऊ	20812	4939	25751	50.6	13.8	33.5
योग ग्रामीण	340488	70717	411205	48.3	12.2	32.0
योग जनपद	418560	109657	528217	51.5	16.4	35.7

स्रोत : राष्ट्रीय सूचना केन्द्र बांदा से प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

ग्रामीण जनसंख्या का वितरण एवं प्रतिरूप

अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या का वितरण क्षेत्र मे सामान्य अधिवासन तथा इसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विकसित हुआ है । जनसंख्या के वितरण प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारके निम्नलिखित हैं ।

1. प्राकृतिक कारक- भूमि की प्रकृति, जल स्तर, मिट्टी की स्थिति एवं प्रकार तथा जलवायु तत्व ।
2. सांस्कृतिक कारक- सांस्कृतिक कारकों में- कृषि, सिंचाई सुविधा, यातायात व संचार के साधनों का विकास, स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रसार आदि ।
3. आर्थिक कारक- आर्थिक कारकों में - बाजार की स्थिति एवं दूरी, नगरीय क्षेत्र से सम्बन्ध, विपणन केन्द्रों, बैंक, स्वास्थ्य सुविधाओं, मण्डी, शिक्षा संस्थानों, रोजगार के केन्द्र आदि ।

उपरोक्त कारकों ने अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या वितरण, घनत्व व अधिवासन प्रक्रिया को प्रभावित किया है । शोध क्षेत्र में ग्रामीण जनसंख्या के वितरण स्वरूप को चित्र संख्या 2.9 में प्रदर्शित किया गया है । इसके अवलोकन से स्पष्ट है कि नदियों के किनारे व पहाड़ी भागों में वितरण अत्यधिक कम हैं। यातायात संसाधनों के विकास व रेलवे स्टेशनों तथा बस स्टाप के पास अत्यधिक जनसंख्या का बसाव है । आर्थिक कारकों की प्रगति व उपस्थिति से अधिवासों का तीव्र विकास हुआ है तथा आर्थिक कारकों की दृष्टि से अविकसित क्षेत्र होने के कारण मानिकपुर विकासखण्ड में बहुत कम जनसंख्या बसाव देखने को मिलता हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि इन प्राकृतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक कारकों ने जनसंख्या के बसाव, घनत्व तथा वृद्धि दर को अत्यधिक प्रभावित किया है । विकासखण्ड स्तर पर इन्हीं कारकों के प्रभाव स्वरूप घनत्व में अत्यधिक विषमता देखने को मिलती है (सारणी संख्या- 2.11) ।

सारणी संख्या- 2.11

विकासखण्ड स्तर पर जनसंख्या का घनत्व (1991)

विकास खण्ड	जनसंख्या	घनत्व प्रति वर्ग किमी0	लिंगानुपात
नरैनी	198111	328	836
महुआ	152411	369	830
कमासिन	119671	226	838
बबेरू	144290	237	839
बिसण्डा	132303	431	842
जसपुरा	79515	194	847
तिन्दवारी	124021	207	820
बड़ोखर खुर्द	134082	200	811
चित्रकूट	133697	243	857
पहाड़ी	133516	229	836
मानिकपुर	115355	115	857
मऊ	98993	203	882
रामनगर	65240	192	866
योग विकासखण्ड	1622718	214	843
कुल जनपद	1862139	244	841

स्रोत : राष्ट्रीय सूचना केन्द्र बांदा से प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

लिंग अनुपात- स्त्री-पुरूष अनुपात जन्म, मृत्यु व विवाह को निर्धारित करने वाला प्रमुख तत्व हैं । इसके अतिरिक्त यह सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध तथा स्वरूप को भी स्पष्ट करने में सहायक होता है । विगत वर्षों में लगातार स्त्रियों की संख्या

DISTRICT - BANDA
Distribution Of Rural Population 1991
Each Dot Represent 200 Person
5 0 5 10 15 20
Km
Fig. No. 2.9
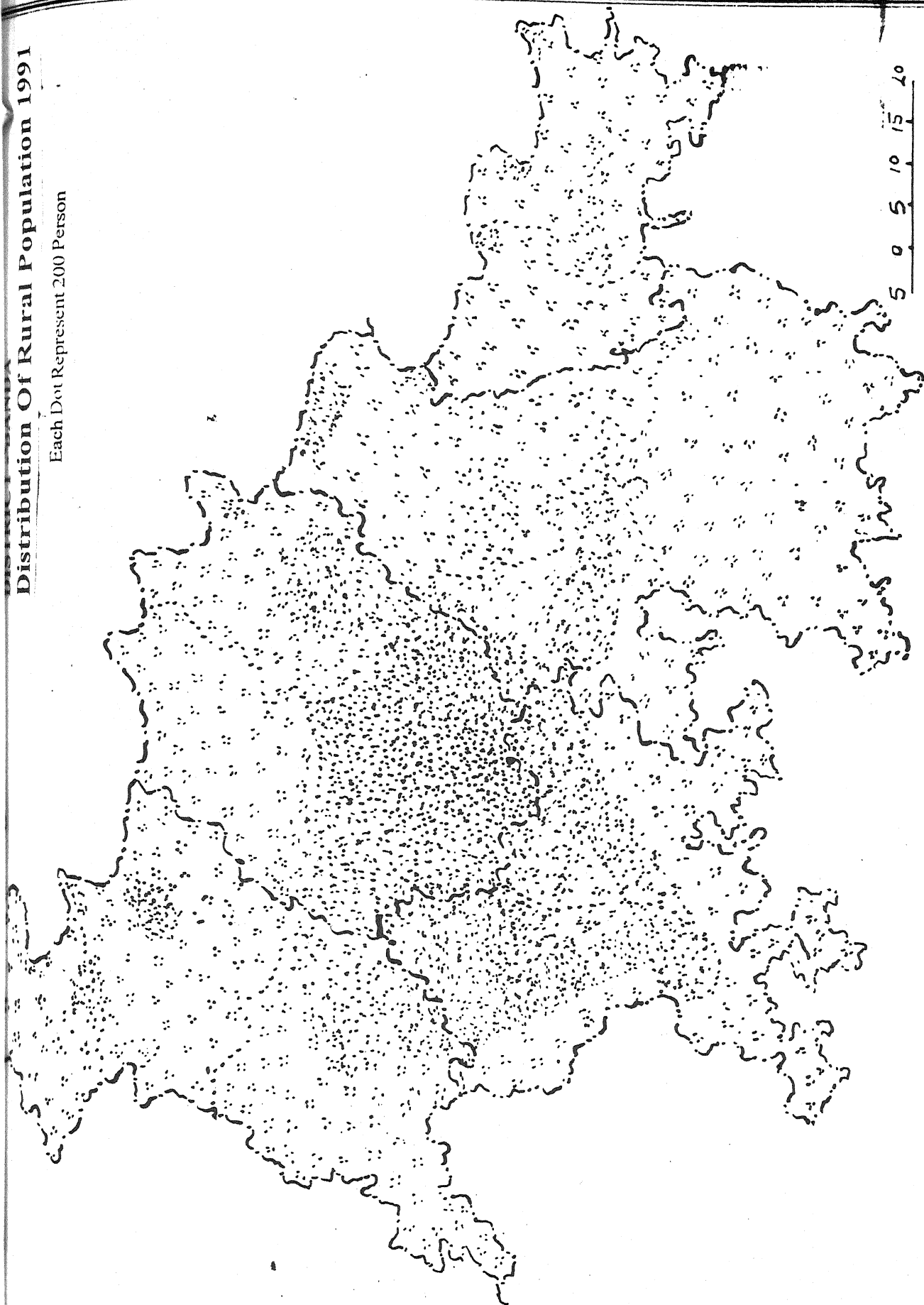
में पुरूषों की तुलना में कमी आ रही है । अध्ययन क्षेत्र में प्रति एक हजार पुरूषों पर वर्ष 1971 में 899, वर्ष 1981 में 864 तथा वर्ष 1991 में 841 महिलाओं का अनुपात था, जो राष्ट्रीय व प्रादेशिक अनुपात से बहुत कम है । इसका प्रमुख कारण क्षेत्र का पिछड़ापन, निवासियों की अज्ञानता व अशिक्षा, कम उम्र में विवाह तथा जीवन स्तर में न्यूनता है । विकासखण्ड स्तर पर भी इस अनुपात में पर्याप्त विषमता मिलती हैं । सबसे कम लिंगानुपात बड़ोखर विकास खण्ड में 811 महिलाओं का हैं जबकि सबसे अधिक मऊ विकासखण्ड में एक हजार पुरूषों पर 882 महिलाएं हैं (सारणी सं0 2.11) ।

अनुसूचित जाति/जनजाति अनुपात- 1991 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति के मात्र 14 व्यक्ति थे जिसमें महुवा विकास खण्ड में 12 तथा चित्रकूट विकासखण्ड में 2 व्यक्ति थे । अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की संख्या अध्ययन क्षेत्र में 23.3प्रतिशत है । विकासखण्ड स्तर पर अनुसूचित जाति की जनसंख्या के वितरण में विषमता पायी जाती है यथा-मानिकपुर विकासखण्ड में सर्वाधिक (36.0प्रतिशत) तथा जसपुरा विकासखण्ड में सबसे कम (12.1प्रतिशत) अनुसूचित जाति के व्यक्ति हैं । अनुसूचित जाति के पुरूष व महिलाओं की गणना व विकास खण्ड स्तर पर उनका अनुपात सारणी संख्या 2.12 में दर्शाया गया है।

सारणी संख्या- 2.12

अनुसूचित जाति/जनजाति की संख्या वे विकासखण्ड में उनका अनुपात, 1991

विकास खण्ड	कुल जनसंख्या	पुरूष	महिलाएं	विकासखण्ड में प्रतिशत
नरैनी	43113	23399	19714	21.7
महुआ	42475	23438	19037	27.5
कमासिन	26549	14540	12009	22.1
बबेरू	32033	17391	14642	22.2
बिसण्डा	39379	21523	18056	29.7
जसपुरा	9613	5185	4428	12.0
तिन्दवारी	24021	13193	10828	19.3
बड़ोखर खुर्द	30047	16501	13546	22.2
चित्रकूट	27491	14736	12755	22.2
पहाड़ी	33569	16912	15657	25.1
मानिकपुर	41635	22156	19479	36.0
मऊ	25798	13616	12182	26.0
रामनगर	16696	8926	7770	25.5
योग विकासखण्ड	392419	212316	18010	24.1
कुल जनपद	432550	234259	198291	23.3

स्रोत : राष्ट्रीय सूचना केन्द्र बांदा से प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

व्यावसायिक संरचना - अध्ययन क्षेत्र में कुल कार्यशील जनसंख्या मात्र 45.1 प्रतिशत है तथा 54.9 प्रतिशत अकार्यशील जनसंख्या है । सम्पूर्ण कार्यशील जनसंख्या में 54.8 प्रतिशत कृषक, 23.5 प्रतिशत कृषिगत मजदूर, 1.6 प्रतिशत धरेलू व कुटीर उद्योगो में कार्यरत तथा 20.1 प्रतिशत अन्य सेवा कार्यों में लोग हैं । जनसंख्या की बढोत्तरी तथा घटते हुऐ संसाधनो के कारण अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या का एक बडा भाग गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा व दिल्ली में मजदूरी हेतु पिछले एक दशक से भी अधिक समय से जा रहा हैं । इनमें से अधिकतर मौसमी हैं, जो 6 से 8 माह तक प्रवासी रहते हैं तथा शेष कुछ माह हेतु ही अध्ययन क्षेत्र वापस लौटते हैं । अधिक मजदूरी हेतु यहां की कार्यशील जनसंख्या प्रवासी हो रहीं हैं । तालिका संख्या- 2.13 में अध्ययन क्षेत्र की ग्रामीण जनसंख्या तथा कार्यशील जनसंख्या को दर्शाया गया है । कार्यशील जनसंख्या में से कृषकों, कृषिगत मजदूरों, घरेलू उद्योगों व कुटीर उद्योगों तथा अन्य कार्यों में लगे व्यक्तियों को प्रतिशत में प्रदर्शित किया गया है। यह महत्वपूर्ण है क अविकसित क्षेत्र होने के

तालिका संख्या- 2.13

ग्रामीण व्यवसायिक संरचना (1991)

विकासखण्ड	कुल जनसंख्या	कार्यशील जनंसख्या	अकार्य शील %	कार्यशील %	कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत			
					कृषक	कृषि श्रमिक	घरेलू उद्योग	अन्य
चित्रकूट	123697	58194	52.2	47.8	63.5	14.4	1.8	20.3
पहाड़ी	133516	63823	52.2	47.8	54.8	24.4	1.2	19.6
मानिकपुर	115838	55831	51.7	48.3	52.1	25.5	2.4	20.0
नरैनी	198111	88483	55.4	44.6	58.2	21.0	1.1	19.7
महुवा	152411	73375	51.9	48.1	45.9	24.2	1.5	28.4
कमासिन	119671	55746	53.4	46.6	57.9	26.4	2.3	23.4
बबेरू	144290	65423	54.7	45.3	43.7	16.2	1.1	39.0
बिसण्डा	132303	64514	51.3	48.7	48.5	25.3	1.2	25.0
जसपुरा	79515	28194	64.6	35.4	50.3	26.6	1.1	22.0
तिन्दवारी	124021	45563	63.3	36.7	46.8	30.2	1.1	21.9
बड़ोखर खुर्द	134982	52786	61.2	38.08	47.1	28.3	2.6	22.0
मऊ	98993	50443	49.1	50.9	56.5	17.7	1.5	24.3
रामनगर	56370	38198	46.5	53.1	46.7	15.8	1.1	36.4
योग	1622718	732616	54.9	45.1	54.8	23.5	1.6	20.1

स्रोत : राष्ट्रीय सूचना केन्द्र बांदा से प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

कारण व विकास के क्रम में पूरी तरह न जुड पाने के कारण अध्ययन क्षेत्र की 78.3 प्रतिशत से अधिक (54.8प्रतिशत कृषक+23.5प्रतिशत कृषिगत मजदूर) जनसंख्या आज भी कृषि से जीवकोपार्जन कर रहीं है और कृषि ही जीविका का मुख्य आधार हैं । यद्यपि विकासखण्ड स्तर पर क्रियाशील जनसंख्या के वितरण में पर्याप्त विषमता है फिर भी यह निर्विवाद है कि प्राथमिक क्रिया-कलापों से ही मुख्य रूप से रोजगार प्राप्त हो रहा है । इसका प्रमुख कारण क्षेत्र की भौतिक संरचना तथा आर्थिक प्रगति है । घरेलू उद्योग धन्धों व कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में ह्रास हो रहा है । कृषक अपनी आवश्यकता की वस्तुएं अधिकतर नगरीय या उपनगरीय क्षेत्रों से खरीदते हैं जो अन्यत्र जनपद के बाहर से आती हैं यथा- सन की रस्सी, मूंज की डोर आदि । घरेलू उद्योगों में मात्र 1.6 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या लगी हैं जो एक समस्या है । अन्य सेवा कार्यों में अध्ययन क्षेत्र की 20.1 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या लगी हुई हैं । वस्तुत: द्वितीयक व तृतीयक क्रिया-कलापों का अध्ययन क्षेत्र में विकास नही हुआ है । द्वितीयक एवं तृतीयक वर्ग में अधिकांशत: अकुशल श्रम-शक्ति कार्यरत है । अत: कुशल श्रम शक्ति की वृद्धि हेतु तथा रोजगार के अवसर सुलभ कराने हेतु उत्पादन मिश्रित एवं तकनीक मिश्रित उपागमों के विकास की आवश्यकता है (मिश्र, 1981) । यहां की सेवा कार्यों में लगी अधिकांश जनसंख्या अपनी जीविका जनपद के बाहर प्रवासी होकर कमा रहीं हैं । नगरीय क्षेत्रों तथा अन्य प्रान्तों में जाकर रोजगार पाने वालों की संख्या तेजी से बढ़ रही हैं ।

विकासखण्ड स्तर पर विषमता- विकासखण्ड स्तर पर सर्वाधिक अकार्यशील जनसंख्या जसपुरा विकासखण्ड में 64.6 प्रतिशत है जिससे यह स्पष्ट है कि यहाँ कमाने वालों पर निर्भरता अनुपात अधिक है । जबकि रामनगर विकासखण्ड में 46.5 प्रतिशत अकार्यशील जनसंख्या है तथा 53.1 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या है इसका प्रमुख कारण यह है कि यहाँ कि अधिकांश अनुसूचित एवं अन्य पिछड़े वर्ग की महिलाएँ कार्यरत हैं यहाँ पर 62.2 प्रति जनसंख्या कृषक व कृषक मजदूर श्रेणी में आती है । सबसे कम कृषक कमासिन विकासखण्ड में मात्र 43.7 प्रतिशत है तथा कृषिगत मजदूर 16.2 प्रतिशत हैं । इस प्रकार यहाँ कुल कृषि पर आश्रित 59.9 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या हैं । अन्य क्रियाओं के अन्तर्गत यहाँ सर्वाधिक 39.00 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या हैं जो जनपद के बाहर रोजगार में लगी हैं ।

सर्वेक्षण बताता है कि अध्ययन क्षेत्र मे कार्य की कमी, भूमि पर जनसंख्या का दबाव तथा अशिक्षा के कारण अधिकांश जनसंख्या जनपद के बाहर पलायन कर रहीं हैं।

आयु के अनुसार जनसंख्या व कार्यशील जनसंख्या- देश के अन्य भागों की भाँति बांदा जनपद में भी युवा वर्ग की अधिकता है । स्त्री-पुरूष दोनों ही वर्गों में इस वर्ग की प्रधानता तीव्र उत्पादक शक्ति वाला परिवर्तन एवं उच्च निर्भरता अनुपात का द्योतक है (मिश्र, 1996) । अध्ययन क्षेत्र में आयु के अनुसार जनसंख्या को वर्गीकृत करने पर स्पष्ट होता है कि 20 वर्ष से कम उम्र के 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति हैं जो पूर्णतया: कार्यशील जनसंख्या पर आश्रित हैं । 20-60 वर्ष तक के संक्षम उम्र वाले 41.8 प्रतिशत व्यक्ति है जो कार्यशील जनसंख्या के अन्तर्गत हैं । अध्ययन क्षेत्र की सम्पूर्ण कार्यशील जनसंख्या 45.1 प्रतिशत हैं । इसलिए स्पष्ट हैं कि 20 वर्ष से कम उम्र के बच्चे भी कार्य में लगे हुए है जो जानवर चराने, फसल की निराई-गुड़ाई करने, चारा काटने तथा जुताई जैसे कार्य करते हैं । यह भी स्पष्ट है कि 60 वर्ष से अधिक उम्र के केवल 8.1 प्रतिशत व्यक्ति हैं जो कमजोर है और कार्यशील जनसंख्या पर आश्रित हैं क्योंकि प्राथमिक क्रियाकलापों जैसे कठोर कार्य करने में यह संक्षम नहीं है । महिलाओं द्वारा कृषि कार्य, पशुचारण, निराई-गुड़ाई जैसे कार्य कियें जाते है तथा कार्यशील जनसंख्या में सम्मिलित है (तालिका संख्या 2.14) ।

तालिका संख्या- 2.14

जनपद में आयु वर्गानुसार जनसंख्या का प्रतिशत (1997)

आयु समूह	पुरूष	स्त्री	कुल
0-20	26	24	50.1
20-40	15	11	26.2
40-60	9	7	15.6
60-से अधिक	5	3	8.1

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बांदा जनपद, 1997 ।

परिवहन एवं संचार (Transport and Communication)

किसी भी क्षेत्र के आर्थिक विकास में यातायात एवं संचार व्यवस्था का महत्व अप्रतिम है । वास्तव में यह न केवल वर्तमान आर्थिक जीवन का प्राण है, प्रत्युत सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में स्फूर्ति लाने वाली क्रान्ति से मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लाभान्वित हुआ है (रामबरन, 1986) ।

परिवहन सेवा की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र अब भी पूर्णतया विकसित नही है । अध्ययन क्षेत्र में 16 रेलवे स्टेशन 200 किलो मीटर लम्बी रेलवे लाइन में हैं । इस प्रकार प्रति एक लाख व्यक्तियों पर एक रेलवे स्टेशन या प्रति 6 ग्राम पर एक किलोमीटर रेलवे लाइन या प्रति 75 ग्राम पर एक रेलवे स्टेशन की सुविधा प्रदत्त हैं । जनपद के सम्पूर्ण 1206 ग्रामों में से वर्ष 1995-96 तक केवल 403 ग्राम पक्के रास्तों से जुड़े हैं । 43.2 प्रतिशत ग्राम पक्के रास्तों से, 44.10 प्रतिशत ग्राम कच्चे-पक्के रास्तों से जुड़े हुए है तथा 21.63 प्रतिशत ग्राम केवल कच्चें रास्तों से जुड़े हैं ।

जनपद के मध्य से पूर्व-पश्चिम गुजरने वाली रेलवे लाइन मध्य रेलवे का भाग है । बांदा जनपद पश्चिम में झांसी, उत्तर में कानपुर व लखनऊ, पूर्व में इलाहाबाद व बनारस तथा दक्षिण में जबलपुर से जुडा हुआ है । क्षेत्र में दो जंकशन मानिकपुर व खैरार हैं । मानिकपुर जंकशन देश के प्रमुख नगरों को मिलाता हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में सड़क परिवहन के अन्तर्गत प्रान्तीय राज मार्ग झांसी-मिर्जापुर हैं । जिसकी कुल लम्बाई 201 किलोमीटर है । इस राज मार्ग का सेवा केन्द्रों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है । प्रान्तीय राजमार्गो के अलावा 909.71 किलोमीटर पी0डब्लू0डी0 तथा 708 किलोमीटर स्थानीय निकायों की सड़कें हैं। 326.5 किलोमीटर जिला परिषद की सड़कें भी है । जनपद के अन्तर्गत महत्वपूर्ण सड़कें- बांदा-फतेहपुर, बांदा-कानपुर, बांदा-मानिकपुर-चित्रकूट-इलाहाबाद, बांदा-नरैनी-कालिंजर व बांदा-बबेरू-कमासिन-राजापुर, बांदा-महोबा हैं (चित्र संख्या 2.10) । इसके अतिरिक्त प्रमुख कस्बों को जोड़ने वाली सड़कें यथा- अतर्रा-नरैनी, अतर्रा-ओरन, अतर्रा-बबेरू, बबेरू-ओरन, कमासिन-ओरन, बबेरू-मर्का, बांदा-सिंहपुर बाँया बिसण्डा, बदौसा-बघेलाबारी-फतेहगंज, भरतकूप-कालिंजर, कर्वी-राजापुर, राजापुर-इलाहाबाद आदि भी है । जनपद के सभी केन्द्रीय स्थल सड़कों या रेलवे लाइन से जुड़ें हुए हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में 251 पोस्टआफिस हैं जिनमें 240 ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधा प्रदान कर रहें हैं । इस आधार पर लगभग 5 ग्रामों पर एक पोस्ट आफिस की सुविधा प्रदत्त है (तालिका संख्या 2.15) ।

सुविधा-संरचना (Infrastructure)

अध्ययन क्षेत्र एक अर्द्ध विकसित/विकासोन्मुख क्षेत्र हैं । यहाँ अभी पर्याप्त मात्रा में सुविधाओं का अभाव हैं । अधिकतर नगरीय क्षेत्रों से उत्तम
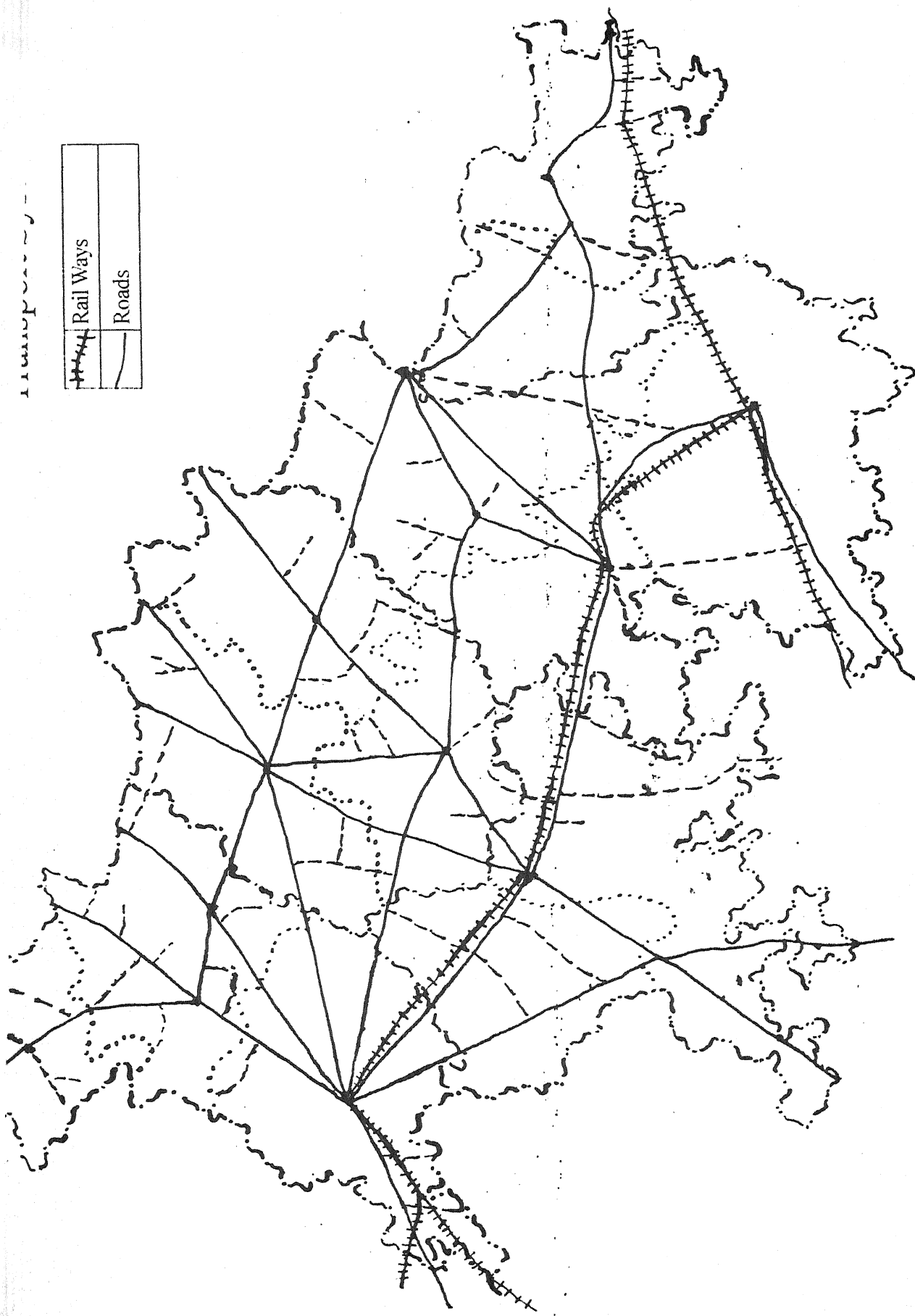
Fig. No. 2.10

तालिका संख्या 2.15

विकासखण्ड आधार पर बस स्टाप व पोस्ट आफिस (1997)

विकासखण्ड	बस स्टाप	डाक घर या पोस्ट आफिस
चित्रकूट	6	13
पहाड़ी	7	20
मानिकपुर	9	13
नरैनी	19	26
महुवा	16	28
कमासिन	3	23
बबेरू	15	23
बिसण्डा	14	22
जसपुरा	3	21
तिन्दवारी	15	23
बड़ोखर खुर्द	12	24
मऊ	6	12
रामनगर	5	11
योग	130	259

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बांदा जनपद, 1997 ।

चिकित्सालयों, पशु चिकित्सालयों, विद्यालयों की सुविधा प्राप्त होती हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में उत्तम सुविधाओं का अभाव हैं । समितियाँ, बैंक का पर्याप्त विकास तुलसी ग्रामीण बैंक के माध्यम से हुआ हैं । बेसिक स्कूल समस्त ग्रामों में होने की योजना हैं । सीनियर बेसिक स्कूल 238 हैं । इन्टर कालेज मात्र 38 है। क्षेत्र में बालिका विद्यालयों की स्थिति काफी बदतर है । 70.0 प्रतिशत से अधिक गांव की बालिकाएँ हायर सेकेन्ड्री स्कूल में पढ़ने जाती हैं । नजदीक दूरी पर बालिका विद्यालयों का अभाव, बढ़ती हुई अराजकता, अनुशासनहीनता, असुरक्षा तथा सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण माता-पिता अपनी युवा बालिकाओं को अधिक दूरी पर स्थित विद्यालयों में भेजने से कतराते हैं । अत: स्त्री शिक्षा स्तर में वृद्धि हेतु आवश्यकतानुसार बालिका विद्यालय खोलने की महती आवश्यकता है (मिश्र एवं पाल, 1989) । ग्रामीण क्षेत्र में 98 चिकित्सालय व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा 21 पशु चिकित्सालय हैं । शोध क्षेत्र में ग्रामीण बैंक/राष्ट्रीयकृत बैंको की 89 शाखाएं कार्य कर रहीं हैं । ग्रामीण क्षेत्र में कृषि मण्डी केन्द्र कोई नहीं हैं । विशेष सुविधाओं हेतु ग्रामीण मुख्यत: नगर व कस्बों पर आश्रित है (तालिका संख्या 2.16) ।

तालिका संख्या- 2.16

विकासखण्ड आधार पर सुविधाएं (1997)

विकासखण्ड	जूनियर बेसिक	सीनियर बेसिक	इण्टर कालेज	चिकित्सालय	पशु चिकित्सालय	बैंक/ग्रामीण बैंक
चित्रकूट	98	12	-	5	1	4
पहाड़ी	99	23	4	8	1	6
मानिकपुर	90	22	2	13	3	7
नरैनी	140	24	5	12	3	11
महुवा	110	20	4	8	2	9
कमासिन	92	14	1	4	1	6
बबेरू	103	20	6	6	1	7
बिसण्डा	82	18	1	7	-	5
जसपुरा	71	15	2	3	1	6
तिन्दवारी	94	25	8	6	4	8
बड़ोखर खुर्द	94	21	4	5	1	10
मऊ	81	16	4	4	2	6
रामनगर	54	8	1	3	1	4
योग	1207	238	38	94	21	89

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका, बांदा जनपद, 1997 ।

सांराशतः बांदा जनपद की भौगोलिक संरचना विषमतापूर्ण है । आवश्यकतानुरूप अवस्थापनाओं का अभाव है । अस्तु क्षेत्र के साश्वत विकास हेतु आवश्यक है कि ग्रामीण स्तर पर सेवा कार्यों एवं परिवहन सुविधाओं का उचित ढंग से विकास किया जाए ।

References

1. Misra, K.K. (1981) : System of Service Centres in Hamirpur District, U.P. (India), Unpublished Ph. D. Thesis, Bundelkhand University Jhansi.
2. Misra, K.K. & Ketram Pal (1989) : Increasing Population of Present Problems Of Bundelkhand Region, U.P., Paper Presented in the National Symposium under COHSSIP Scheme of U.G.C., Atarra P.G. College, December, 22-23.
3. मिश्र, कृष्णकुमार (1996) : बाँदा जनपद विकास की दृष्टि में, सिद्धार्थ ज्योति अंक 1, मई, पृष्ठ- 23-25 ।

4. मिश्र, कृष्णकुमार (1997) : गाँवों के विकास में ताल-तलैयों की भूमिका, कुरूक्षेत्र, अंक 4-5, फरवरी-मार्च, पृष्ठ- 59-61 ।

5. मिश्र, कृष्णकुमार (1997) : परम्परागत घरेलू धन्धे और उनका बदलता स्वरूप, कुरूक्षेत्र, जून अंक 8, पृष्ठ- 11-20 ।

6. मिश्र, कृष्णकुमार (1999) : प्राकृतिक संसाधनों के दुरूपयोग से गाँवों की अस्मिता खतरे में, कुरूक्षेत्र, फरवरी अंक 4, पृष्ठ- 21-23 ।

7. मिश्र, कृष्णकुमार (1999) : पाठा में पेयजल की समस्या, उजाला, जुलाई अंक, पृष्ठ- 14-17 ।

8. Ram Baran (1986) : Role Of Transport in Rural Development : A Sample Study, Uttar Bharat, Bhoogol Patrika, Vol. 22, No. 1, P. 40.

9. Singh, R.L. et. al. (Eds.) : A Regional Geography, National Geographical Society of India, Varanasi, P. 599.

10. Spate, O.H.K. and Learmonth, A.T.A. (1967) : India and Pakistan, Mathuen, London, P. 298.

11. Trevartha, G.T. (1953) : A Case for Population Geography, American Association of Geographers, Vol. 43, PP. 71-97.

12. Varun, D.P. (State Editor, 1977) : Banda District Gazetter, P. 3.

अध्याय 3

उत्पत्ति एवं विकास

(ORIGIN AND EVOLUTION)

उत्पत्ति एवं विकास
(ORIGIN AND EVOLUTION)

अध्याय दो में बांदा जनपद की प्रादेशिक संरचना के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया था जिसके विशेष विश्लेषणात्मक अध्ययन से पूर्णतया स्पष्ट हुआ है कि बांदा जनपद की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण बस्तियों में निवास करती हैं । इस अध्याय में बांदा जनपद की ग्रामीण बस्तियों की उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन किया गया हैं । विभिन्न समयों में मानव ने अपनी आश्रय सम्बन्धी महत्वपूर्ण आवश्यकता का निदान स्थानीय प्राकृतिक कारको के सहयोग से नानाप्रकार की बस्तियों का निर्माण करके किया है जिसका विस्तृत उल्लेख इस अध्याय में प्रस्तुत है तथा ग्रामीण बस्तियों के विकासात्मक स्वरूप का एक मॉडल भी प्रस्तुत किया गया हैं ।

बांदा जनपद बुन्देलखण्ड का एक अति प्राचीन बसा हुआ भाग है जहाँ पर विभिन्न समयों में आकर मानव ने विभिन्न रूपों में बसाव किया हैं । अध्ययन क्षेत्र का चित्रकूट क्षेत्र भगवान राम की तपस्थली, दण्डकारण्य, ऋषि मनीषियों की तपोभूमि के रूप में प्रारम्भिक समय से ही बाहरी लोगों का आकर्षण बिन्दु रहा हैं । यह क्षेत्र प्राचीन समय में चेदि वंशज राजाओं से भी प्रभावित रहा हैं । कहा जाता हैं कि एक हजार वर्ष तक यह जनपद फूलता-फलता रहा हैं । अध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति हेतु सुदूरवर्ती क्षेत्रों से राजा, महाराजा व अन्य महापुरूष यहाँ समय-समय पर पधारें । इनमें अयोध्या के राजा राम, सीता, लक्ष्मण व हस्तिनापुर के महाराजा युधिष्ठिर व उनके भाई (पाण्डव) निर्वासित रूप में तथा अयोध्या के नवाब रहीम प्रमुख हैं । प्रसिद्ध कवि रहीम द्वारा चित्रकूट के महत्वांकन के सम्बन्ध में निम्न पंक्तियां ध्यान देने योग्य हैं :-

'चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश ।
जा पर विपदा परत है, सो आवे यह देश' ।।

वस्तुतः ग्राम्य अधिवासों के सम्बन्ध में सतर्कतापूर्ण अन्वेषण की महती आवश्यकता है क्योंकि ग्रामीण बस्ती की वर्तमान संरचना एवं उसकी विशेषता को मिश्रित सांस्कृतिक आधार के अभाव में समझना कठिन है (अहमद, 1954) और यह उस समय और भी दुरूह हो जाता है जब इतिहास व संस्कृति की लेखनी वर्ग विशेष के हाथ में रहीं हो तथा पक्षपातपूर्ण साहित्य का सृजन किया गया हो ।

काल विभाजन

प्राचीन काल-	(अ)	आर्यो के आगमन से पूर्व (1600 BC से पूर्व)
	(ब)	आर्यकाल (1600 BC से 600 BC तक)
	(स)	बौद्ध एवं मौर्यकाल (600 BC से 300 BC तक)
	(द)	हिन्दू काल (300 BC से 800 ई0 तक)
मध्ययुगीन काल-	(अ)	चन्देल काल (800ई0 से 1526 ई0 तक)
	(ब)	मुगल एवं नवाबी काल (1526ई0 से 1800ई0 तक)
आधुनिक काल-	(अ)	ब्रिटिश काल (1800ई0 से 1947ई0 तक)
	(ब)	स्वतन्त्रता के बाद का काल (1947ई0 से वर्तमान तक)

प्राचीन काल (Ancient Period)

(अ) **आर्यो के आगमन से पूर्व**- बुन्देलखण्ड प्रदेश दृढ़ भूखण्ड गोडवाना लैण्ड का एक स्थिर भू-भाग है जिसमें अध्ययन क्षेत्र उत्तरी-पूर्वी भूभाग में स्थित है जो यमुना नदी द्वारा उत्तरी मैदान से पृथक होता हैं । वनों की अधिकता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की उत्तमता के कारण यह क्षेत्र वास्तव में ऋषि, मुनियों का आश्रम प्रदेश था । प्राचीन युग में पृथ्वी पर मानव एवं उसका विकास पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर था । इस समय मानव का विकास सहज सुलभ भरण-पोषण एवं प्राकृतिक वातावरण पर पूर्णतया निर्भर होने के कारण मैदान एवं वन्य क्षेत्र उनके उपज क्षेत्र रहें होंगे ।

भारतीय इतिहासकारों व पाश्चात्य इतिहासकारों में मतैक्य न होने के कारण 1000ई0 पूर्व के साहित्य एवं जनजीवन निरूपण में विसंगतियाँ दृष्टिगत होती हैं । पाश्चात्य इतिहासकारों के अनुसार 1500ई0 पूर्व लगभग पाश्चात्य आर्य जाति वृहत् भारत में आये और स्थायी रूप से बस गये (मुखर्जी, 1938) । इसके पूर्व इतिहास के लिये वे मौन हैं लेकिन उन्होंने यह लिखा है कि आर्य युद्धकर्मा जाति थी । स्थायी रूप से बसने के पहले उन्हें यहाँ की मूल प्रजातियों से सशस्त्र संघर्ष करना पड़ा था । इससे यह सिद्ध होता है कि इससे पूर्व भी यहाँ जनजीवन व समाज रहा होगा । भारत में पुरातत्व सर्वेक्षण के अनुसार 8100 वर्ष पूर्व मैदानी भागों में सघन बस्तियां थी । इस आधार पर वे पृथ्वी पर आदि मानव के समकालीन रहें होंगे । उस समय की सभ्यता व व्यवसाय खाद्य पदार्थो के एकत्रीकरण एवं वन्य जीवन पर निर्भर रहीं होगी । निवास के लिए वे मकान, पेड़ों

की डालों पर, ऊँचे स्थानों में जल सुलभता को ध्यान में रखकर निर्मित करतें थे। सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से एक परिवार के लोग जंगली जानवरों के कारण पास-पास रहतें थे ।

बाँदा जनपद जो उस समय वनों से आच्छादित था । वस्तुतः मानव द्वारा आवासित था । यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि वे किस रूप में आवासित थे या उनका बसाव प्रारूप क्या था लेकिन यह निर्विवाद है कि यहाँ के निवासी आदिम जनजाति थे । जिनका मुख्य व्यवसाय प्राचीन ढंग के अस्त्रों की सहायता से वन्य जन्तुओं का आखेट करना एवं वनों से खाद्य पदार्थ इकट्ठा करना था । इस युग की अन्तिम अवस्था में इन जातियों ने आदिम कृषि करना भी सीख लिया था । यह छोटे-छोटे पुरवों में पारिवारिकता के अनुसार निवास करतें थे जिनकी बस्तियां अस्थिर थी । हिन्दू साहित्य के अभिलेखों में वर्तमान कालिंजर की महत्ता आज भी देखने को मिलती है और भगवान शंकर का मन्दिर व महल प्राचीनम वास्तुकला का उदाहरण है । शंकर के विषपान करने पर पागल शंकर का विष कालींजर नामक स्थान पर ही शान्त हुआ था (बाल्मीकि, 1960) तभी से इसका नाम कालांजर पड़ा जो बाद में कालींजर हुआ । सतयुग में यह स्थान महागढ़ के नाम से विख्यात था तब भी यह प्रमुख तीर्थ स्थान था । इसके चारों तरफ एक विशाल नगर राज्य था जिसका आधिपत्य सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड (उत्तर प्रदेश के सात जिले व मध्य प्रदेश के आठ जिले) में विस्तृत चारों ओर से यह ढका था । यहाँ के वनों में ऋषि मुनि व वन्य जातियां निवास करती थीं इस समय आश्रम शिक्षा पद्धति थी जिसमें विद्याध्ययन हेतु दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे । कालींजर के किले में प्रतिष्ठित शिवलिंग अपनी प्राचीनता व प्रतिष्ठा का आज भी द्योतक है । ऐसा मानते हैं कि त्रेतायुग में कालींजर पिंगलगढ़ के नाम से विख्यात हुआ जो द्वापर में कीर्तनगिरि कहलाया । उपरोक्त विवेचन से पूर्णतया स्पष्ट है कि यह क्षेत्र सभ्यता एवं संस्कृति तथा बसाव में अग्रणी रहा है । यहाँ के व्यक्ति कच्चे-पक्के एवं मिश्रित मकानों में निवास करते थें ।कालींजर के किले की प्राचीन वास्तुकला एवं स्थापत्यकला से स्पष्ट है कि इस समय का मानव काफी सुसंस्कृत एवं कुशल था।

त्रेतायुग में भगवान राम ने अयोध्या से निर्वासित होकर अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत चित्रकूट पावन स्थली में निवास किया था (बाल्मीकि, 1960) । उस समय स्थानीय निवासी केवट, कोल, किरात व अन्य प्रसिद्ध ऋषि मुनि तथा महर्षि

उन्हें मिले थे । राम स्वयं अगस्त ऋषि के आश्रम आये थे (चाइल्डी, 1924) जो कालींजर के पास था । चित्रकूट से कालींजर तक व चारो तरफ फैले हुए वन क्षेत्र को दण्डकारण्य कहते थे (चाइल्डी, 1924) । भगवान राम को स्थानीय निवासियों ने भेंट में फल व कन्दमूल अर्पण किये थे । इससे प्रतीत होता है कि यहाँ के निवासी खाद्य पदार्थो का एकत्रीकरण करके जीवनयापन करते थे । उपरोक्त सभी घटनायें लगभग 8000ई0 पूर्व से 2500ई0 पूर्व सम्पन्न हुई मानी जाती हैं । इस काल में विशेषतया मनुष्य जंगलों में आवासित था लेकिन उसे वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान एवं जलवायु विज्ञान का अच्छा ज्ञान था (चाइल्डी, 1924) और इस विद्या में ऋषि-मनीषियों का प्रमुख हाथ था । ऋग्वेद जो आर्यो का प्राचीनतम ग्रन्थ है, उसमें अधिकांशत: पंजाब की सात नदियों का ही उल्लेख मिलता है, दक्षिणी भाग व बुन्देलखण्ड का वर्णन बहुत कम है । लेकिन इसका यह तात्पर्य भी नहीं है कि उस समय यहाँ पर सभ्य मानव नहीं थे, वरन् इसका अर्थ यह माना जा सकता है कि वनों के कारण उन्हें अन्य क्षेत्रों का विशेष ज्ञान नहीं रहा होगा। यहाँ के निवासियों को आर्य दस्यु या यातुधान भी कहते थे जिससे विदित होता है कि यहाँ मूल भारतीय संस्कृति पुष्पित हुई जिसे द्रविण संस्कृति के नाम से सम्बोधित किया जाता है ।

महाभारत काल में विराटपुरी नामक नगर था जहाँ पर पाण्डवों ने अपना अज्ञातवास व्यतीत किया था । यह नगर वर्तमान बाँदा नगर के पास था (बाँदा गजेटियर) जिसके अवशेष आज भी उपलब्ध हैं । पाण्डवों ने अज्ञातवास हेतु इस क्षेत्र को चुना था । इससे प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र आवागमन की सुविधाओं से वंचित जंगली क्षेत्र रहा होगा । लेकिन विराटपुरी जैसे नगर की स्थिति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि यह समृद्धिशाली आवासीय क्षेत्र भी रहा होगा । गायों को चराना व खाना बनाना, धूत क्रीड़ा आदि इस तत्व को स्पष्ट करते है कि यहाँ के निवासी कृषि से पूर्णतया परिचित थे ।

(ब) आर्यकाल- ऋग्वेद में स्थायी मानव बसाव, सुसंगठित समाज और पूर्ण विकसित सभ्यता का वर्णन मिलता है (स्मिथ, 1940) । आर्य सर्वप्रथम पंजाब एवं सप्तसिन्धु के क्षेत्र में और इसके पश्चात् 800ई0 पूर्व से 1000ई0 पूर्व तक गंगा-यमुना के मैदान की ओर स्थानान्तरित हुए और धीरे-धीरे स्थायी रूप से बसते गये । वैदिक युग में आर्यो की बस्तियाँ इस भाग तक नहीं पहुंची थी । यमुना से दक्षिण एक सघन

वन था (सिंह, 1960) । यहाँ जो लोग निवास करते थे वे राक्षस या दस्यु कहलाते थे लेकिन इस काल के मध्य में कई ऋषि यमुना से दक्षिण आये थे । ऋषि केवल तप करने वाले ब्राह्मण ही नहीं वरन् योद्धा भी थे जिन्होंने यहाँ के निवासियों के साथ युद्ध करके, उनको भगाकर उनके स्थान में आश्रम बनाकर रहने लगे । आर्य मानव समूह में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों का प्रमुख स्थान था । यद्यपि यह कृषि कार्य से पूर्णतया परिचित थे लेकिन स्वयं कृषि कार्य नहीं करते थे । वैश्य समाज मुख्य रूप से कृषि एवं व्यापार पर आधारित था । आर्यो ने आदिवासियों (दस्यु) व पहले से आवासित सेवा जातियों की सहायता से वनों को साफ किया एवं कृषि भूमि के अनुसार बड़े-बड़े गांवों की स्थापना की (तिवारी, 1960) । एक गांव के लोग जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था तथा रक्त सम्बन्ध के आधार पर एक दूसरे से सम्बन्धित थे तथा पारिवारिक सम्बन्ध व शादी सम्बन्ध के आधार पर क्षेत्र में अन्य गांवों से सम्बन्ध स्थापित करते थे । नये गाँवों की स्थापना आर्यो द्वारा एक सैन्य शिविर के रूप में होती थी । जो धीरे-धीरे ग्राम का रूप ले लेती थी (हावेल, 1923) और ग्राम्य सामाजिक वातावरण धीरे-धीरे विकसित हो जाता था। आर्यो ने विभिन्न समूहों के आधार पर राज्यों की स्थापना की । यह राज्य एक दूसरे से प्राकृतिक सीमाओं यथा- नदी, पहाड़, वन एवं अकृष्य भूमि से अलग होते थे ।

आर्य काल में स्थापित होने वाला आर्यो का प्रथम राज्य अध्ययन क्षेत्र में चेदि राज्य के नाम से जाना जाता था जो यमुना के दक्षिण वृहद भू-भाग पर फैला था (तिवारी, 1933) । कालींजर कुछ समय तक चेदि राज्य की राजधानी रहा है । इस काल में ग्रामीण अधिवासों का विकास धीरे-धीरे विभिन्न भूभागों में हुआ। इस समय के बसाव को 6 प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता हैं-

धोसा या गोप (जानवरों के रहने का स्थान); पालि (असभ्य छोटी-छोटी एकत्रित झोपड़ियाँ); ग्राम (आर्यो का प्रमुख अधिवास); दुर्ग (आपातकालीन निवास स्थल); खरवाट (कस्बा); तथा नगर (राजधानी) प्रमुख थे । प्रथम तीन अधिवास ग्रामीण तथा अन्तिम तीन अधिवास नगरीय श्रेणी में माने जा सकते हैं । कृषि प्रधान आर्य सभ्यता होने के कारण प्रथम तीन अधिवास अत्यधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं । पाली एवं ग्राम खेतिहर क्षेत्र के गर्भ में स्थित थे । जंगली जानवरों एवं असभ्य जातियों से सुरक्षा के कारण ग्राम ऊँची भूमि पर बड़े आकार में प्राकृतिक अवरोध के किनारे स्थापित होते थे (तिवारी, 1933) । साधारणतया रामायण व महाभारत काल में ग्रामों

के विभिन्न स्वरूपों यथा- आश्रम (शिक्षा केन्द्र), विहार (सन्यासियों के रहने का स्थान), कुल (छोटे परिवार का निवास स्थल), कुटिक (एक व्यक्ति के अधीनस्थ परिवार), खेता (अच्छी प्रकार सुरक्षित व किलेबन्दी युक्त), अवाक्शा (मेहमान गृह/ विश्राम गृह) आदि का अभ्युदय हुआ था (आचार्य, 1946) । शान्ति स्थापना के फलस्वरूप इनका स्वरूप निरन्तर बिखरता गया । फिर भी प्रमुख आर्य गाँवों में ही आवासित रहे । निम्न जातियों/सेवा जातियों ने आवास के रूप में डेरो को भी विकसित किया (मुखर्जी, 1938) । इस प्रकार वैदिक आर्यो के समय ग्राम एक मौलिक प्रशासनिक इकाई था । इसमें अपना मुखिया भी था जिसे ग्रामीणी के नाम से पुकारते थे (मुखर्जी, 1938) ।

पुरातत्व विभाग के विभिन्न खोजों एवं उपलब्ध साहित्य के आधार पर अध्ययन क्षेत्र का मैदानी भाग पूर्ण रूप से आर्यो द्वारा आवासित था । इस भाग में आर्यो ने अधिवासों के विभिन्न स्वरूपों को जन्म दिया ।

अध्ययन क्षेत्र का दक्षिणी व पूर्वी भाग पथरीला, वनाच्छादित व अकृष्य होने के कारण आदिवासी जातियाँ निवास करती थी जो एकत्रीकरण अर्थव्यवस्था पर जीवकोपार्जन करती थी । इनकी बस्तियाँ अस्थायी व घास-फूस से निर्मित होती थी जो युद्धकर्मा आर्य जाति से सम्पीड़ित होकर दक्षिण एवं पूर्व की ओर प्रवासित होते रहें । चूंकि आर्य मानव समूह जनपद के उत्तर यमुना नदी पार करके बांदा जनपद में प्रविष्ट हुए थें । कृषि कार्य हेतु इन्होंने शनैः शनैः सर्वप्रथम यमुना नदी के किनारे से दक्षिण के तरफ के वनों को साफ करके कृषि कार्य प्रारम्भ किया था । उत्तर में यमुना नदी तथा अन्य दिशाओं में ऊबड़-खाबड़ पथरीली भूमि तथा वनाच्छादित भाग होने के कारण आर्यो के लिये यह क्षेत्र किला सदृस सुरक्षा भी प्रदान करता था (तिवारी, 1933) । वनाच्छादित भाग में आर्य ऋषियों की कुटी व आश्रम थे। ये शिक्षा केन्द्र थे । आर्य विभिन्न गोत्रों में विभक्त थे । इन्होंने गोत्रों के आधार पर गाँवों की स्थापना की और युद्धकर्मा से कृषिकर्मा में परिवर्तित होते रहें। यही कारण है कि यमुना नदी के उत्तर से आते हुए नये-नये आर्य कबीलों के यौद्धिक नीति के कारण पूर्व आवासित आर्यो को भी आदिवासियों की तरह दक्षिण की ओर स्थानान्तरित होना पड़ा (ताराचन्द्र, 1934) । जनपद के दक्षिणी भाग में आर्यो ने उपयुक्त भौगोलिक परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध सुरक्षात्मक कालींजर किला निर्मित किया, जो एक अजेय दुर्ग था ।

(स) **बौद्ध एवं मौर्यकाल-** बाँदा जनपद में प्राचीन व मूल सभ्यता में वास्तविक परिवर्तन ईसा पूर्व छठी शताब्दी में चेदि राज्य की कलचुरी शाखा से

प्रारम्भ हुआ था । यमुना के उत्तर में कौशाम्बी नगर राज्य था । इन दोनों राज्यों में व्यापारिक व सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप ग्राम्य जीवन में सुव्यवस्था व बस्तियों में द्रुतगति से स्थिरिता आ गई । कृषि कार्य, वाणिज्य एवं व्यापार में उत्तरोत्तर विकास से सांस्कृतिक भूदृश्यों में विशेष परिवर्तन हुए । तत्कालीन अन्य राज्यों में वैवाहिक सम्बन्ध होने के कारण आध्यात्मिक व भौतिक ज्ञान के क्षेत्र में प्रचार-प्रसार हुआ । परिणामस्वरूप व्यवसायिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में नये आयाम विकसित हुए । खाद्यान्न, तेल, हीरे जवाहरात, वस्त्र एवं जानवरों के व्यापार एवं उत्पादन में वृद्धि हुई (डेविस, 1903) । स्थापत्य कला के विकास के फलस्वरूप भवनों में निर्माण की सामग्री, कला, आकार-प्रकार एवं स्वरूपों में बहुत बड़ा अन्तर आ गया । बड़े-बड़े भवनों, बाजारों, मनोरंजन गृहों, पूजा स्थलों का निर्माण हुआ। बौद्ध धर्म के प्रचार व गौतम बुद्ध के प्रभाव स्वरूप स्तूपों का निर्माण हुआ जिसका एक भग्नावशेष मऊ के उत्तर में उपलब्ध है । बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध कई बार यहाँ पधारे थे । राज परिवार मे बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार के कारण बौद्ध स्थापत्य कला को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला । जैन धर्म का भी इस क्षेत्र में प्रभाव पड़ा । कालींजर में कई जैन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं । वैदिक काल की वर्ण व्यवस्था के आधार पर स्थापित ग्राम्य वातावरण में परिवर्तन आ गया था तथा वर्ण व्यवस्था के आधार पर कार्य विभाजन का लोप प्रारम्भ हो गया । ब्राह्मण व राजपूत भी कृषि एवं पशुपालन करने लगे । शूद्र एवं निम्न वर्णो के लोग मजदूर के रूप में सहयोग करते थे । फिर भी गांव एक प्रशासनिक इकाई बना रहा । भूमि पर व्यक्ति का अधिकार माना जाता था जिसे वह विक्रय या दान आदि कर सकता था (आचार्य, 1946) । खेतिहर भूमि पर ही उपज का कुछ भाग राज्य को देना पड़ता था । ग्राम्य वातावरण में कुटीर उद्योग यथा- वस्त्र उद्योग, टोकरी उद्योग, बर्तन उद्योग आदि का विकास हुआ । सम्पत्ति के बटवारे के सम्बन्ध में सभी पुत्रों को सम्पत्ति में बराबर हिस्सा मिलता था लेकिन स्थान एवं समय के अनुसार बड़े पुत्र को कुछ अधिक भाग दिया जाता था (हावेल, 1923) ।

इस समय ग्रामीण बस्तियों के विकास में प्रगति हुई । नये-नये ग्राम कृषि क्षेत्र जल स्रोतों (तालाब, नदी, कुओं) के पास विकसित हुए जिनमें मड़फा, बदौसा, अभयपुर आदि प्रमुख हैं । इन स्वशासित ग्रामों में साधारण वादों की सुनवायी ग्रामीण द्वारा तथा गम्भीर वाद अधिकृत सम्राट द्वारा या नियुक्त व्यक्ति द्वारा

निर्णित होते थे । 300ईसा पूर्व में बांदा जनपद मौर्य साम्राज्य के आधीन था । चूंकि इसकी राजधानी उज्जैन अध्ययन क्षेत्र से दूर थी । इसलिए उज्जैन अधिक दूरी पर होने के कारण कालींजर में उनका एक क्षेत्रपाल रहता था । सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु क्षेत्र का भ्रमण किया था । सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् 194 ई0पू0 में जनपद शुंगों के अधिकार में आ गया । वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के फलस्वरूप सीतापुर, शिवरामपुर, भरतकूप, खोही, गिरवाँ आदि ग्रामों का आर्विभाव हुआ । पुष्यमित्र बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी था । उसने बौद्ध धर्म को उखाड़ फेकने के लिये भरपूर प्रयत्न किया । फलतः बौद्ध धर्मावलम्बी गाँव गैर आबाद हो गये लेकिन जैन धर्म पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । नागवंश के शासन काल में यह क्षेत्र एक स्वतन्त्र गणराज्य की तरह था । शीघ्र ही शको ने इस क्षेत्र पर आधिपत्य कर लिया लेकिन इनका राज्य बुन्देलखण्ड में अधिक दिनों तक नहीं रहा (बाँदा गजेटियर) । यह समय अशान्ति का था लेकिन इन आघातों से भी यहाँ के निवासी विचलित नहीं हुए और अपने-अपने गांवों की रक्षा करते रहे ।

(द) हिन्दू काल- गुप्त काल प्राचीन भारत का स्वर्णयुग था । इस समय वास्तुकला व स्थापत्यकला की उन्नति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी थी और कला तथा साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई तथा समस्त साम्राज्य समृद्ध एवं भलीप्रकार सुशासित थे । इस काल में कला, धर्म और काव्य के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई । परिणामस्वरूप महान गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास में अन्य सम्राटों की तुलना में संतोषजनक चित्र प्रस्तुत करता है (तिवारी, 1933) ।

विकास की दृष्टि से यह समय बांदा जनपद के लिये महत्वपूर्ण रहा है। इस काल में यहाँ अनेक नये-नये दुर्गों की स्थापना हुई, जिसमे किला मड़फा, रनगढ़, अजयगढ़, सिहुड़ा, गिरवाँ व बदौसा प्रमुख है तथा पुराने किले कालींजर का विकास किया गया । गुप्त काल में यह जनपद प्रत्यक्ष रूप से गुप्त नरेशों के आधिपत्य में था । यहाँ पर इस समय चन्द्रव्रह्म चन्देल वंशीय गुप्त सम्राटों के सामन्त के रूप में शासन करता था जिसकी राजधानी कालींजर थी । मण्डलीय सुरभिचन्द्र का नाम गुप्त सामन्त के रूप में जाना जाता है जो गुप्त नरेशों का विश्वासपात्र था । क्षेत्र में नये-नये गांवों का अभ्युदय, कृषि एवं वाणिज्य की सुव्यवस्था इसी युग की देन है । फसल सहचर्य एवं विभिन्न फसलों का उत्पादन तथा वाणिज्य विकास के कारण अन्य लोगों

का रूझान इस क्षेत्र की तरफ आया और इसी का परिणाम था कि क्षेत्र कि किलेबन्दी हो गयी । अजयगढ़, बहादुरपुर, सन्तपुर, धुधुर, लहौरा, खरगपुर, बुढ़ौली आदि ग्रामों की स्थापना हुई । अभयगढ़ नामक विशाल दुर्ग की स्थापना तीसरी एवं चौथी शताब्दी में केन नदी से 5 मील व यमुना नदी से 5 मील दूर दोआब में एक ऊँचें टीले पर हुई । इसके चारों ओर एक ग्रामीण बस्ती थी जो कृषि व पशु पालन में संलग्न थी। इस दुर्ग पर पुरातत्व विभाग द्वारा अभी तक कार्य नही हुआ है जबकि यह महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा हैं ।

इस काल में ग्राम मुख्यतः कृषि पर निर्भर थे जिनमें गेहूँ, बाजरा, ज्वार, तिल का उत्पादन प्रमुख था । ये ग्राम कच्चे रास्तों से एक दूसरे से जुड़े हुए थे । कृषि अत्यधिक उपजाऊ क्षेत्र में होती थी । पैदावार औसतन कम थी। पशुपालन कार्य कृषि के साथ-साथ अधिक होता था । घी और दूध की सर्वत्र अधिकता होते हुए भी माँग शून्य होने के कारण उसका व्यापार बिल्कुल नही होता था । कृषि उपज व पशुओं को भी आपसी क्रय-विक्रय के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जाता था । अकृषित भूमि की अधिकता होने के कारण गांव छोट्े-छोटे व दूर-दूर बिखरें हुए थे तथा सामाजिक सम्बन्धों से एक दूसरे से जुड़े थे फिर भी अधिकतर भाग में गौड़, कोल, भील, आदि आदिम जातियां ही निवास करती थी । गुप्त साम्राज्य काल के पतन के बाद हर्षवर्धन ने इस क्षेत्र में अपना अधिकार कर लिया । हर्ष के शासन काल में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस क्षेत्र का भ्रमण करके यहाँ के निवासियों एवं कृषि विकास के सम्बन्ध में निम्न उद्गार प्रस्तुत किये ।

'बुन्देलखण्ड में गेहूँ व चावल की खेती होती हैं । उसने इस क्षेत्र को 'चिह-चिह टू' की संज्ञा प्रदान की (बांदा गजेटियर) । किसानों को अपनी पैदावार का कुछ अंश कर के रूप में राजा को देना पड़ता था । यह कर पैदावार के हिसाब से लगता था । नई भूमि पर कृषि करने पर कर नहीं अदा करना पड़ता था । अतः कृषि के प्रोत्साहन के साथ-साथ नई-नई बस्तियों का आर्विभाव भी प्रारम्भ हुआ ।'

सन् 647ई0 में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् जनपद में क्षेत्रीय राजाओं का प्रभुत्व बढ़ने लगा जिसमें परिहार पहले आये लेकिन 800ईसा में चन्देलों के आने पर यह दक्षिण की ओर पलायन कर गये । इस समय अनेक राजपूत जातियां पश्चिमी उत्तर प्रदेश व राजस्थान से आकर बसने लगी थी, अतः नये-नये ग्रामों

के पास-पास बसने के कारण लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आने लगे जिससे क्रय-विक्रय, निवास पद्धति तथा एक दूसरे के विकासशील तरीकों को अपनाया जाने लगा । अधिकांश घर कच्चे एवं स्थानीय उपलब्ध संसाधनों पर आधारित थे । जानवरों के लिये भी अलग से घर बनाये जाने लगे । मकान बड़े-बड़े तथा विशाल आंगन वाले होते थे । आंगन में गर्मी या खुले मौसम में जानवरों को बांधने के लिये खूंटे भी गड़े रहते थे । गृह में एक ही मुख्य दरवाजा होता था । आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही चन्देलों का शासन स्थापित हो जाने से पुनः एक दुर्गयुक्त गांवों के विकास की प्रकृति बढ़ी ।

मध्ययुगीन काल (Medieval Period)

(अ) चन्देल काल- सन् 800ई0 में नानुकदेव द्वारा चन्देल राज्य स्थापित हो जाने से बस्तियों के विकास में अधिक प्रगति हुई । इस राजवंश की धाक मध्य कालीन इतिहास में आज भी गूँजती हैं । जनपद से बाहर खजुराहों के मन्दिरों का निर्माण इसी वंश की देन है । दुर्ग कालींजर की सैन्य व्यवस्था प्रमुखतः यहीं से संचालित होती थी । इन्होंने अनेको विष्णु व शिव मन्दिरों का निर्माण कराया । 10वीं शताब्दी तक चन्देल राज्य अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंच गया था । मध्ययुग में कालींजर एक प्रसिद्ध दुर्ग था । कालींजर का नीलकण्ठ मन्दिर अपनी विशालता व वास्तुकला के लिए पूरे देश में प्रसिद्ध था । इस समय कालींजर प्रधान नगर व आपात राजधानी था । कीरतपुर, बघेलपुर, संग्रामपुर, बहादुरपुर, दिखितवारा, मदनपुर, मोहनपुरवाँ, लड़ाकापुरवाँ, भवानीपुरवाँ, जौरही, अलिहा, बिसण्डा, इटरी (अतर्रा), मटौंध, बबेरू आदि गांवों की स्थापना इस काल के मध्य में हुई। इस काल में वनों को साफ करके कृषि कार्य अच्छी प्रकार से प्रारम्भ किया गया। इससे अधिकतर वन खत्म होने लगे तथा नये-नये गांव आवागमन के रास्तों पर जलपूर्ति की सुविधा से स्थापित हुए । इनमें जसपुरा, सिंधन, पपरेन्दा, तिन्दवारी, मुरवल, बड़ोखर, चिल्ला, पहाड़ी आदि ग्रामों की स्थापना हुई । प्रारम्भ में ये ग्राम एक जाति के कुछ परिवारों का समूह ही थे जिनका आकार पुरवा सदृश था । जंगली जानवरों से सुरक्षा को ध्यान में रखकर इन्होंने अपने मकान बहुत सुरक्षित बनाये जिसमें मिट्टी की दीवारें तथा छतें खपरैल की होती थी । वस्तुतः चन्देल राजाओं ने इस क्षेत्र के विकास में अहम् भूमिका निभायी । इनके समय में लोगों की आवश्यकताओं से सम्बद्ध अनेक सुविधाओं यथा- तालाबों व मन्दिरों का निर्माण, पेयजल सुविधा आदि का विकास किया गया (गैरीसन, 1937) ।

महोबा इनकी राजधानी रही है । इनके समय में ग्रामीण बस्तियों का काफी विकास हुआ । इसका कारण यह था कि चन्देल राजा खुश होकर राजपूत या अन्य जाति के समुदायों को भूमि दान देता था । इस समय चन्देलों के आठ किलों में कालींजर, मड़फा व अजयगढ़ भी प्रसिद्ध थे । कालींजर सबसे बड़ा दुर्ग था । इतिहासकार निजामुद्दीन के अनुसार कालींजर की जोड़ का किला दूसरा नहीं था । महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश, अलाउद्दीन व शेरशाह के आक्रमण इसी काल में कालींजर में हुए लेकिन किसी ने भी इसे अपने अधिकार में नहीं रख पाया । गंगा-यमुना के मैदानी भाग में मुसलमानों द्वारा हिन्दूओं को सताए जाने के कारण अनेक हिन्दूओं ने बांदा जनपद में आकर चन्देलों के राज्य में शरण ली । यही कारण है कि जनपद में अधिकतर ग्राम जाति प्रधान तथा इकट्ठे समूहों में मिलते हैं । दिखित राजपूतों ने केन-यमुना दोआब में आश्रय लिया । इसलिये आज भी इस क्षेत्र के सभी गांवों में दिखित राजपूतों की प्रधानता हैं (चित्र संख्या-1) । इन्होंने तिन्दवारी विकासखण्ड के 20 ग्रामों में आश्रय प्राप्त कर उन्हें आबाद किया। कुर्मी जाति के 18 गांव एक गुच्छे की तरह बबेरू तहसील में व 10 गांव बांदा तहसील में इकट्ठे स्थित हैं । ब्राह्मणों को बहुमत कमासिन, चित्रकूट, बिसण्डा, नरैनी विकासखण्डों में हुआ । जाति आधारित ग्रामों का वितरण इस युग की देन हैं । अजयगढ़ के पास बघेलावारी नामक ग्राम बघेल राजपूतों ने स्थापित किया तथा कुछ समय के लिये इनका भी क्षेत्र में प्रभुत्व रहा लेकिन इस काल में मुसलमानों का क्षेत्र में कोई प्रभाव नहीं रहा तथा चन्देल आधिपत्य में कालींजर ही एक मात्र ऐसा राज्य था जहाँ पर मुसलमानों के प्रभाव का कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

कन्नौज व दिल्ली पर लोदी वंश का आधिपत्य हो जाने तथा इसके पश्चात् मुस्लिम राज्य विस्तार से राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली आदि के समस्त भाग से राजपूत जातियों का वृहद पैमाने पर स्थानान्तरण हुआ । वहाँ से स्थानान्तरित होने पर पहले यह लोग उन्नाव क्षेत्र में बसे तत्पश्चात् अलाउद्दीन के शासन काल में इन राजपूत जातियों का पुनः स्थानान्तरण अध्ययन क्षेत्र में हुआ । प्रमुखतया यह समय राजपूत जातियों के स्थानान्तरण का रहा है। अध्ययन क्षेत्र मुख्य रूप से इसी काल में आबाद हुआ ।

12वीं शताब्दी में बाहर से आकर बसने वाली प्रमुख जाति मोहरे थी जिसे अब मोहार के नाम से जाना जाता है । इसके सन्दर्भ में यह कथन है कि

DISTRICT - BANDA

Evolution of Medieval Clan Areas
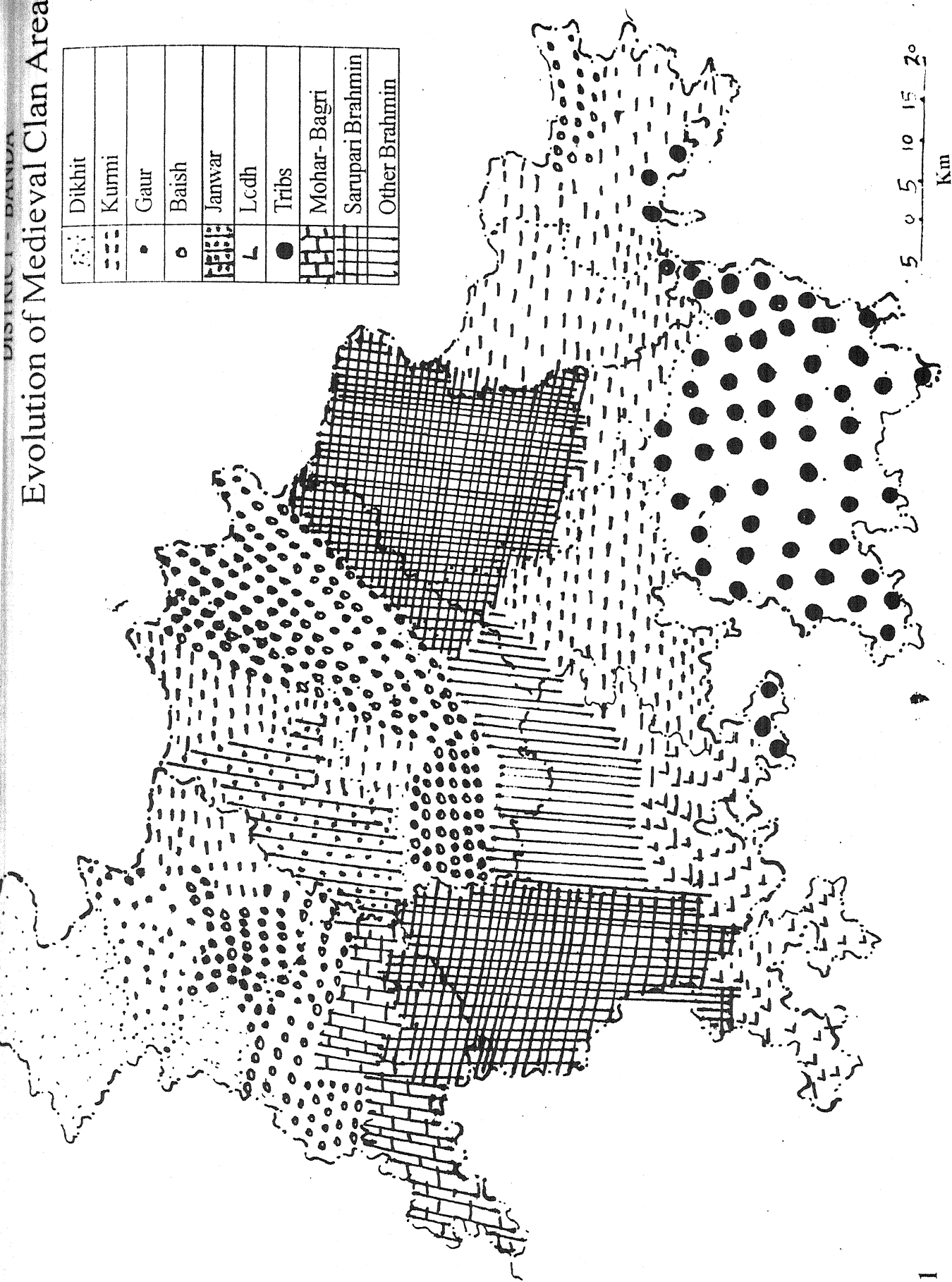
Fig. No. 3.1

यह लोग पृथ्वीराज चौहान की सेना का ही एक भाग थे । क्षेत्रीय सर्वेक्षण से यह तत्व प्रकाश में आया है कि चौहान जाति सैनिक कार्यो में अग्रणी थे । ऐसे कार्यो में अग्रणी होने के कारण इन्हें मोहरे कहतें थे । इस समय दुर्ग कालींजर के आस-पास विभिन्न ग्रामीण बस्तियों यथा- सतवारा, बिहरका, मीना, बसिया, नेहरा, गौहानी, खरौनी, आदि का विकास हुआ । 13वीं शताब्दी में अध्ययन क्षेत्र में राजस्थान एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश से आने वाली जातियों में गौर व दिखित प्रमुख थे ।

वैश्य जाति के लोग जिला रायबरेली से आकर लामा, पचनेही, महोखर, महुई, पपरेन्दा से तिन्दवारी तक के क्षेत्र में बस गए जो उस समय अनुउर्वर क्षेत्र था । दिखित जाति जसपुरा विकासखण्ड में जसपुरा, गौरीकला, गड़रिया, रामपुर, बरेहटा, नाँदादेव, तनगामऊ, चंदवारा आदि ग्रामों में बस गये । गौर जाति के लोग तिन्दवारी विकासखण्ड में निवाइच, पिपरहरी, पलरा, खपटिहाकला, अतराहट आदि गांवों में आकर बस गये । इसके पश्चात् इन जातियों में से कुछ बबेरू, कमासिन, बिसण्डा, नरैनी, विकासखण्डों में पुनः स्थानान्तरित हुए ।

(ब) **मुगल एवं नवाबी काल**- इस काल में ग्रामीण अधिवासों के विकास में पर्याप्त वृद्धि हुई । मुगल शासकों मे अकबर का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । जिन्होंने प्रशासनिक दृष्टि से सम्पूर्ण क्षेत्र को सूबा, सरकार एवं महल में विभक्त किया । अकबर के समय में ही प्रशासनिक सेवा केन्द्रों का व्यवस्थित पदानुक्रम प्रकाश में आया । अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत कालींजर सरकार थी जिसमें आठ महल- औगासी, कालींजर, माड़ा, सेहुड़ा, सिमौनी, सादीपुर, रसिन व खडेह थे । सबसे बड़ा महल सिहुड़ा था जो केन नदी के पूर्व में मुख्य प्रशासनिक केन्द्र भी था । सैन्य छावनी कालींजर था (ड्रेक ब्रोकमैन)। दूसरी सरकार भटगोरा (इलाहाबाद जिला) थी जिसमें कर्वी व मऊ का अधिकांश भाग आता था । सरकार, परगना केन्द्र व महल को कच्चे रास्ते व सड़कों से सम्बद्ध किया गया । रास्ते में सराय व कुएं बनवाये गये । जहाँ विभिन्न ग्रामों का विकास हुआ । राजस्व निर्धारण वस्तुतः भू माप पर आधारित था तथा वास्तविक कृषि उत्पादन भूमि के विकास पर निर्भर करता था। राजस्व एकत्रीकरण का प्रभाव ग्रामीण सेवा केन्द्रों के विकास पर पड़ा । इस समय कुछ सेवा केन्द्र विश्राम केन्द्र के रूप में विकसित हुए जबकि कुछ बाजार केन्द्र के रूप में । नदियों पर पुलों व उचित आवागमन व्यवस्था न होने के कारण वर्षा ऋतु में अधिकांश अधिवासों का सम्बन्ध एक दूसरे से समाप्त

हो जाता था । जैसे केन नदी के कारण खंडेह महल का सम्बन्ध बांदा जनपद के पश्चिम भाग से पूर्णतया अलग हो जाता था ।

सभी आवासीय केन्द्र कच्चे मार्गों व पगडंडियों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्ध थे । लेकिन जिनकी सम्बद्धता वर्ष पर्यन्त सम्भव नहीं थी । यह क्षैतिजीय असम्बद्धता ब्रिटिश काल तक बनी रही । ब्रिटिश काल से पूर्व 17वीं शताब्दी तक क्षेत्र का अधिकतर भाग बुन्देल राजाओं द्वारा प्रभावित रहा जिसमें छत्रसाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है । छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् बुन्देल शासक आपस में सत्ता प्राप्ति हेतु युद्ध करते थे जिससे कई पुराने परगने छोटे-छोटे उपखण्डों में बट गये। इसी समय भूरागढ़, खैरागढ़, जसपुरा, पैलानी, आदि ग्रामों का विकास हुआ । इस अवधि में यातायात के साधनों अर्थात सड़कों एवं रेलों का पूर्णतया: अभाव था ।

छत्रसाल की सहायता करने के कारण बाजीराव पेशवा को छत्रसाल ने अपना पांचवाँ बेटा मानकर अपने राज्य का 1/5 भाग उसे दे दिया था जिसमें अध्ययन क्षेत्र आता है । बाजीराव पेशवा व मस्तानी बेगम का पुत्र बाँदा नवाब हुआ जिसने छत्रसाल द्वारा दिये गये 1/5 भाग का मालिकत्व सम्हाला तथा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । भूरागढ़ के किले का विकास व विस्तार बांदा नवाब द्वारा किया गया । 1857 ई0 में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम विफल हो जाने के बाद अध्ययन क्षेत्र वास्तविक रूप से ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन आ गया । इस काल में सवादा, ललौली, हरदौली, अकबरपुर, कबौली, सलीमपुर, हुसैनपुर कलाँ, हुसेनपुर खुर्द आदि गांव अस्तित्व में आये । क्षेत्र में प्राचीन एवं मध्ययुगीन काल में बसाए गए कुछ गढ़ी या किलेयुक्त अधिवास आज अपने पुराने अस्तित्व को खो चुके हैं तथा खण्डहर बन गए हैं (चित्र संख्या 3.2) ।

आधुनिक काल **(Modern Period)**

(अ) ब्रिटिश काल- 1857 ई0 के आस-पास यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन हो गया किन्तु ग्रामों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । अंग्रेजों के शासन के पूर्व इस क्षेत्र में सड़कों का अभाव था और जो सड़के थी, वह भी अत्यन्त जीर्ण अवस्था में थी । 1857 ई0 के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद इस क्षेत्र में ग्राम अधिवासों की उत्पत्ति व विकास में एक नया परिवर्तन आया जो ब्रिटिश काल में अध्ययन क्षेत्र में ग्राम जनसंख्या के प्रादेशिक वितरण, कृषि क्षेत्र प्रसार एवं ग्राम अधिवासों के विकास की महत्वपूर्ण अवस्था प्रस्तुत की । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत भूमि बन्दोबस्त कार्यक्रम के कारण अध्ययन क्षेत्र की ग्राम

DISTRICT BANDA
DISTRIBUTION OF RUINED SETTLEMENTS
5 0 5 10 15 20
Km
Fig. No. 3.2
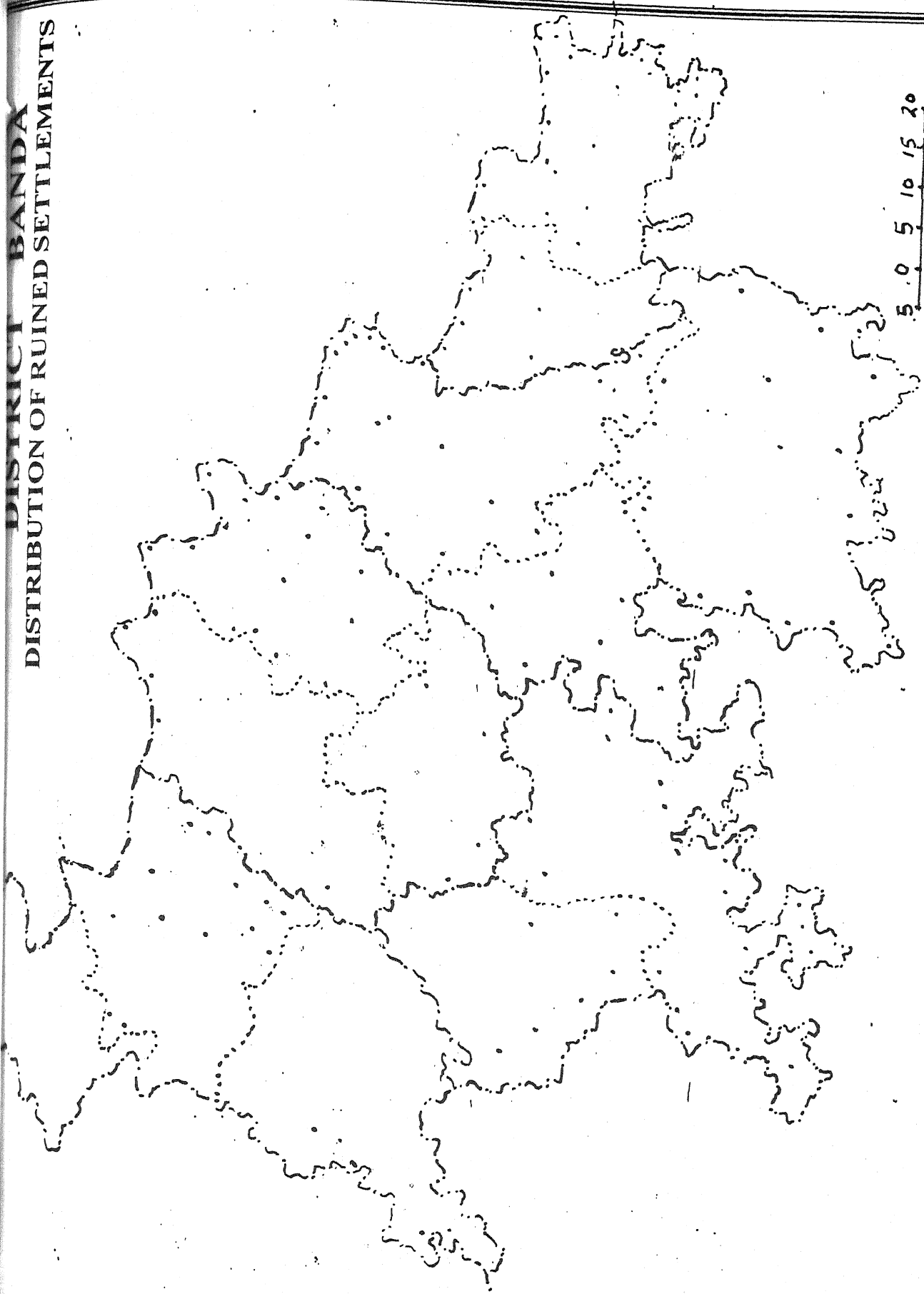
अधिवास संरचना में पर्याप्त स्वामित्व स्पष्ट हुआ । इस समय अध्ययन क्षेत्र में ग्राम अधिवासों की उत्पत्ति एवं विकास में निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हुए ।

1. यातायात एवं संचार व्यवस्था का विकास;
2. अधिक सुरक्षा सुविधाएं एवं लोगों की भलाई हेतु कानून निर्माण;
3. शिक्षा संस्थानों, डाक घरों, अस्पतालों तथा अन्य सामाजिक सेवाओं की स्थापना;
4. महामारी व बीमारियों की रोकथाम हेतु उपाय;
5. पुलिस स्टेशन व पुलिस चौकियों की स्थापना;
6. कुटीर उद्योग, लघु उद्योग व अन्य उद्योगों की स्थापना;
7. व्यवसायिक व बाजार केन्द्रों का विकास;
8. सिंचाई सुविधाओं का प्रारम्भ;
9. प्रशासनिक गठन ।

उपर्युक्त सुविधाओं के परिणाम स्वरूप अनेक गांवों की स्थापना हुई। कर्नल कोर्ट के कैम्प का नाम कर्वी पड़ा जो आजादी के बाद बहुत दिनों तक बांदा जनपद का तहसील मुख्यालय रहा तथा वर्तमान समय में चित्रकूट नाम से जिला मुख्यालय है ।

(ब) स्वतन्त्रता के बाद का काल- स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्रामीण अधिवासों के विकास में काफी वृद्धि हुई । यातायात व संचार साधनों का विस्तार व सुधार, जमीदारी प्रथा का अन्त, कृषि भूदृश्य में नवीन तकनीक का प्रारम्भ, खाद्य व बीज गोदामों की स्थापना, बिजली व्यवस्था, जनसंख्या का विकास, सिंचाई के साधनों का विकास, बैंक, चिकित्सा एवं शिक्षा सुविधाओं का विकास, विस्तार व सुधार, सहकारी व उपभोक्ता समितियों की स्थापना व अवसंरचनात्मक सुविधाओं ने अधिवासों के विकास को प्रोत्साहन दिया । केन्द्र व राज्य सरकारों ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध यम से नियोजित ढंग से समाजिक-आर्थिक विकास प्रारम्भ किया। इन योजनाओं ने ग्रामीण अधिवासों के विकास में अहम् भूमिका अदा की । प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रत्यक्ष रूप से अधिक विकास नहीं हो सका क्योंकि इसमें कृषि के विकास की अपेक्षा क्षेत्रीय विकास पर अधिक बल दिया गया । सामुदायिक विकास खण्डों, न्याय पंचायतों एवं ग्राम पंचायतों की स्थापना ने भी आस-पास के क्षेत्रों में रह रहें निवासियों की समाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करते हुए ग्रामीण अधिवासों के विकास को प्रोत्साहित किया । द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत

भी ग्रामीण अधिवासों में कोई खास वृद्धि नहीं हुई जिसका प्रमुख कारण सरकार का बड़े उद्योगों व आधारभूत उद्योगों के विकास में अधिक ध्यान देना था। तृतीय व चतुर्थ योजना काल में अधिवासों के विकास में कुछ वृद्धि हुई लेकिन यह बहुत कम थी । पंचम पंचवर्षीय योजना काल में प्रथम बार ग्रामीण विकास में अधिक ध्यान दिया गया जिसके परिणामस्वरूप अधिवासों के स्वरूप में उल्लेखनीय वृद्धि प्रारम्भ हुई । छठी पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था में वृद्धि दर को बढ़ाना, संसाधनों का दक्षतापूर्ण उपयोग व उत्पादकता में वृद्धि करना था । इसलिये इस योजनाकाल में ग्राम परिवेश में सुधार हेतु अनेक प्रयास किये गये । ग्रामीण सुविधाओं को ध्यान में रखकर उचित स्थानों में नये-नये ग्रामीण अधिवासों का जन्म हुआ । सातवीं पंचवर्षीय योजनाकाल में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में अत्यधिक ध्यान दिया गया है । शासन द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये हैं । आठवीं पंचवर्षीय योजना में समग्र ग्रामीण विकास पर अधिक बल दिया गया जिसके परिणामस्वरूप नई-नई सड़कों के निर्माण से दूर-दराज के क्षेत्रों को जिला, तहसील तथा विकासखण्ड मुख्यालयों से जोड़ा गया। नहरों का विकास व विस्तार हुआ तथा नये सर्वेक्षण के आधार पर ट्यूबवेल कार्य योजना जनपद में विस्तृत पैमाने पर आयी जिसके फलस्वरूप सिंचित क्षेत्र व कृषि उत्पादन तथा ग्रामीण जीवन स्तर में तीव्र परिवर्तन स्पष्ट नजर आया । नवीं पंचवर्षीय योजना के तहत प्रत्येक ग्राम को सम्पर्क मार्गों से जोड़ने की योजना चलाई गयी, जिससे अधिकतर ग्राम मण्डी व सेवा केन्द्रों से जुड गये । वर्तमान समय में चकबन्दी क्रियाओं के फलस्वरूप अध्ययन क्षेत्र में ग्राम सीमा के अन्तर्गत एकल परिवार अधिवासों की उत्पत्ति हुई हैं । योजनाबद्ध ग्राम अधिवासों का विकास व विकास केन्द्रों की स्थापना व शैक्षणिक संस्थाओं में वृद्धि के कारण ग्राम्य अधिवासों के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है । जनसंख्या में द्रुतगति से वृद्धि के फलस्वरूप 75 से 80 प्रतिशत तक ग्रामीण भूमि, कृषित भूमि में परिवर्तित हो गयी है । उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र के ग्रामीण अधिवास का उद्भव एवं विकास ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा जातीय प्रक्रियाओं का फल है तथा बस्तियाँ न्यून, मध्यम व तीव्र गति से परिवर्तित हो रही हैं ।

बसाव प्रक्रिया- (Settleing Process)

बसाव प्रक्रिया या अवस्थिति प्रक्रिया जनसंख्या द्वारा भूमि के बसाव को नाम देने से हैं । अत: सत्य है कि यह प्रक्रिया विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक,

आर्थिक, राजनैतिक कारकों पर निर्भर हैं । इसलिए अवस्थिति प्रक्रिया विभिन्न कालों में घटित एक धीमी प्रक्रिया है जिसे सूक्ष्म निरीक्षण एवं उपलब्ध साहित्य के आधार पर जाना जा सकता है । विसरण के भौगोलिक स्वरूप का महत्वपूर्ण अध्ययन हेगरस्ट्रैण्ड ने किया और नवाचार तंरगों के चतुर्थ स्तरीय प्रतिमान का निर्माण किया। हेगरस्ट्रैण्ड (1952) का चार अवस्थाओं वाला मॉडल अध्ययन क्षेत्र में उपनिवेशीकरण की अवस्थाओं को दर्शाने मे महत्वपूर्ण मदद प्रदान करता है ।

1. **प्राथमिक अवस्था-** यह उद्भव एवं प्राथमिक विकास तथा बसाव की अवस्था हैं ।
2. **फैलाव या विसरण अवस्था-** इसके अन्तर्गत तीव्रता से चारो तरफ आवासीय वृद्धि होती हैं ।
3. **द्रवीकरण अवस्था-** इसमें सभी भागों में समानरूप से आपेक्षिक वृद्धि होती हैं । सुदूर भागों में नये अधिवासों का विस्तार होने लगता हैं ।
4. **संतृप्त अवस्था-** जिसमें अधिकतम रूप से सामान्य किन्तु धीमी वृद्धि चारों तरफ होती हैं ।

इनके विचार को ग्रिलिचेस (1952) ने अनुसरण किया और उन्होंने तीन अवस्थाओं- प्राथमिक, विसरण तथा संतृप्त अवस्थाओं में आवासीय प्रक्रिया को विभाजित किया ।

अध्ययन क्षेत्र में अवस्थिति प्रक्रिया को चार युग के सन्दर्भ में, संकल्पना की सीमाओं के अन्दर देखा जा सकता है, जो चार अवस्थाओं को जन्म देती हैं (चित्र संख्या 3.3 व 3.4) ।

1. प्रारम्भिक अवस्था (1000ई0 से पूर्व);
2. प्रथम अवस्था (1000ई से 1500ई0 तक);
3. द्वितीय अवस्था (1500ई0 से 1800ई0 तक);
4. तृतीय अवस्था (1800ई0 से अब तक) ।

इस अस्थायी अवस्था सूत्र को अवस्थिति प्रक्रिया के संकल्पना मॉडल में लागू किया जा सकता हैं जो आवासीय गति का एक अनुभाविक प्रमाण प्रस्तुत करता हैं ।

अधिवासों के विकास का मॉडल- (Model of Settlement Evolution)

बसाव प्रक्रिया का तात्पर्य मानव द्वारा भूमि के अध्यासन या भूदखल से है जिसमें मानव द्वारा भूमि पर प्रत्यक्ष अधिकार माना जाता है । ग्रामीण

DISTRICT BANDA
SETTLING PROCESS
Ist Phase
2nd Phase
3rd Phase
5 0 5 10 15 20
Km
Fig. No. 3.13
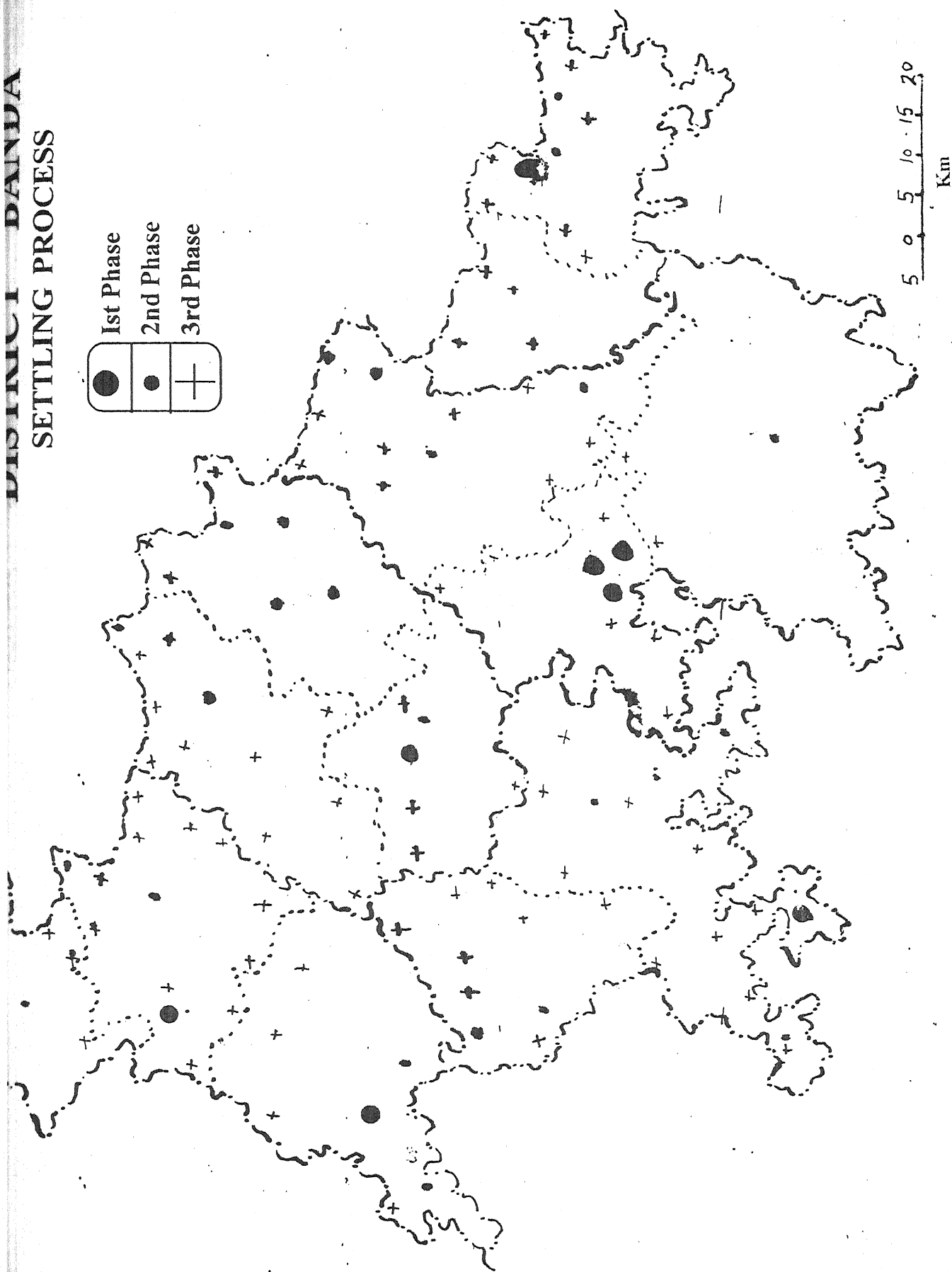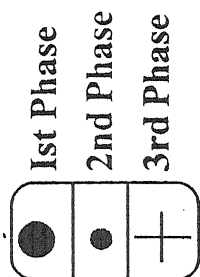
DISTRICT BANDA
Settling Process
(Fourth phase)
STATE BOUNDARY
DISTRICT BOUNDARY
TAHSIL BOUNDARY
BLOCK BOUNDARY
NYAYA PANCHAYAT BOUNDARY
VILLAGE BOUNDARY
DISTRICT H.Q.
TAHSIL H.Q.
BLOCK H.Q.
URBAN AREA
YAMUNA RIVER
FATEHPUR
DISTRICT
HAMIRPUR
KEN R.
BANDA
MATAUNDH
BABERU
SISANDA BUZURG
RAJAPUR
TO ALLAHABAD
ALLAHABAD
MANIKPUR
FROM JHANSI
FROM PANNA
TO SATNA
MADHYA PRADESH
Km
8 0 8 16 24
25°45' N
30'
15'
25°
80°15'
45'
31°
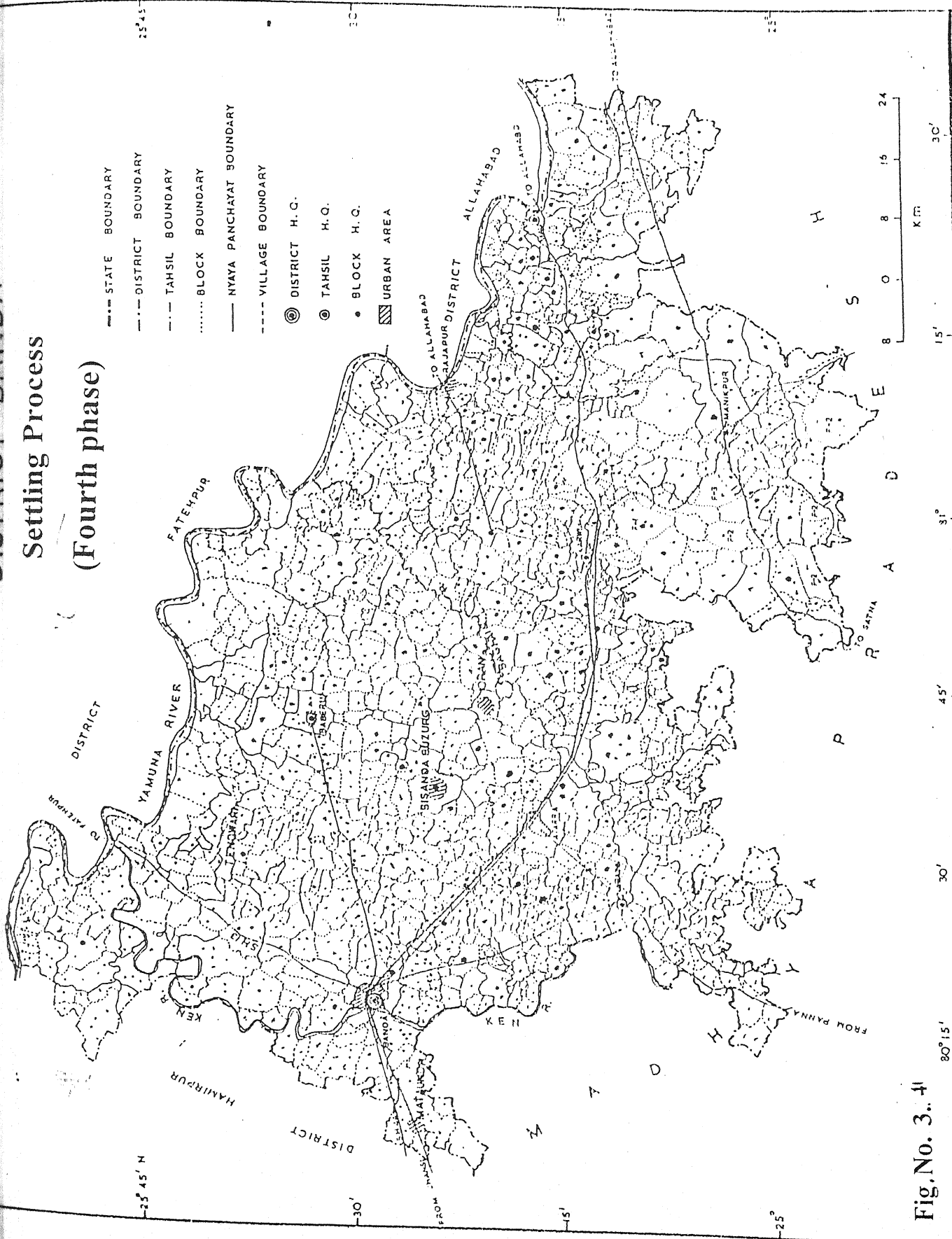
Fig. No. 3. 41

अधिवासों की उत्पत्ति एवं विकास के सम्बन्ध में विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने अध्ययन किया हैं । हेगरस्ट्रैण्ड (1952) ने ग्राम अधिवासों के विकास को स्पष्ट करने के लिये चार स्तरीय विकासात्मक मॉडल प्रस्तुत किया हैं– (1) बस्तियों का उद्भव एवं विकास की प्रथम अवस्था; (2) विसरण अवस्था; (3) संघनन अवस्था; (4) संतृप्तावस्था । इन अवस्थाओं के माध्यम से नवाचार तरंगे उद्देलित होती हैं । अधिवास भूगोल में स्थानिक विसरण के सम्बन्ध में स्टैनिस्लावस्की (1946), हेगरस्टैण्ड (1952), काशीनाथ सिंह (1968), आर0एल0सिंह एवं आर0बी0 सिंह (1972) आदि विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । स्वीडिस भूगोलवेत्ता वाइलुण्ड (1960) ने स्वीडन के मध्य लापलैन क्षेत्र के सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त परिणामों के आधार पर चार सैद्धान्तिक नमूनों का उल्लेख किया हैं । इसके अनुसार समान आवासीय या निराधिवासीय क्षेत्रों में भूमि का भौतिक वातावरण समान होता है तथा अन्य क्षेत्रों में उपनिवेशन तब तक नहीं होता जब तक मूल अधिवास के निकटवर्ती भाग पूर्णतयः अधिवासीय नहीं हो जाते । इन्होंने उपनिवेश की प्रक्रिया को दो प्रमुख अवस्थाओं में विभक्त किया हैं ।

1. प्रथम अवस्था– जिसमें उपनिवेशन बाह्य क्षेत्रों में स्थित दूरवर्ती उपनिवेशों के अप्रवास द्वारा होता हैं;
2. द्वितीय अवस्था– जिसमें प्राथमिक अधिवास से कम दूरी के उपनिवेशों का अप्रवास होता हैं ।

हडसन (1969) ने अपना सिद्धान्त पादप पारिस्थितिकी से लिया तथा अधिवास वृद्धि की तीन अवस्थाओं को बताया ।

1. उपनिवेशन– जिसके द्वारा किसी जनसंख्या का अध्यासित क्षेत्र में विस्तार होता हैं;
2. विस्तार अथवा परिसर– जिसके द्वारा अधिवास घनत्व में वृद्धि, लघु दूरी विसरण की प्रवृत्ति के साथ होता हैं;
3. प्रतिस्पर्धा– इस अवस्था में अधिवास प्रतिरूप में नियमितता पायी जाती हैं । विशेषकर तब जब स्थान से प्रतिस्पर्धा करने लायक ग्रामवासियों की पर्याप्त संख्या पायी जाती हैं ।

सैण्डुलर (1961) ने कोस्टारिका के स्पेनिस उपनिवेशों का अध्ययन किया और बताया कि मूल अधिवास एवं उसके चारों तरफ फैले हुए अधिवासों में चतुर्दिक स्थापित अधिवास मूल अधिवासों के ही विकास स्वरूप हैं ।

काशीनाथ सिंह (1968) ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों एवं अधिवास प्रतिरूपों के अभ्युदय का अध्ययन करते हुए सिमलेट्वि स्ट्रक्चरल मॉडल की सराहना करते हुये इसकी व्याख्या की । इन्होंने स्थानिक विसरण की प्रक्रिया को पांच कालावधि में, 15 पीढ़ियों (लगभग 350-400 वर्ष) को समाहित करते हुए सामान्यीकृत किया । प्रथम कालावधि (1 से 3 पीढ़ी)- जिसे गोत्र केन्द्र के अवस्थापना की प्रावस्था की संज्ञा दी । इस प्रक्रिया में सीजनल पोस्ट या छावनियों की स्थापना गोत्र केन्द्र के आस-पास दूरी के कारण उत्पादन में मूल्य वृद्धि को रोकन के लिये की जाती है जो कि बाद में पूरवे अथवा नगले या फिर अन्ततः ग्राम का रूप ले लेते हैं । द्वितीय कालावधि (4 से 6 पीढ़ी)- इसमें गोत्र केन्द्र के बाहर या उससे दूरी पर टप्पा केन्द्रों की स्थापना की जाती है । तृतीय कालावधि (7 से 9 पीढ़ी)- इसमें अधिवासों के मौजूदा नाभिकों में वृद्धि होती है । चतुर्थ कालावधि (10 से 12 पीढ़ी)- में अध्यासन क्षेत्र में नव जनसंख्या गतिशील होती है और कुछ टप्पा केन्द्रों की स्थापना केन्द्रीय क्षेत्र के परिवारों द्वारा की जाती है । यह देखा गया है कि मुख्य ग्राम को प्रायः कला तथा उसके आस-पास के नगलों को खुर्द कहतें हैं। पंचम कालावधि (13 से 15 पीढ़ी)- इसमें जनसंख्या वृद्धि की निरन्तरता के परिणाम-स्वरूप अवशिष्ट वनपट्टी, ऊसर पेटी, आदि पर अधिवासों का अभ्युदय होता है और कुल क्षेत्र में नये टप्पे दिखाई पड़ने लगते हैं । इस प्रकार त्रयस्तरीय अधिवासीय भूदृश्य यथा- परगना, टप्पा और गांव के रूप में प्रकट होते है ।

डाक्सियाडिस ने अधिवास निर्माण के पांच सिद्धान्तों का उल्लेख किया जिनका विवरण प्रथम अध्याय में किया जा चुका है ।

हैगेट (1972) ने एक मॉडल प्रतिपादित किया जिसमें विभिन्न अवस्थाएं दर्शायी गयी हैं । प्रारम्भिक अवस्था में कम घनत्व वाला उपनिवेश अनियमित अधिवासीय पद्धति वाला होता हैं । द्वितीय अवस्था में घना बसा हुआ वास्तविक उपनिवेश क्षेत्र पाया जाता है जो कि प्रथम पर ही विकसित होता है। तृतीय अवस्था में शहरी प्रतिस्पर्धा एवं उससे सम्बन्धित विभिन्न वृद्धि प्रायः नेतृत्व केन्द्र की गिरावट के द्वारा पदानुक्रमीय संरचना वाली अधिवासीय पद्धति विकसित होती है ।

सिंह एवं सिंह (1972) ने वाइलुण्ड, हेगरस्ट्रैण्ड तथा काशीनाथ सिंह के मॉडलों को मिलाकर मध्य गंगा घाटी (वाराणसी जनपद) में राजपूत जाति के अधिवास के विसरण का वर्णन किया है । उनके द्वारा प्रस्तुत राजपूत प्रजाति के

अधिवासों का चार अवस्थाओं में वर्णन स्तर दर स्तर की प्रक्रिया की अपेक्षा हेगरस्ट्रैण्ड द्वारा प्रस्तुत विसरण तरंगों का अनुसरण करते हुए किया हैं ।

अब यह देखना है कि वर्तमान अध्ययन में उपरोक्त वर्णित अवस्थिति मॉडल एवं विवेचन कहाँ तक साम्य रखता हैं तथा कहाँ पर परिवर्तन की अपेक्षा करता है । सर्वप्रथम वाइलुण्ड मॉडल पर दृष्टि डालें तो उनके द्वारा प्रस्तुत द्वितीय अवस्था जिसमे मूल अधिवास एवं पुनः उपनिवेश में चारो तरफ आवासीय क्षेत्र तब तक पूर्णतया विकसित नहीं होते जब तक मूल अधिवास पूर्णतया आवासीय नही हो जाते । यह अधिवास अध्ययन क्षेत्र में सत्यता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। क्योंकि मुख्य प्रजाति अधिवास प्रथम अवस्था में दूर क्षेत्रों में स्थापित हुए तथा द्वितीय प्रजाति केन्द्र भी मूल प्रजाति केन्द्र से दूर जितना सम्भव हो सका स्थापित हुए । इसका प्रमुख कारण यह रहा कि दो या दो से अधिक प्रजाति केन्द्रों के बीच की दूरी ही उनके प्रमुखों की आन और स्वाभिमान थी । मूल अधिवास एवं इसके बाद बसे अधिवास के बीच की दूरी समय बढ़ने पर नये-नये अधिवासों के चारों तरफ स्थापित होने से कम होती गयी । हेगरस्ट्रैण्ड की संतृप्तावस्था, काशीनाथ सिंह की पांच कालावधि, हेगेट की दो अवस्थाओं तथा हडसन की तीन अवस्थओं वाले मॉडल तथा सिंह एवं सिंह की चार प्रवस्थाओं वाले मॉडल एवं विवेचन अध्ययन क्षेत्र की अवस्थाओं से साम्य रखते है ।

भगवान राम के चित्रकूट निवास स्थल पर आने के समय की चलवासी अस्थायी बस्तियाँ बौद्ध काल तक स्थायी बस्तियों में बदल गयीं । मऊ तहसील में ऐसे कई स्थायी ग्रामीण बस्तियों के अवशेष हैं जो आज गैर आबाद हैं । इस समय के चेदि राज्य की राजधानी कालींजर प्रथम स्थायी आवासीय बस्ती थी तथा कई स्थायी ग्राम थे । कालींजर, मौर्य काल में क्षेत्र होने के कारण यहाँ क्षेत्रपाल रहता था । इस समय के प्रमुख ग्राम सीतापुर, शिवरामपुर, खोही, भरतकूप, गिरवाँ, रनगढ़, मड़फा तथा अभयगढ़ थे । इस समय के अधिकतर ग्राम जंगलों को साफ करके बनाये गयें । हर्ष की मृत्यु के पश्चात् चन्देलों के अभ्युदय के साथ ही बाहर से आने वालों के द्वारा ग्रामीण बस्तियों का बसाव कार्य तेजी से हुआ तथा कीरतपुर, वघेलपुर, दिखितवाड़ा, संग्रामपुर, बहादुरपुर, बबेरू आदि ग्रामों की स्थापना हुई । इस समय तक बस्तियाँ एकाकी तथा दूर-दूर थी तथा पुरवों का विकास बहुत कम हुआ था । कालींजर इस काल में परगना था जो टप्पों में बटा था । मुगलकाल में अध्ययन क्षेत्र दो सरकारों- कालींजर व भटगोरा (इलाहाबाद

जिला) के अधीन था । कालींजर सरकार में आठ महल सिहुड़ा, सिमौनी, शादीपुर, रसिन, कालींजर, माड़ा एवं खन्डेह थे । वर्तमान में खन्डेह अध्ययन क्षेत्र के बाहर है । कर्वी व मऊ तहसील का क्षेत्र भटगोरा सरकार के अन्तर्गत थे । ये सभी ग्राम विकसित व कच्ची सड़कों से जुड़े थे । रास्ते में पड़ावों के स्थान पर कई ग्रामों का विकास होने लगा । जहाँ कुवां व पड़ाव की सुविधाएं थीं । इनमें जमालपुर, बदौसा, पहाड़ी, राजापुर, तिन्दवारी, पैलानी, कमासिन व बिसण्डा प्रमुख हैं । इस समय तक अधिकांश क्षेत्र वीरान थे । वसाव केवल पुरानी बस्तियों के पास विकसित हुआ ।

मुगल काल के पश्चात् जंगलों को साफ करने बड़ी तीव्र गति से ग्रामों का विकास हुआ । ब्रिटिश काल के प्रारम्भ में तो सम्पूर्ण भूमि अधिकार में नहीं थी । ऊसर व जंगली क्षेत्र अधिक थे लेकिन जनसंख्या वृद्धि के कारण ग्रामों में बिखराव आया तथा इस काल के अन्त तक सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र आवासित हो गया । इस प्रकार वन भूमि को साफ करने, कृषि पद्धति में हुए तकनीकी विकास तथा सामाजिक-आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था में हुए परिवर्तनों ने इस समय ग्रामों की उत्पत्ति व विकास को अत्यधिक विकासशील आयाम प्रदान किया । इस स्तर के अधिवास संघनन अवस्था में कहे जा सकते हैं ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अध्ययन क्षेत्र आवासित हो गया था। मानिकपुर विकासखण्ड को छोड़कर अन्य क्षेत्र के वनों को भी साफ कर दिया गया था । ऊसर भूमि को अभी तक कृषि भूमि के अन्तर्गत नहीं लाया जा सका हैं। मऊ व रामनगर विकासखण्ड के पठारी-पहाड़ी भाग में अभी भी अधिवासीय प्रक्रिया अविकसित अवस्था में है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र का अधिकांश भाग संतृप्तावस्था तक नहीं पहुंच सका हैं ।

स्थान नाम (Place Names)

ग्रामीण अधिवासों की उत्पत्ति व विकास के सुव्यवस्थित अध्ययन में ग्रामीण अधिवासों के स्थानीय नामकरण का विश्लेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण व आवश्यक है क्योंकि इससे ग्रामीण अधिवासों की उत्पत्ति, इतिहास, पौराणिक कथाओं आदि से सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है । इसलिए स्थानीय नामकरण का अध्ययन वर्तमान अध्ययन के विश्लेषण में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है, जो क्षेत्र की भौतिक, सांस्कृतिक विशेषताओं का द्योतक है तथा भौगोलिक वातावरण की सूचनाओं का प्राथमिक श्रोत भी है । बोन्स (1920) का विचार है कि स्थान नाम

मानव भूगोल के जीवावशेष है । इसके लिए क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान, स्थान नाम का वास्तविक महत्व व सत्यता को खोजने मे सहायक है । रामचन्द्रन (1943) ने नाम के उपसर्ग व प्रत्यय का अध्ययन व परीक्षण अधिवासों के भूतकालीन सम्बन्धों व संस्थाओं की जानकारी में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता हैं । इससे कुछ ऐसे सूत्र प्राप्त होते है जिनके द्वारा क्षेत्र के मानवीय वसाव का ज्ञान प्राप्त होता है । अग्रवाल (1953) ने कहा है कि ग्रामीण अधिवास का बहुभाषायी तत्व भी क्षेत्र में व्यक्तियों के प्रदार्पण करने, उनके स्थायी निवास करने तथा पूर्ववर्ती एवं परावर्ती समूहों से सम्बन्ध का स्पष्ट प्रमाण भी प्रदान करता है । इसके अतिरिक्त इनसे बसाव समय व तत्कालीन संस्कृति की भी जानकारी प्राप्त होती है, जिनमें भौतिक गुण स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है । पहाड़ी, खोह (भूमि का स्वरूप), चिल्ला, दिघवट, बम्वुरी (पेड़ो के लिये), तुर्रा, नहरी, उतरवाँ, चन्द्रायल (नाले व जलस्रोतों के नाम) हैं । कुछ ग्रामीण अधिवासों के नाम प्राकृतिक तत्वों यथा- पहाड़, वन, नदी, पेड़, तालाब, मिट्टी की विशेषता या भूमि के ढाल या स्थिति से सम्बन्धित होते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ बस्तियों के नाम विशेष व्यक्तियों से सम्बन्धित होते हैं । प्राय: प्रत्यय या उपसर्ग स्थान नाम से निम्नवत जोड़े जाते हैं । जैसे- पहाड़ी - पहाड़ या टीला; खोह - पहाड़ की गुफा; बांध- प्राकृतिक जलवायु; दाह - जल से प्रभावित भूमि; डेरा - बेकार भूमि; ताल या पोखर- तालाब; कला व बुजुर्ग - पुराना बसाव; खुर्द - छोटा अधिवास; माफी - विशेष सुविधायुक्त; पुर - निवास स्थान ।

जिन अधिवासों के नाम में ऐसे अतिरिक्त शब्द जुड़े रहते है उनसे उनकी उत्पत्ति व स्थान के प्रभाव का पता चलता है । ग्राम के नाम के अन्त में दाह शब्द यह इंगित करता है कि यह गांव बाढ़ से प्रभावित है । वे अधिवास जिनके नाम बन्दरकोल, बन्दरी, गिदरहा, तेन्दुआ खुर्द, नेउरा आदि वन्य जीवों पर आधारित नाम हैं जोकि जंगली भागों में पाये जाते हैं । सेमरा, चिल्ला, छिवलहा, दूबी, बरगढ़, बम्वुरा, बम्बुरी, खजुरिहा कला आदि ग्रामों के नाम स्थानीय क्षेत्रों में पाये जाने वाले जंगलों से सम्बन्धित हैं । ऐसे नामों को श्रेणीबद्ध कर निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है ।

1. **वन्य जन्तुओं के समूहन पर आधारित-** अध्ययन क्षेत्र के कुछ ग्रामों का नामकरण वन्य जन्तुओं के नामों पर किया गया है जो जंगली जन्तुओं की अतीत- काल में अधिकता को दर्शाते हैं यथा- बन्दरकोल, बन्दरी, गिदरहा, तेन्दुआखुर्द, नेउरा आदि ।

2. **वनस्पतियों पर आधारित-** अध्ययन क्षेत्र के बहुत से ग्रामों का नामकरण वहाँ पर उपलब्ध किसी वनस्पति की अधिकता के कारण किया गया हैं जो प्रत्यक्ष रूप से जंगली क्षेत्र को व्यक्त करते हैं यथा- सेमरा, चिल्ला, छिवलहा, दूबी, बरगढ़, बम्बुरा, बम्बुरी, खजुरिहा कला आदि ।

3. **विशिष्ट व्यक्तियों के नाम पर-** अध्ययन क्षेत्र के ग्रामों की उत्पत्ति व विकास में विशेष योगदान देने वाले व्यक्ति या किसी महापुरूष के नाम को पुर के साथ जोड़कर ग्राम का नामकरण किया गया हैं । यह शब्द अतीत को खोजने में बहुत सहायक हैं यथा- सीतापुर, रामपुर, शिवरामपुर, रौली कल्याणपुर, भरतकूप, भवानीपुर, जौहरपुर, संग्रामपुर, सादीमदनपुर, महराजपुर, जमालपुर, रानीपुर, जोरावरपुर, नारायणपुर, लखनपुर, नुसरतपुर आदि ।

4. **मृत्तिका सहचर्य पर आधारित-** अध्ययन क्षेत्र में विशेष प्रकार की मृदा के आधार पर ग्राम अधिवास का नामकरण किया गया है जैसे- लोमर खादर व लोमर बांगर । अध्ययन क्षेत्र में बांगर व खादर शब्द विशेषतया केन व यमुना नदियों के किनारे के ग्रामों में जुड़े हैं । खादर भूमि अति उपजाऊ नदियों द्वारा प्रति वर्ष लाई हुई नयी मृदा से निर्मित हैं ।

5. **जलराशियों के सहचर्य के आधार पर-** अध्ययन क्षेत्र में ताल, पोखर, कुण्ड, दाह शब्दों को जोड़कर बहुत से ग्रामों का नामकरण हुआ हैं । यह नामकरण स्थानिक जलराशि पर आधारित है यथा- पोखरी, खड़गडाह ।

6. देवी-देवताओं के नाम पर- अध्ययन क्षेत्र में बहुत से ग्रामों का नामकरण वहाँ पर उपस्थित देवता के मन्दिर के आधार पर किया गया है यथा- दुर्गापुर, सीतापुर, आदि ।

7. जाति के आधार पर- अध्ययन क्षेत्र में विशेष जाति के आधार पर भी ग्रामों का नामकरण हुआ हैं जैसे- चमरहा, सिंहपुर, गौतमपुर, आदि ।

इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के ग्रामों का नामकरण उपरोक्त विभिन्न आधारों पर किया गया हैं ।

इस अध्याय में अध्ययन क्षेत्र के ग्रामों की उत्पत्ति के ऐतिहासिक पक्षों को प्रस्तुत करते हुए उनके नामकरण के रहस्य को खोजने की सफल कोशिश की गयी है ।

References

1. Achraya, P.K. (1946) : An Encyclopaedia of Hindu Architecture, Allahabad, PP. 48-130.
2. Agarwal, V.S. (1953) : Geographical Data in Panini, Indian Historical Quarterly, Vol. 29, PP. 1-13.
3. Ahmed, E. (1954) : Geographical Essayes on India ; Patna. P. 33.
4. Banda Gazeteer (1977) : By Barun, D.P. (State Editor), P. 110.
5. Brunhes J. (1920) : Human Geography, London.
6. Bylund, E. (1960) : Theoretical Geography, Lund Studies in Geography, Serices C. General and Mathematical Geography.
7. Childe Gurdner, (1924) : Ancient India, London, P. 150.
8. Griliches, Z. (1957) : Hybrid Corn an Eyploration in the Economics of Technological Change, Econometrica, Vol. 25, PP. 501-522.
9. Hagerstrand, T. (1952) : The Propogation of Innovation Waves, Lund Studies in Geography, Series B, Human Geography, 4.
10. Haggett, P. (1972) : Geography; A Modern Synthesis (New York and London : Harper and Row Publishers), P. 314.
11. Hovel, E.B. (1923) : A Study of Indian Civilization, London, P. 17.
12. Hudson, J.C. (1969) : A Location Theory of Rural Settlement, Annals, A.A.G. 59, PP. 365-381
13. मिश्र, के0पी0 (1923) : चन्देल एवं उनका राजत्वकाल, चरखारी, पेज- 8 ।
14. Mukerjee, R. (1938) : The Changing Face of Bangal, Calcutta, PP. 233-234.
15. Ram Chandra, C.M.S. (1943) : Place Name in North Arcot District, Indian Geographical Journal, Vol. 18, P. 67.
16. Sandner, G. (1961) : Agrarkolonisation in Costa Rica, Siedlund Wirtschaft und Sozialfuge an der Pioniergranze. Schrifton des Geographischen Instituts der Universitat, Kiel, Vol. 19.
17. Singh, R.L. and Singh, R.B. (1972) : Spatial Diffusion of Rajput Clan Settlement in a Part of Middle Ganga Valley in Rural Settlement, in Monsoon Asia, PP. 152-170.
18. Singh, K.N. (1968) : The Territorial Basis of Medieval Town and Village Settlement in Eastern U.P. India, A.A.A.G. Vol. 58, PP. 203-220.
19. Smith, V.A. (1919, 1940) : Oxford History of India. P. 299.
20. तिवारी, गोरेलाल (1933) : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पेज- 1-100 ।
21. वाल्मीकि, ऋषि (1960) : वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर, पेज- 148 ।

अध्याय-४

वितरण एवं प्रकार

(TYPES AND DISTRIBUTION)

वितरण एवं प्रकार
(TYPES AND DISTRIBUTION)

तृतीय अध्याय में ग्रामीण अधिवासों के उद्भव एवं विकास, बसाव प्रक्रिया एवं स्थान नामों की उत्पत्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया जो ग्रामीण बस्तियों के वितरण एवं प्रकार की व्याख्या में सहयोग प्रदान करता है। वस्तुतः ग्रामीण अधिवासों का मिश्रित अस्तित्व है । इसका मुख्य अध्ययन भवनों के वितरण, स्वरूप, आकारिकी, अवस्थिति तथा विकास के विश्लेषण व वर्णन से सम्बन्धित है जिसके द्वारा मानव अपने आपको भूमि से सम्बन्धित करता है (स्टोन, 1965) । एक व्यावसायिक इकाई (एक भवन) के रूप में यह मानव जाति के संगठित उपनिवेश (शरण स्थल) को दर्शाता है जिसके अन्तर्गत वह समस्त भवन सम्मलित हैं जिनमें मानव कार्य करता है, निवास करता है, या विभिन्न वस्तुओं का संग्रह करता है या उनका उपभोग करता है तथा समस्त सड़कें, रास्ते व गलियारे भी सम्मिलित हैं जिन पर वह चलता, फिरता व घूमता है (सिंह, 1962) । वस्तुतः अधिवास में सम्मिलित, ग्राम एक प्रशासनिक अधिवासीय इकाई है जो कि मुख्यतया भवनों के केन्द्रीयकरण स्थल का दिग्दर्शक व सूचक है । एक ग्रामीण भूदृश्य के अन्तर्गत क्षेत्र की ग्रामीण जनसंख्या, इसके विविध प्रकार व विविध उपयोग के ग्राम्य घर, कृषि क्षेत्र, मार्ग तथा पालतू पशुओं को सम्मिलित किया जाता है। विज्ञान व तकनीकी का अत्याधिक विकास तथा नगरीय जीवन जीने की आसक्तता के बावजूद विश्व के अधिकांश मानव समूह ग्राम्य वातावरण में ही निवास करते हैं ।

एक ग्रामीण बस्ती वास्तव में मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान कार्यशाला है और इसे उस भूमि से पृथक नहीं किया जा सकता जिसका यह उपयोग करता है । इसकी आकृति, इसका आन्तरिक जमाव विशेष रूप से कार्य की प्रकृति, कृषि सम्बन्धी तकनीक और मिट्टी के उपयोग में लाने के ढंगों से प्रभावित होता है (परपिलों, 1960) । ग्राम्य एक स्पष्ट पृथक जीवी संस्था है जिसका अपना निजी जीवन और स्पष्ट व्यक्तित्व होता है, जो भूदृश्य का महत्वपूर्ण भाग है यह मुख्यरूप से रहने के स्थान होते हैं न कि व्यवसाय केन्द्र (फिंच व ट्रीवार्था, 1946) । ग्राम्य एक राजस्व मौजा के रूप में भी जाना जाता है, जिसके अन्तर्गत वह समस्त पुरवें भी सम्मिलित हैं जो उसके चारों तरफ शासन द्वारा निर्धारित उसकी सीमा अन्तर्गत स्थित होते हैं । यद्यपि वे एक दूसरे से कृषि क्षेत्र या अन्य प्रकार से अलग हो सकते हैं । इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण अधिवासों के वितरण में

भौगोलिक तत्वों के आपसी सहसम्बन्ध तथा बिखराव की प्रकृति का विवेचना करना है । इसके साथ ही उनके स्वरूप व विकास को भी चिन्हित करना है जो प्राकृतिक व मानवीय कारकों के एकल या मिश्रण से प्रभावित होते हैं (अहलमन, 1929) ।

ग्रामीण अधिवासों का वितरण व विश्लेषण- बस्तियों के प्रतिरूप से तात्पर्य एक मकान, घर और दूसरे के बीच में स्थान सम्बन्धी सम्बन्ध से है । अर्थात् चाहे वह एक दूसरे से अत्यन्त निकट हों जैसे कि गांव या कस्बे में देखने को मिलता है अथवा वे एंकाकी घर या घरों या पुरवों की भाँति एक दूसरे से दूर हैं (हडसन,1970) । इस संकल्पना के आधार पर हम यह परिकल्पित करते है कि क्षेत्र के कृषिगत या प्राथमिक व्यवसाय और प्राकृतिक तत्वों यथा- उच्चावच्च, सामान्य जलपूर्ति व्यवस्था, जल निकास, मिट्टी व उर्वरता, कृषि भूमि की उपलब्धता, कृषि कार्य करने हेतु उपयुक्त दशाओं में एक सह सम्बन्ध है । काल्पनिक या विकसित सामाजिक-आर्थिक अवस्थाओं यथा- भू उपयोग, भूमि अधिकार व स्वामित्व व्यवस्था, फसल सहचर्य, परिवहन के साधन, सिंचाई के साधन, राजनीतिक स्थिति तथा शान्ति व्यवस्था व स्थिरता आदि आवासीय प्रक्रिया की पूर्ति को प्रभावित करते हैं । अधिवासों की स्थिति भूगर्भिक स्थिति, उच्चावच्च, जलनिकास, जलवायु, मिट्टी एवं प्राकृतिक बनस्पति द्वारा निर्देशित होती है । अध्ययन क्षेत्र में मानव अधिवास संरचना को नियन्त्रित करने वाले उपादान पश्चिमी व उत्तरी क्षेत्र में- भूमि कटाव, जल निकास व्यवस्था का अभाव तथा बाढ़ हैं जबकि दक्षिणी व दक्षिणी-पूर्वी भाग में- ऊसर, पथरीला व कंकरीला भू-भाग, अनुउर्वर भूमि, जंगल, पहाड़ियाँ आदि हैं। नदी प्रभावित क्षेत्रों में अधिवासों की उपयुक्त स्थिति में घनी व बड़ी बस्तियाँ यथा- चन्दवारा, बडागाँव, सिन्धनकला, चिल्ला, पैलानी, गड़रिया, रामपुर, जसपुरा, जौहरपुर, औगासी आदि स्थित हैं । यह स्थान कूटनीतिक महत्व के हैं जो उच्च भू-भाग में शुष्क बिन्दु पर केन व यमुना नदी के प्रभावित क्षेत्र में विकसित हुए हैं । निःसन्देह ऐसे स्थल बाढ़ की आपेक्षित ऊचाई से लगभग 5 मीटर की ऊंचाई पर स्थित हैं। यह स्थान बाढ़ के समय जल से घिर जाने के कारण एक टापू के समान दिखाई पड़तें हैं । सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अधिवासों की स्थिति व उत्पत्ति के अनेकों कारण हैं । जनपद में बगरी मुहार नामक (एक राजपूत जाति) का केवल बड़ोखर विकास खण्ड में केन्द्रित होना या लोधी जाति का नरैनी विकास खण्ड में केन्द्रित होना सुस्पष्ट रूप से इस तथ्य का परिचायक हैं । इसके अतिरिक्त कोल जाति का अविकसित मानिकपुर क्षेत्र में तथा दिखित क्षत्रियों का जसपुरा विकासखण्ड में

अधिकत्व इसी तत्व के कारण है । आर्थिक तत्व यथा- बाजार, मेला, मण्डी, मार्ग, तथा केन्द्रीय सुविधाओं का मानव आवासों की अवस्थिति में महत्वपूर्ण योगदान परिलक्षित होता है । बिसण्डा, बदौसा, रैपुरा, सीतापुर, कमासिन, कालींजर, चिल्ला व गिरवाँ आदि केन्द्र इसके उदाहरण हैं । कुछ अधिवास यथा- खुरहण्ड, शिवरामपुर आदि बाजार स्थल केन्द्र के रूप में पर विकसित हुए हैं ।

बाँदा जनपद के अधिवासीय अध्ययन से स्पष्ट है कि गत शताब्दियों में विभिन्न प्रकार की बस्तियों का विभिन्न रूपों में विकास, खादर, बांगर, पहाड़ी व असमतल क्षेत्रों में हुआ है (चित्र संख्या- 4.1) ।

खादर क्षेत्र- यह क्षेत्र नवीनतम जलोढ़ मिट्टी द्वारा निर्मित अत्याधिक उपजाऊ भाग है । इसमें नदियों द्वारा प्रति वर्ष नई मिट्टी बिछती रहती है । इसमें विभिन्न आकार की ग्रामीण बस्तियों का विकास हुआ है । इस भाग में बस्तियों का बसाव प्रमुखतया दूर-दूर ऊंची भूमि पर देखने को मिलता हैं । ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से कुछ गांवों का विकास नदियों के किनारे हुआ है जिनमें कुछ गांव यथा- सिन्धनकला, पैलानी, कनवारा नदी कगार पर स्थित हैं । यहाँ बाढ़ का पानी नहीं पहुंच पाता है लेकिन अत्याधिक बाढ़ की स्थिति में इस प्रकार के गांव बाढ़ से प्रभावित होते हैं । 1978, 1985 और 1992 की भयावह बाढ़ के फलस्वरूप इन गांवों के 2/3 अधिवास नष्ट हो गये थे । सामान्य बाढ़ की स्थिति मे भी ऐसे अधिवास टापू की तरह हो जाते हैं । यातायात व संचार पूर्णतया अवरूद्ध हो जाता है । ये सभी सघन व केन्द्र की तरफ संकुचनशील अधिवास होते हैं । इसके अतिरिक्त अदरी, गौरीखुर्द, गाजीपुर, गडोला, लसड़ा आदि गांव बाढ़ सीमा के औसत क्षेत्र के अन्दर होने के कारण प्रति वर्ष बाढ़ द्वारा प्रभावित होते हैं । बाढ़ की स्थिति में ऐसे गांव खाली हो जाते हैं । यहाँ के निवासी अपना सामान निकालकर बाढ़ के समय ऊंची भूमि में ले जाते हैं तथा बाढ़ हटने पर पुनः अपना सामान लेकर वापस आ जाते हैं । प्रशासन ने ऐसे गांवों के लिये औसत बाढ़ सीमा तल से ऊंची भूमि का चुनाव करके उक्त किस्म के गांव के बसाव हेतु पर्याप्त स्थान उपलब्ध करा दिया है फिर भी यहाँ के निवासी अपने पूर्व अधिवास छोड़ने को तैयार नहीं हैं। इसलिए इस प्रदत्त भूमि में अब तक अधिवास बसाव क्रिया समुचित रूप से जारी नहीं हो सकी है । बसाव न हो सकने के निम्न कारण हैं।

1. जलप्राप्ति- नदी के बिल्कुल किनारे पर सहज ही कृषि कार्य, गृह खर्च व मवेशियों के लिये सहज जल प्राप्त हो जाता हैं जबकि प्रशासन द्वारा प्रदत्त भूमि पर गृह खर्च व मवेशियों के लिये जल प्राप्ति एक समस्या है । इन ऊंचे भागों में जल तल अत्यधिक गहराई पर है । इसलिये ऐसे स्थानों पर जल प्राप्ति के लिये

Distribution Of Rural Settlements

Fig. No. 4.1
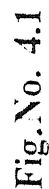
समय व श्रम दोनो खर्च होते हैं । पूर्व अधिवासों में (नदी के किनारे) इन सभी समस्याओं का स्वतः निदान हो जाता हैं ।

2. **कृषि क्षेत्र की देखभाल व सुरक्षा-** नदी के बिल्कुल किनारे पर स्थित ग्राम कृषित क्षेत्र व अधिवासीय क्षेत्र दोनों से अत्याधिक संयुक्त होते हैं । कृषि जोतें अधिवासीय गृहों के सामने या पास में ही स्थित होती हैं जिससे वह उनकी उचित देखभाल कर सकते हैं तथा जंगली जानवरो, पालतु पशुओं व अन्य नुकसान करने वालों से अपने खेतों की रक्षा कर सकते हैं ।

3. चारा- ग्राम्य अधिवासों मे पालतू जानवरों के चारे के लिए अलग या उसी गृह में एक तो सूखें चारे, भूसे का संग्रह किया जाता हैं । दूसरे खेतों से प्रतिदिन हरा चारा लाया जाता हैं । नदी के किनारे पर स्थिति ग्राम, खेतों से अत्याधिक निकट सम्पर्क रखने के कारण हरे चारे की पूर्ति अन्य ग्रामों की अपेक्षा अधिक कर लेतें हैं, परिणामस्वरूप मवेशी दूधारू व हस्टपुष्ट होते हैं ।

इस क्षेत्र के कुछ ग्राम नदी से कुछ दूर ऊचाई पर स्थित है जो बाढ़ की स्थिति में एक, दो या तीन ओर से प्रभावित हो जाते हैं । ऐसे अधिवास ग्राम सीमा के अन्तर्गत अत्याधिक ऊचाई पर विकसित हुए हैं जिनमें रामपुर, जसपुरा, गौरी कला, नांदादेव, पड़ेरी, अमलोर, नरी, दिघवट, बरेहटा, अमारा, कुकुआखास, रेहुटा, खपटिहा कलाँ, पथरी, छेहराँव, चकचटगन, मडौली, उजरेहटा, अछरोड़, दुरेड़ी, गन्छा, आदि ग्राम मुख्य हैं । केन खादर क्षेत्र तथा यमुना खादर क्षेत्र में नरायढ़, बुदेड़ा, मवईघाट, खपटिहा खुर्द, गाजीपुर, गड़ौला, अमचौली, गौरी खुर्द, चन्दवारा, इछावर, सबादा, महवरा, मडौली कला, बड़ागाँव, पिपरोदर, पचकौरी, अदरी, बसधंरी, लसड़ा, सादीमदनपुर, लौमर, गौरा, जौहरपुर, बेन्दा, अमलीकौर, जलालपुर, कबीरपुर, औगासी, समगरा, मर्का, चरका, मटेहना, मुडवारा, खेड़ा, कठार, बरौली, खटान, दादौ, राघोपुर, अमेढ़ी, लखनपुर, जोरावरपुर, आदि ग्राम प्रमुख हैं । विलाख बांगर, चिल्लीमल वांगर, वक्ता खुर्द खादर, बेराउर खादर व कर्वी तहसील में, मझगंवा भभेट मुस्तकिल, रगौली मुस्तकिल, रीठी मुस्तकिल, रीठी ऐहतमाली, तीर मऊ ऐहतमाली, वरूआ ऐहतमाली, सिराउल माफी मुस्तकिल, कटइया खादर मुस्तकिल, बराछी मुस्तकिल, चकौर मुस्तकिल, रेडी भुसौली मुस्तकिल, बसरेही मुस्तकिल, वियावल मुस्तकिल, बखार मुस्तकिल, मवई कला मुस्तकिल, तितौली मुस्तकिल, मनकुवर मुस्तकिल, पश्चिमी पताई, पूरब पताई, बरियारी खुर्द, बरहा कोटला मुस्तकिल, बेनीपुर पाली मुस्तकिल गांव मऊ तहसील में स्थित हैं । ऐसे गांवों का विकास बाढ़ प्रभावित भाग के विपरीत बढ़ता चला जाता हैं ।

इस क्षेत्र में गैर आबाद हो चुके ग्रामों की सूची निम्न है –

तालिका संख्या- 4.1

गैर आबाद ग्रामों की सूची, 1997

ग्राम	तहसील	ग्राम	तहसील
जाफरपुर	बबेरू	शिवराजपुर पहाड़	कर्वी
सेमराघाट	बबेरू	प्रीतूपुर	कर्वी
रेवल	बबेरू	हरसौली	कर्वी
वरौली मस्त खुर्जा	बबेरू	चकमोगरी	कर्वी
विलास खादर	कर्वी	चकला चक	कर्वी
चिल्लीमल खादर	कर्वी	बाबूपुर	कर्वी
चांदी खादर	कर्वी	चकला सीतापुर	कर्वी
घौरहरा खादर	कर्वी	किला वाग	कर्वी
तीर घुमाई गंगू खादर	कर्वी	बरकोल	कर्वी
नैनी खादर	कर्वी	कोदूपुर	कर्वी
गुरगौला खादर	कर्वी	कंचनपुर	कर्वी
विहरंवा खादर	कर्वी	लक्ष्मणपुर	कर्वी
वक्ता खुर्द खादर	कर्वी	धुसुरा	कर्वी
हस्ता खादर	कर्वी	चकसेखापुर	कर्वी
बिझौरा खादर	कर्वी	सहलवार	कर्वी
बरिया खादर	कर्वी	जबरदस्ता	कर्वी
देवारी खादर	कर्वी	उल्दन	कर्वी
सुरवल खादर	कर्वी	सहडोल	कर्वी
खोपा खादर	कर्वी	महराजपुर	बाँदा
भदेदू खादर	कर्वी	कुकुआपाह	बाँदा
कनकोता खादर	कर्वी	घूँरा	बाँदा
रायपुर खादर	कर्वी	पिपरी	बाँदा
गौहानी खुर्द	कर्वी	बडेहरा	बाँदा
खुतौरा	कर्वी	रेवाई	बाँदा
बेराउर खादर	कर्वी	बहादुरपुर	बाँदा
चिल्ली राकस खादर	कर्वी	बिजुरी	बाँदा
रमपुरिया सानी	कर्वी	कनसेमरी	बाँदा
ढोलगंवा	कर्वी	रेहुटा	बाँदा
भटवरना	कर्वी	चकभरखरी	बाँदा
पतवरिया	कर्वी	सिलेहटा	बाँदा
रानीपुर तरौंहा	कर्वी	मझगवाँ ऐहतमाली	मऊ
डिगरी	कर्वी	रगौली ऐहतमाली	मऊ
दलपतपुर	कर्वी	रीठी ऐहतमाली	मऊ
गड़रहा	कर्वी	रूपौली ऐहतमाली	मऊ
भांगा	कर्वी	उमरी वीहट ऐहतमाली	मऊ

स्रोत : साख्यकीय पत्रिका एवं क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर ।

ग्राम	तहसील	ग्राम	तहसील
सिरावल माफी ऐहतमाली	मऊ	गोपाल खेड़ा	नरैनी
नौठिया ऐहतमाली	मंऊ	बुढौली	नरैनी
सिलौटा ऐहतमाली	मऊ	चक मोरहा	नरैनी
कटइया खादर ऐहतमाली	मऊ	चक अमहार	नरैनी
बराछी ऐहतमाली	मऊ	खरगपुर	नरैनी
सुहेल ऐहतमाली	मऊ	नाहरपुर माफी	नरैनी
रेडी भुसौली ऐहतमाली	मऊ	चक गिरवाँ	नरैनी
वसरेही ऐहतमाली	मऊ	सन्तपुर	नरैनी
वियवल ऐहतमाली	मऊ	चक माफी	नरैनी
वरावर ऐहतमाली	मऊ	भूतपुर	नरैनी
मवई कला ऐहतमाली	मऊ	चक कीरतपुर	नरैनी
मऊ ऐहतमाली	मऊ	चक बन्डे	नरैनी
सेसासु बकरा ऐहतमाली	मऊ	घूघूर	नरैनी
तितौली ऐहतमाली	मऊ	चक हडहा	नरैनी
मनकुवार ऐहतमाली	मऊ	सराय सलीपुर	नरैनी
पश्चिमी पताई ऐहतमाली	मऊ	जोवानी	नरैनी
पूरब पताई ऐहतमाली	मऊ	हीरापुर	नरैनी
बरिवारी कला ऐहतमाली	मऊ	चकरौली	नरैनी
बरियारी खुर्द ऐहतमाली	मऊ	पालपुर	नरैनी
बरहा कोटरा ऐहतमाली	मऊ	लखनपुर	नरैनी
बेनीपुर पाली ऐहतमाली	मऊ		
परदवाँ ऐहतमाली	मऊ		

बांगर क्षेत्र- अध्ययन क्षेत्र में केन नदी के दोनों तरफ तथा यमुना नदी का दक्षिणी भाग, जो बाढ़ प्रवाहित नहीं है, बांगर क्षेत्र में सम्मिलित है । इसका विस्तार सम्पूर्ण मैदानी भाग जनपद के दक्षिणी व दक्षिणी-पूर्वी पहाड़ी कंकरीलें भू-भाग तक हैं। यह अधिकतम बाढ़ सीमा रेखा से ऊपर अत्याधिक उर्वर एवं कृषित भाग है । इसके मध्यवर्ती भाग में सिंचाई के साधन नहरें तथा उत्तर-पूर्व व उत्तरी भाग में ट्यूबवेल हैं । नहर सिंचित क्षेत्र मुख्यत: धान क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है । ट्यूबवेल सिंचित बांगर क्षेत्र में कुल क्षेत्रफल की तुलना में ट्यूबवेलों की संख्या अत्याधिक कम है, जिसमे 10 से 25 प्रतिशत भाग ही सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत आता है । जमीन की किस्म मे भी विविधता हैं । सम्पूर्ण बांगर क्षेत्र समतल तथा जल निकास युक्त है । इस भाग की प्रमुख विशेषता अधिवासों का बिखराव हैं । यहाँ गृह अधिवास की आपसी दूरियां 800 से 1000 मीटर तक देखने को मिलती हैं । अधिक क्षेत्रफल वाले ग्रामों में ग्राम्य अधिवास बड़े-बड़े तथा बिखरें हुए पुरवायुक्त

हैं यथा- मटौंध, महोखर, बिसण्डा, बिलगांव, सिंहपुर, कमासिन, ओरन, छिलोलर, आदि । इन ग्रामों की मुख्य ग्राम्य बस्ती बड़े आकार की तथा 8 से 12 पुरवायुक्त है । इस भाग में खादर क्षेत्र से लगे भाग को छोड़कर शेष भाग में जल तल ऊंचा हैं जो पुरवों के विकास को प्रोत्साहित करता हैं । सम्पूर्ण भाग वर्तमान समय में परिवहन के साधनों से युक्त है, यद्यपि संचार के अभी पर्याप्त साधन विकसित नहीं हो पाए हैं । जसपुरा विकासखण्ड के बांगर क्षेत्र में मात्र 15 किलोमीटर तक की सड़क है, जो अपवाद हैं । शेष भाग में परिवहन के पर्याप्त साधनों के कारण ग्राम्य बस्तियों का अत्याधिक विकास हुआ है, जिनमें से कुछ बस्तियां बाजार एवं सेवा केन्द्र के रूप में विकसित हो चुकी है यथा- पैलानी डेरा, खुरहण्ड स्टेशन, भरतकूप चौकी, लालता रोड आदि । जनपद में तीव्र गति से सेवा केन्द्रों के विकास को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । अन्य बहुत सी ग्राम्य बस्तियां सेवा केन्द्र के रूप में विकासोन्मुख हैं । ऐसे बाजार केन्द्र सड़क या रेल पथ पर स्थित हैं। इनमें से अतर्रा, कर्बी, मानिकपुर (इस समय कस्बे की श्रेणी में हैं) बदौसा, खुरहंड- सड़क व रेल परिवहन पथ पर तथा तिन्दवारी, बबेरू, नरैनी, (इस समय कस्बे की श्रेणी में) पपरेन्दा, गिरवाँ, बिसण्डा, मुरवल, कालींजर, ओरन, सड़क पथ पर विकसित हुए हैं । नहर सिंचित क्षेत्र में पुरवों का विकास अवरूद्ध हो रहा है, जिसका प्रमुख कारण धान क्षेत्र का होना हैं । इसमें से महुवा, बिसण्डा, उत्तरी नरैनी, बबेरू, पश्चिमी चित्रकूट व बड़ोखर (पूर्वी) विकास खण्ड सम्मिलित हैं । नलकूप सिंचित क्षेत्र में पुरवों की संख्या में स्पष्ट वृद्धि दृष्टिगोचर होती है यथा- जसपुरा, मटौंध, तिन्दवारी रूरल, पपरेन्दा, खपटिहा कलाँ, लुकतरा, जारी, जौरही आदि । इसका प्रमुख कारण गहन कृषि का सिंचित क्षेत्रों में प्रयोग होना हैं । इस क्षेत्र के अधिवास साफ, खुले तथा दूर-दूर एवं बड़े-बड़े भवन वालें हैं । ग्राम्य बस्ती के अन्दर रास्ते साफ, चौड़े तथा बस्ती के अन्दर बड़े-बड़े मैदान दिखाई पड़तें हैं । घर के सामने मैदान आम बात हैं । इन मैदान (ग्वांड़ा) में गर्मी व स्वच्छ मौसम में जानवर भी बांधे जाते हैं तथा बैलगाड़िया व कृषि का अन्य सामान- हल, बाखर आदि भी रखे रहते हैं ।

पहाड़ी भाग- पहाड़ी भाग अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी व दक्षिणी-पूर्वी भाग में एक पेटी के रूप में फैला हुआ हैं । यहाँ का धरातल उबड़-खाबड़ तथा वनस्पति से आच्छादित हैं । कृषि योग्य क्षेत्र कम हैं, धरातल विषमतायुक्त व पथरीला हैं, भूमि अल्प या न्यून उपजाऊ हैं । पत्थर की चट्टानी पर्ते धरातल पर ही या कुछ फीट

सतह के नीचे हैं । नालों आदि के किनारे सकरी पट्टी के रूप में यत्र-तत्र कुछ उपजाऊ भूमि है जिसमें मोटे अनाज उगायें जाते है । इस क्षेत्र में कम क्षेत्रफल वाले ग्राम देखने को मिलते हैं । कुछ ग्रामों का कुल क्षेत्रफल 200 एकड़ तक सीमित है । ग्राम्य अधिवास छोटे तथा पुरवायुक्त हैं । जल सुलभता की कमी के कारण अधिकांश बस्तियां जल स्रोतों, छोटी नदियों, तालाबों आदि के पास पर स्थित हैं। इनमें से कुछ ग्राम जिनकी प्रशासनिक सीमा में एक ही जल स्रोत है- वहाँ एकांकी बस्ती का ही जन्म हो सका है । कुछ ग्रामों की सीमा रेखा के अन्तर्गत एक भी जल स्रोत नहीं है- ऐसी ग्राम्य बस्तियां या तो गैर आबाद हो गयी है या स्थानान्तरित बस्तियों के रूप में है या छोटे-छोटे पुरवों के रूप में है । यहाँ के लोग दूसरे ग्राम्य सीमा से अत्याधिक परिश्रमपूर्वक जल लाते है । कृषि क्रिया-कलाप न होने तथा वनों के कारण ग्रामीण प्रायः वन उत्पाद एकत्रीकरण में संलग्न रहते है । अधिकतर भूमि सरकार के आधिपत्य में होने तथा जीवकोपार्जन के पर्याप्त संसाधन सुलभ न होने के कारण मानिकपुर क्षेत्र में बस्तियां समय के साथ बसती व उजड़ती रही हैं । यह आदि बस्तियां कोलों का क्षेत्र है जिन्हें 1981 के पश्चात् अनुसूचित जनजाति से अनुसूचित जाति में सम्मिलित कर लिया गया है । प्रमुख एकत्रीकरण करने वाले पदार्थ- तेन्दु का पत्ता, कत्था, जलाऊ लकड़ी, पत्थर, शहद, आदि है । अत्याधिक गरीबी के कारण बस्तियों के रूप में झोपड़ियाँ दिखाई देती हैं । इसका उत्तरी-पूर्वी भाग मानिकपुर के पास का क्षेत्र पाठा नाम से प्रसिद्ध है । यहां के प्रमुख ग्राम दुबारी, देवकली, देवल, जरिया, चौरा, चूल्ही, बनकट, मझियार, बूढ़ा मुहरवा आदि हैं । ग्राम्य अधिवास एवं वन एक दूसरे से मिले हुए है यथा- चूल्हा, कैल्हा, कुवरी, झरी, झीलिंग, हनुवा, हेला, हर्रा, मोहरवा, आदि । वन भूमि में स्थित कुछ बस्तियाँ अस्थायी हैं जो वन ठेकेदारों के इशारो पर बसाई जाती हैं । इन वनवासी जातियों के रहन-सहन, निष्ठा, मान्यताएँ सभी वन से उत्पन्न हैं और वन जीवन का स्वरूप का स्वरूप स्थिर करते हैं । इनके समानान्तर ऐसे भी लोग हैं जो इस क्षेत्र के मूल निवासी तो नहीं हैं, किन्तु आसपास के क्षेत्रों से आकर स्थायी रूप से बस गये हैं । यह वर्ग साधन सम्पन्न है और अपनी सम्पन्नता के लिए आदिवासियों पर आश्रित है (मिश्र, 1999) ।

बिखराव की प्रवृत्ति- वन्य गांवों को सम्मिलित करते हुए अध्ययन क्षेत्र की सम्पूर्ण ग्रामीण जनसंख्या 1622718 (वर्ष 1991 के अनुसार) है । जिसमें 880464 पुरूष व 742254 स्त्रियाँ है जो 1207 ग्राम्य अधिवासों एवं 3742 पुरवों एवं तीन

वन्य ग्रामों में निवास करती हैं । औसत प्रति ग्राम एवं प्रति पुरवा क्षेत्रफल क्रमशः 620.10 हेक्टेयर एवं 200.04 हेक्टेयर हैं । औसत प्रति ग्राम प्रकीर्णन दूरी- 2.1 किलोमीटर व प्रति पुरवा प्रकीर्णन दूरी 0.800 कि0मी0 है ।

ग्रामीण अधिवासों के प्रकीर्णन सम्बन्धी गुणात्मक व मात्रात्मक उपागम एक दूसरे से घनिष्ट रूप से अन्तर्सम्बन्धित हैं और ग्रामीण अधिवासों का गुणात्मक उपागम एवं विश्लेषण तभी वैज्ञानिक मूल्य व स्तर रख सकता है जब वह मात्रात्मक पद्धति पर आधारित हो । ग्राम्य अधिवासों का वास्तविक स्वरूप, वितरण पद्धति तथा अवस्थिति की ज्ञान इन्हीं नवीनतम वैज्ञानिक मात्रात्मक तरीकों से हो सकती है । मात्र गुणात्मक उपागम वास्तविकता का विश्लेषण करने में सफल नहीं हो सकते । विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने मानव अधिवासों के वितरण पद्धति के विश्लेषण में विभिन्न तरीको का प्रयोग किया हैं। अपने शोध पत्र में स्वेनसन (1935) ने प्रति वर्ग मील क्षेत्र में फैले हुए अधिवासों के आधार पर ग्राम्य अधिवासों का विश्लेषण व विवेचन किया हैं ।बारनेस एवं रॉबिन्सन (1940) ने अपने निम्नलिखित जनसंख्या वितरण के इशरथमिक ढंग मे ग्रामीण अधिवासीय इकाईयों के बीच की दूरी, अधिवासीय फैलाव, वितरण के कोण की सही नाप के आधार पर स्वीकार किया हैं । यह मानकर कि अधिवासीय इकाईयां बराबर अन्तर एवं षटकोणीय रूप से स्थित हैं, यह दूरी साधरण गणतीय सूत्र के माध्यम से गणना द्वारा प्राप्त की जा सकती है :

$$D = 1.07\sqrt{\frac{A}{N}}$$

यहाँ, D = चाही गयी दूरी;

A = न्याय पंचायत का अधिकृत क्षेत्र;

N = न्याय पंचायत के अन्तर्गत पुरवों की संख्या ।

अधिक सावधानीपूर्वक माथुर (1944) ने भी विश्लेषण हेतु अधिवास के मध्य परिकल्पित दूरी मापने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया है जिस प्रति ग्राम स्तर पर प्रयोग करना अधिक उपयुक्त है ।

$$Hd = 1.0746\sqrt{\frac{A}{N}}$$

यहाँ, Hd = परिकल्पित दूरी;

A = ग्राम का क्षेत्रफल;

N = ग्राम में समस्त बस्तियों (पुरवों) की संख्या;

उपरोक्त सूत्र का प्रयोग करने से पूर्व यह मान लिया गया है कि समस्त ग्रामीण बस्तियां क्रिस्टालर महोदय के षट्भुजीय व्यवस्था के अनुसार वितरित हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में 118 अदालत पंचायतें जिनमे 1207 अधिवासीय ग्राम तथा 3742 पुरवें सम्मिलित हैं । औसत पुरवा इकाई क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिये अदालत पंचायत के कुल क्षेत्रफल में अदालत पंचायत की सीमा के अन्तर्गत स्थित समस्त पुरवों का भाग देने पर प्राप्त किया जाता हैं । इस आधार पर अदालत पंचायत के परिणाम को प्राप्त करके तीन कोटियों में वर्गीकृत किया गया हैं जिसका स्पष्ट स्वरूप तालिका संख्या 4.2 में दर्शाया गया है । इसके अलावा वास्तविक वितरण तालिका संख्या 4.3 मे तथा विकास खण्ड स्तर पर अधिवासीय स्थिति को तालिका संख्या- 4.4 तथा (चित्र संख्या-4.2) में दर्शाया गया है ।

तालिका संख्या- 4.2

पुरवों के फैलाव की प्रवृत्ति, 1997

फैलाव की प्रवृत्ति	पुरवा द्वारा अधिकृत क्षेत्र (हे0)	अन्तर-पुरवा दूरी (मी0मे)	वितरित मुख्य क्षेत्र
'अ' पूर्णतया दूर-दूर	55 से अधिक	791 से अधिक	चावल उत्पादन करने वाले प्रमुख क्षेत्र बिसण्डा विकासखण्ड के अन्तर्गत- चन्द्रायल, चौसड़, भदेदू, कोर्रही, पवइया न्याय पंचायतों मे; बबेरू विकासखण्ड में परास, भभुआ, सातर, बडागाँव, बगेहटा, करहुली, पल्हरी, हरदौली, निभौर अदालत पंचायत में, कमासिन विकासखण्ड में छिलोलर, परसौली, साडा-सानी अदालत पंचायतों में; महुवा विकासखण्ड में खुरहंड, बड़ोखर बुजुर्ग, खम्भौरा, बरईमानपुर, बहेरी, गोखिया, बिलगांव, अर्जुनाह, गिरवा, पनगरा अदालत पंचायतों में; नरैनी विकासखण्ड अन्तर्गत अतर्रा रूरल, तुर्रा, बदौसा, रसिन, डढ़वामानपुर अदालत पंचायतों मे; बड़ोखर विकासखण्ड अन्तर्गत बड़ोखर खुर्द एवं तिन्दवारा अदालत पंचायतें शामिल हैं । इसके अतिरिक्त बाढ़ प्रभावित क्षेत्र जो कि शुष्क या जलबिन्दु पर स्थित हैं यथा- जसपुरा विकासखण्ड अन्तर्गत चंदवारा, बड़ागाँव व सिन्धनकलाँ अदालत पंचायतों में, तिन्दवारी विकासखण्ड अन्तर्गत चिल्ला, बेंदा, निवाइच,

Close Dispersion
Medium Dispersion
Fairly Dispersion
KM. 5 0 5 10 15 20 K.M.

Fig.No. 4.2

			खपटिहा कला अदालत पंचायतों में; मऊ विकासखण्ड अन्तर्गत मऊ अदालत पंचायत में; रामनगर विकासखण्ड के अन्तर्गत रामनगर एवं हन्ना बिनैका, तथा विकासखण्ड पहाड़ी व मानिकपुर तथा दक्षिणी मऊ विकासखण्ड में ग्राम स्तर के 40 ग्राम (अदालत पंचायत स्तर पर यह क्षेत्र पास-पास पुरवों वाला है क्योंकि इसमें पास के अन्य ग्राम सम्मिलित है जो कि पूर्णतया पुरवायुक्त ही है तथा ग्रामीण बस्तियां बिखरी हुई हैं ।)
'ब' मध्यम	40 से 50 तक	674 से 791 तक	ऊसर या कमजोर मिट्टी वाला क्षेत्र या उपजाऊ सुरक्षित क्षेत्र (ट्यूबवेल सिंचित क्षेत्र)। जसपुरा विकासखण्ड के अन्तर्गत रामपुर, गड़रिया, जसपुरा, तिन्दवारी विकासखण्ड के अन्तर्गत मुंगुस, पिपरगवां, भुजरख, पलरा, पपरेन्दा व बड़ोखर विकासखण्ड में लामा, करबई, लुकतरा, अदालत पंचायतें ।
'स' पास-पास	40 से कम	674 से कम	विविध रूप से सम्पन्न भूमि या अनुत्पादक या पथरीली या कंकरीली या वनाच्छादित भूमि। पहाड़ी विकासखण्ड के अन्तर्गत औदहा, भदेदू, कलवारा, नांदी, गौहानीकलॉ, बिहरवां, बरद्वारा, लुदाहा, असोह, ओरा, बछरन, अदालत पंचायतों में; मानिकपुर विकासखण्ड के अन्तर्गत अगरहुड़ा, उमरी, ऊँचाडीह, एचवारा, केहुनिया, रामपुर, कल्याणगढ़, रूकमाखुर्द, सरैया, रैपुरा अदालत पंचायतों में; मऊ विकासखण्ड में बरगढ़ व खडेंहा अदालत पंचायतों में चित्रकूट विकासखण्ड के अन्तर्गत कसहाई अदालत पंचायतों में, नरैनी विकासखण्ड के अन्तर्गत करतल, कालींजर, गुढ़ा कला व पौहार अदालत पंचायतों में । सुविधा सम्पन्न उपजाऊ विकसित भाग में बिसण्डा अदालत पंचायत में ।

ग्राम स्तर पर सर्वेक्षण के द्वारा प्रति पुरवा अन्तर दूरी का भी अंकलन किया गया जिसे विकासखण्ड स्तर पर सभी ग्रामों की पुरवा अन्तर दूरी को जोड़कर समस्त विकासखण्ड अन्तर्गत ग्रामों का भाग दिया गया हैं ।

अध्ययन क्षेत्र का धान उत्पादन करने वाला क्षेत्र जो प्रमुखतया जिसमें भूमि उर्वर, समतल तथा नहर सिंचाई सुविधा सम्पन्न हैं, अधिवास दूर-दूर घने रूप में हैं । इन ग्रामों में पुरवों की संख्या 2 से 3 तक ही हैं । कुछ ग्राम पुरवा विहीन

तालिका संख्या- 4.2

जनपद में जनसंख्या के आधार पर ग्रामीण अधिवासों का वर्गीकरण (1991)

क्र0सं0	विकासखण्ड	कुल ग्राम	जनपद में %	बहुत छोटे ग्राम 200 व्यक्तियों से कम			छोटे ग्राम 200 से 499 तक			मध्यम ग्राम 500 से 999 तक			वृहद ग्राम 1000 से 1999 तक			अधिक वृहद ग्राम 2000 से 4999 तक			अत्याधिक वृहद ग्राम 5000 से अधिक			वन		
				ग्राम संख्या	जनपद में %	वि0खण्ड में %	ग्राम संख्या	जनपद में %	वि0खण्ड में %	ग्राम संख्या	जनपद में %	वि0खण्ड में %	ग्राम संख्या	जनपद में %	वि0खण्ड में %	ग्राम संख्या	जनपद में %	वि0खण्ड में %	ग्राम संख्या	जनपद में %	वि0खण्ड में %	ग्राम संख्या	जनपद में %	वि0खण्ड में %
1	चित्रकूट	128	10.61	15	9.15	11.71	36	15.19	28.12	43	12.91	33.59	29	10.55	22.65	5	2.73	3.90	–	–	–			
2	पहाड़ी	123	10.20	16	9.75	13.00	23	9.70	18.69	44	13.21	35.77	30	10.90	24.39	10	5.46	8.13	–	–	–			
3	मानिकपुर	107	8.87	26	15.85	24.29	26	10.57	24.29	25	7.50	23.36	13	4.72	12.14	16	8.74	14.95	1	7.14	0.93	3	100	–
4	नरैनी	146	12.11	24	14.63	26.43	28	11.81	19.17	34	10.21	23.28	38	11.81	26.02	20	10.92	13.69	2	14.28	1.36			
5	महुवा	118	9.78	18	10.97	15.25	17	7.17	14.40	36	10.81	30.50	26	9.45	22.03	21	11.47	17.80	–	–	–			
6	कमासिन	75	6.21	9	5.49	12.00	12	5.06	16.00	14	4.20	18.66	22	8.00	29.33	17	9.28	22.66	1	7.14	1.33			
7	बबेरू	80	6.63	6	3.66	7.50	9	3.80	11.25	18	5.41	22.50	25	9.09	31.25	20	10.92	25.00	2	4.28	2.50			
8	बिसण्डा	57	4.72	1	0.60	1.75	5	2.11	8.77	12	3.60	21.05	15	5.45	26.31	23	12.57	40.35	1	7.14	1.75			
9	जसपुरा	45	3.73	1	0.60	2.22	9	3.80	20.00	15	4.50	33.34	9	3.29	20.00	10	5.46	22.22	1	7.14	2.22			
10	तिन्दवारी	79	6.55	11	6.71	13.92	11	4.64	13.92	20	6.01	25.32	17	6.18	21.51	18	9.83	22.78	2	14.28	2.53			
11	बड़ोखरखुर्द	72	5.97	2	1.21	2.78	10	4.21	13.88	22	6.60	30.55	20	7.27	27.77	16	8.74	22.22	2	14.28	2.78			
12	मऊ	100	8.29	20	12.20	20.00	29	12.23	29.00	26	7.80	26.00	21	7.63	21.00	2	1.09	2.00	2	14.28	2.00			
13	रामनगर	73	6.05	14	8.53	19.17	21	8.86	28.76	23	6.91	31.50	10	3.64	13.69	5	2.73	6.84	–	–	–			
	वन ग्राम	3	0.24	1	0.60	33.33	1	0.42	33.33	1	0.30	33.34	–	–	–	–	–	–	–	–	–			
	योग	1206	-	164	13.59	–	237	19.65	–	333	27.61	–	275	22.80	–	183	15.17	–	14	1.16	–			

तालिका संख्या- 4.4

विकास खण्ड स्तर पर अधिवासीय स्थिति, 1997

क्र0सं0	विकासखण्ड	क्षेत्रफल वर्ग किमी0	कुल ग्राम	औशत प्रतिग्राम क्षेत्रफल हे0	पुरवें	ग्राम व पुरवें	औसत प्रति बस्ती क्षेत्रफल हे0	औसत बस्ती दूरी मी0 में
1	चित्रकूट	508.76	128	397.47	409	537	94.74	947.4
2	पहाड़ी	580.85	123	472.23	547	670	86.70	867.0
3	मानिकपुर	1003.89	107	938.21	572	679	147.84	1478.4
4	नरैनी	602.78	146	412.86	468	614	98.17	981.7
5	महुवा	412.73	118	349.77	292	410	100.66	1006.6
6	कमासिन	527.79	75	703.92	205	280	188.50	1885.0
7	बबेरू	607.22	80	759.02	196	276	220.00	2200.0
8	बिसण्डा	306.73	57	538.12	86	143	210.08	2100.8
9	जसपुरा	409.32	45	909.06	62	107	382.54	3825.4
10	तिन्दवारी	597.95	79	756.90	127	206	290.26	2902.6
11	बड़ोखरखुर्द	671.70	72	932.92	99	171	292.80	3928.0
12	मऊ	485.86	100	485.86	378	478	101.64	1016.4
13	रामनगर	338.88	73	464.22	308	381	88.94	889.4
	योग	7054.49	1203	586.40	2749	4952	122.45	1224.5
	वन क्षेत्र	583.86	3	19462.00	73	76	768.23	7682.3
	योग ग्रामीण	7578.35	1206	628.38	3818	5028	150.73	1507.3

स्रोत : सांख्यिकीय पत्रिका, 1997 तथा क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित ।

भी है । भवन अधिकतर कच्चें, छप्पर वाले इकहरे ही हैं जिनमे बीच में लम्बा चौड़ा आंगन होता हैं । आंगन के चारों तरफ दो-दो समान्तर कमरे या बरामदा होते हैं । घर के आगे का भाग छोटी जातियों के खुले तथा बड़ी जातियों के बड़े-बड़े फाटक वाले बन्द होते हैं । छोटी जातियों के सम्पन्न लोगों के घरों में भी बड़े फाटक लगे हैं जो लकड़ी या लोहे से बने हैं । ग्राम के केन्द्र में बड़ी जातियां निवास करती है इनके मकान कच्चे, पक्के या कच्चे-पक्के तीनों प्रकार के होते है। ग्राम के बाहर की तरफ चारों ओर अन्य खेतिहर मजदूर या मजदूर जाति पुंजों के रूप में अलग-अलग मुहल्लों में निवास करते हैं उदाहरणार्थ- बिसण्डा विकासखण्ड अन्तर्गत ग्राम चन्द्रायल, चौसढ़, भदेदू, कोर्रही, पवइया, अदालत पंचायतों में, बबेरू विकास खण्ड में परास, भभुवा, सातर, बड़ागाँव, बगेहटा, करहुली, पल्हरी, हरदौली, निम्भौर अदालत पंचायत मे; कमासिन विकासखण्ड में छिलोलर, परसौली, साडा-सानी अदालत पंचायत में; महुवा विकासखण्ड में खुरहंड, बड़ोखर बुजुर्ग, खम्भौरा,बरईमानपुर,

बहेरी, गोखिया, बिलगांव, अर्जुनाह, गिरवा, पनगरा अदालत पंचायतों में; नरैनी विकासखण्ड अन्तर्गत अतर्रा रूरल, तुर्रा, बदौसा, रसिन, डढ़वामानपुर अदालत पंचायतों में; बड़ोखर विकासखण्ड अन्तर्गत बड़ोखर खुर्द एवं तिन्दवारा अदालत पंचायतें शामिल हैं । धान पैदा करने वाले क्षेत्र के अलावा बाढ़ प्रभावित क्षेत्र (शुष्क बिन्दु पर स्थित) में भी ग्राम अधिवास दूर-दूर ऊंचे स्थानों पर बहुत ही घने बसे हुए पुरवाँ रहित या एक से तीन तक पुरवें वाले मिलते हैं, ऐसे गांव जसपुरा विकासखण्ड अन्तर्गत चंदवारा, बड़ागाँव व सिन्धनकला अदालत पंचायतों में; तिन्दवारी विकासखण्ड के अन्तर्गत चिल्ला, बेंदा, निवाइच, खपटिहा कलॉ अदालत पंचायतों में; मऊ विकासखण्ड अन्तर्गत मऊ अदालत पंचायत में देखने को मिलता है । जल अभाव से ग्रसित क्षेत्र जहाँ पर पेय जल की एक समस्या है, भूगर्भिक स्थिति के कारण ये ग्राम अधिवास जल श्रोतों के पास देखने को मिलते हैं तथा जल प्राप्ति की असुविधा ही पास के अन्य क्षेत्रों से इन्हें अलग कर देती है और पुरवा निर्माण पर कड़ा अंकुश लगाये रहती है । पड़ोस में अन्य परिस्थितियां समान होते हुए जल उपलब्धता के कारण अत्याधिक प्रकीर्णन हुआ है। यह स्वरूप ग्राम स्तर तक सीमित हैं । अदालत पंचायत स्तर पर अन्य पुरवों वाले ग्राम शामिल हो जाने पर इनके स्वरूप को पुरवायुक्त बना देतें हैं ।

ऊसर व कमजोर अनुपजाऊ मिट्टी वाला क्षेत्र या सुरक्षित उपजाऊ क्षेत्र जहाँ पर छठी पंचवर्षीय योजना के बाद योजनाओं के अन्तर्गत नलकूपों का निर्माण हुआ हैं, वहाँ पर विगत कुछ वर्षो से पुरवा निर्माण की ओर निवासियों का रूझान गया है । वर्षो पहले ये नलकूपों की सुविधा प्रदत्त ग्राम पूर्णतया संहत ही थे । ग्राम सीमा अन्तर्गत केवल एक ही बस्ती थी लेकिन सुरक्षा व सिंचाई सुविधा के कारण 2 से 6 तक पुरवों का निर्माण हुआ हैं । प्रमुख क्षेत्र जसपुरा विकासखण्ड के अन्तर्गत रामपुर, गड़रिया, जसपुरा, अदालत पंचायत में, तिन्दवारी विकासखण्ड के अन्तर्गत मुगुंस, पिपरगवां, पलरा, बुजरख, पपरेन्दा अदालत पंचायतों में बड़ोखर विकासखण्ड के अन्तर्गत लामा, करबई लुकतरा अदालत पंचायतें हैं । इस बदलाव की स्थिति में राजनीतिक व सामाजिक बदलाव के कारको ने भी प्रभाव डाला हैं।

अध्ययन क्षेत्र में पास-पास बिखरे हुए ग्राम अधिवास अनुत्पादक भूमि या कंकरीली या पथरीली या वनाच्छादित भूमि में देखने को मिलते हैं । भूमि अनुत्पादक व कृष्य हेतु बेकार होने के कारण यहाँ के निवासी फल एकत्रीकरण, तेन्दु पत्ता एकत्रीकरण, लकड़ी काटने व इकट्ठा करने, शहद एकत्रीकरण, पत्थर

तोड़ने व एकत्रीकरण के प्राथमिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करते हैं ।यह पूरा क्षेत्र पाठा क्षेत्र के नाम से जाना जाता है जो कि आदिवासी जनजातियों का निवास स्थल है । पहाड़ी विकासखण्ड के अन्तर्गत औदहा, भदेदू, कलवारा, नांदी, गौहानीकलाँ, बिहरवां, बरद्वारा, लुदाहा, असोह, ओरा, बछरन, अदालत पंचायतों में, मानिकपुर विकासखण्ड के अन्तर्गत अगरहुड़ा, उमरी, ऊँचाडीह, एचवारा, केहुनिया, रामपुर, कल्याणगढ़, रूकमाखुर्द, सरैया, रैपुरा अदालत पंचायतों में, मऊ विकासखण्ड के अन्तर्गत बरगढ़ व खर्डेहा अदालत पंचायतों में देखने को मिलता है । नरैनी विकासखण्ड के अनुउर्वर व वनाच्छादित भाग में स्थित करतल, कालींजर, सडा, पुकारी अदालत पंचायतें सम्मिलित है । आदिवासी जातियों वाले ग्राम्य अधिवास एकाकी, छप्परयुक्त तथा कहीं-कहीं छत भी पत्तों से बनी होती है । इनके मकान छोटे, इकहरे लकड़ी के डन्डों पर या साधरण मिट्टी से निर्मित दीवाल वाले होते है जिनमें घास, लकड़ी तेन्दु या छ्यूल (पलास) आदि का छप्पर होते हैं । घर के नाम पर एक या दो कमरे होते हैं जिनके चारों तरफ मैदान और फिर कटीलें पौधों की डालों की बाढ़ लगी होती है । ऐसे मकानों में आंगन का अभाव होता है । कमरे की लम्बाई 3 से 5 मीटर तक तथा ऊँचाई 1 से 1.5 मीटर तक होती हैं । मऊ तहसील की ऐसी बस्तियों में मकान पूर्णतया कच्चे तथा छप्परयुक्त होते हैं । मकान के चारों तरफ बने हाते में जानवरों, भेड़ों, बकरियों आदि के रखने का स्थान होता है । इस श्रेणी के अन्तर्गत कुछ ग्राम्य अधिवास ऐसे भी हैं जो कि अत्यधिक सुविधा सम्पन्न उपजाऊ भाग में स्थित हैं । ऐसे भागों में प्रकीर्णन अत्यधिक सिंचाई सुविधाओं, चकबन्दी क्रियाओं द्वारा जोतों के एकत्रीकरण तथा अत्यधिक सुरक्षा के कारण विगत एक दशाब्दी में शुरू हुए हैं । ये अधिवास चकों में स्थित हैं जहाँ पर अपना निजी या शासकीय नलकूप की सुविधा प्रदत्त है। बैंकिग व्यवस्था के ग्रामीण स्तर तक पहुंचने व असामाजिक तत्वों से सुरक्षा के कारण यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही है । इन अधिवासों में पालतू जानवरों के रहने के लिए, कृषि यन्त्रों को रखने के लिए, भूसा व चारा के भण्डारण के लिए तथा ट्रैक्टर ट्राली आदि खड़ा करने का पर्याप्त स्थान होता है । ऐसे अधिवास कच्चे-पक्के या पूर्णतया पक्के या बहुमंजली होते हैं । प्रमुख क्षेत्र बड़ोखर विकासखण्ड के अन्तर्गत मटौंध व जारी अदालत पंचायत तथा बिसण्डा विकासखण्ड के अन्तर्गत बिसण्डा अदालत पंचायत है । ग्राम स्तर पर ऐसे अधिवास ग्राम- मटौंध, महोखर, लामा, जसपुरा, जारी, बिसण्डा, अतर्रा रूरल, जौहरपुर, बेंदा आदि ग्रामों में देखने को मिलता

हैं । इस श्रेणी के ग्रामों में 6 से 30 तक पुरवें देखने को मिलतें हैं । पुरवों में वृद्धि अभी जारी है ।

ग्राम्य अधिवासों का आकार- उपलब्ध ग्राम्य रिकार्ड व साहित्य के आधार पर अध्ययन क्षेत्र में ग्राम्य अधिवासों का आकार विभाजन तालिका सं0 4.3 में दिखाया गया है । इसमें जनसंख्या के आधार पर उक्त ग्राम्य अधिवासों का विभाजन व गांवों की विभिन्न श्रेणियाँ की संख्या, जनपद एवं विकासखण्डों में उनका प्रतिशत दर्शाया गया है। छोटे ग्राम जो 500 से कम जनसंख्या को आश्रय प्रदान करते है, जनपद के अन्तर्गत इसकी संख्या 32.39 प्रतिशत है । मध्यम आकार वाले ग्राम जिनकी जनसंख्या 500 से 990 तक है, जनपद के अन्तर्गत 27.61 प्रतिशत हैं । बड़े आकार वाले ग्राम जिनकी जनसंख्या 1000 से 1999 तक है, अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत 22.80 प्रतिशत है । 2000 से 4999 व्यक्तियों के निवास करने वाले ग्रामों का प्रतिशत 15.17 है, जिनकी संख्या 183 है । 5000 से अधिक व्यक्तियों के निवास करने वाले ग्रामों की संख्या 14 है, जो जनपद अन्तर्गत 1.16 प्रतिशत स्थान रखतें हैं । इससे स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में मध्यम स्तर के गांवों की संख्या सर्वाधिक है ।

जनसंख्या के आधार पर ग्राम्य अधिवासों के आकार में अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत विकासखण्ड तथा न्याय पंचायत स्तर पर विभिन्नताएं देखने को मिलती हैं । किसी विकासखण्ड में मुख्यतः छोटे-छोटे ग्राम्य अधिवास दिखाई पड़ते है जबकि अन्य विकासखण्ड में ऐसे अधिवासों का पूर्णतः अभाव हैं । यह ही बात वृहद कोटि के अधिवासों पर भी लागू होती है तथा विकासखण्ड, न्याय पंचायत स्तर व क्षेत्र-क्षेत्र में यह अन्तर दृष्टिगोचर होता हैं । बहुत ही छोटे आकार वाले गाम जिनकी जनसंख्या 200 व्यक्ति से कम है, जनपद के अन्तर्गत 13.59 प्रतिशत हैं। विकासखण्ड स्तर पर यह विषमता और भी अधिक है । विकासखण्ड चित्रकूट, पहाड़ी, मानिकपुर, नरैनी, महुवा तथा मऊ में इनका प्रतिशत क्रमशः 11.7, 13.0, 24.29, 16.43, 10.97 व 12.20 है जबकि विकासखण्ड जसपुरा, बिसण्डा, बबेरू तथा बड़ोखर खुर्द में यह प्रतिशत 2.22, 1.75, 7.50 तथा 2.78 है । छोटे-छोटे ग्राम्य अधिवासों के आधार पर विकासखण्ड मानिकपुर का स्थान प्रथम तथा विकासखण्ड बिसण्डा का स्थान अन्तिम हैं ।

200 से 499 व्यक्ति वाले छोटे ग्रामों की संख्या अध्ययन क्षेत्र में 19.65 प्रतिशत हैं । इस दृष्टि से विकासखण्ड मऊ का स्थान प्रथम (29.0 प्रतिशत) तथा विकासखण्ड रामनगर का स्थान द्वितीय (28.76प्रतिशत) तथा चित्रकूट का स्थान

तृतीय (28.12 प्रतिशत) है । विकासखण्ड बिसण्डा में इस प्रकार के अधिवास मात्र 8.77 प्रतिशत ही है । इस प्रकार के ग्राम्य अधिवास वाला प्रमुख क्षेत्र वनाच्छादित, पथरीला, कंकरीला, अनुपजाऊ भाग है ।

मध्यम आकार के ग्राम्य अधिवास जिनमें 500 से 999 व्यक्ति तक निवास करते है, जनपद के अन्तर्गत ऐसे गांव 333 हैं जो 27.61 प्रतिशत स्थान रखते हैं । जनपद के अन्तर्गत सर्वाधिक संख्या मध्यम आकार वाले गांवों की है। क्षेत्र पंचायत स्तर पर इस प्रकार के ग्राम्य अधिवास विकासखण्ड पहाड़ी में सर्वाधिक (35.77 प्रतिशत), क्षेत्र पंचायत जसपुरा में (33.34 प्रतिशत) तथा क्षेत्र पंचायत चित्रकूट में (33.59 प्रतिशत) हैं । इस प्रकार के ग्राम्य अधिवासों के वितरण में लगभग समरूपता मिलती हैं । अन्तर केवल इस बात का है कि विकासखण्ड जसपुरा, बड़ोखर, बिसण्डा, बबेरू में सम्पूर्ण जनसंख्या एक ही स्थान पर आवासित हैं जबकि विकासखण्ड चित्रकूट, पहाड़ी, मऊ में यह जनसंख्या 6 से 25 तक छोटे-छोटे टुकड़ों में दूर-दूर आवासित हैं । विकासखण्ड कमासिन में सबसे कम ग्राम्य अधिवास (18.66 प्रतिशत) इस कोटि के हैं ।

वृहद आकार वाले ग्राम्य अधिवास जिनकी जनसंख्या 1000 से 1999 तक है, अध्ययन क्षेत्र में इनका प्रतिशत 22.80 है । इस कोटि में विकासखण्ड बबेरू का स्थान सर्वोच्च (31.25 प्रतिशत) तथा विकासखण्ड रामनगर का स्थान अन्तिम (13.69 प्रतिशत) है ।

अधिक वृहद आकार वाले ग्राम्य अधिवास (2000 से 4999)की संख्या 183 हैं जो कि सम्पूर्ण जनपद में 15.17 प्रतिशत स्थान रखते हैं । इस कोटि में विकासखण्ड बिसण्डा का स्थान प्रथम (40.35प्रतिशत), तथा मऊ का स्थान अन्तिम (2.0प्रतिशत) हैं । अत्याधिक वृहद आकार वाले ग्राम्य अधिवास (5000 व्यक्ति से अधिक) मात्र 14 है, जिनका स्थान अध्ययन क्षेत्र में 1.16 प्रतिशत हैं । इस कोटि के ग्राम्य अधिवास सर्वाधिक मात्रा में बड़ोखर खुर्द (2.78 प्रतिशत) तथा न्यून मात्रा में मानिकपुर (0.93प्रतिशत) पाए जाते हैं । चित्रकूट, पहाड़ी, महुवा तथा रामनगर विकासखण्ड में इस आकार के गांवों का आभाव है ।

अधिवासीय प्रकार- अधिवास, जो ग्रामीण भूदृश्यावली का महत्वपूर्ण अंग है, अपनी स्थिति एवं स्वरूप के अत्याधिक मिश्रित व जटिल भूदृश्य के कारण एक तार्किक वर्गीकरण की अपेक्षा करता है । अधिकतर भूगोलवेत्ता अधिवासों के वर्गीकरण के लिये स्थिति को महत्वपूर्ण तत्व मानकर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । ग्राम्य भूदृश्य एवं उसमें उपस्थित बस्तियों के विषय में क्रमबद्ध एवं वितरण पूर्ण साहित्य के अभाव में इन बस्तियों की उत्पत्ति, विकास एवं भौगोलिक वितरण के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों द्वारा जो भी अध्ययन किया गया है और इस आधार पर जो भी साहित्य उपलब्ध है, उसके

अनुसार ग्रामीण बस्तियों के प्रमुख तथ्य प्रकाश में आये है । भौगोलिक साहित्य से स्पष्ट है कि स्थान-स्थान पर क्षेत्रों को भूदृश्य विविधतापूर्ण एवं अनेकतायुक्त है तथा ऐसे भूदृश्य में नाना प्रकार से वितरित ग्राम्य बस्तियां भी विविधतापूर्ण है । कीटिंग (1935) का वर्गीकरण- घाटी के किनारे के पुरवें, घाटी के ग्राम, नदी के किनारे के ग्राम, सड़क के किनारे के ग्राम मुख्यतया भूदृश्य पर आधारित हैं ।

वस्तुतः भौगोलिक अस्तित्व के रूप में अवस्थिति, वितरण आदि के अतिरिक्त अधिवासों के अध्ययन का एक अन्य पक्ष भी हैं जिसका सम्बन्ध अन्तर्आवासीय समष्टि सम्बन्धों, किसी भूदृश्य में आवासों के विन्यास एवं समूहन तथा गृह प्रतिष्ठानों के संसृजन एवं संहनता की मात्रा से हैं । इस आधार पर मानव अधिवासों के अनिवार्यतः दो प्रकार होते है- जिसमें प्रथम को एकत्रित-संहत-केन्द्रीय आदि नामों से जाना जा सकता हैं तथा द्वितीय को प्रकीर्ण- प्रक्षिप्त नामों से सम्बोधित किया जाता है । इन दोनो प्रमुख बस्तियों के मध्य अनेक स्तर की बस्तियां पायी जाती हैं जिन्हें उपसंहत या अभिसंहत बस्ती या पल्लीयुक्त बस्ती कहते हैं । इस प्रकार की बस्तियां सामाजोन्मुख, समाजभिमुख की तरह विभिन्न अभिकेन्द्रीय और अपकेन्द्रीय बलों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं ।

वर्तमान अधिवासों का विभाजन, जो कि व्यावसायिक इकाइयों, उनकी प्रकृति एवं संख्या तथा ग्राम परिपेक्ष्य, जो भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्व हैं, पर आधारित हैं । वर्तमान अध्ययन में मौजा को आधार माना गया हैं जो एक प्रशासनिक या मालगुजारी इकाई का द्योतक हैं । इसकी सीमा रेखा के अन्तर्गत स्थित विभिन्न आवासीय इकाईयां पुरवा या टोली तथा केन्द्रीय अधिवासीय इकाई ग्राम या खास के नाम से जानी जाती हैं ।

रामबली सिंह (1972) ने एक नवीन सांख्यिकीय आधार पर ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों को विभाजित करने का प्रयास किया । इस वर्गीकरण में एक प्रशासनिक इकाई में पल्लियों या पुरवों की संख्या (Hn.), ग्रामों की संख्या (Vn.) और अध्यासित इकाइयों (OUn.) को आधार बताया गया हैं, जो कि निम्नवत् हैं।

पल्ली/पुरवें	ग्रामों की संख्या	बस्ती का प्रकार
Hn	Vn	संहत
Hn	Vn+1 to Vn x 2	अभिसंहत
Hn	Vn x 2 + 1 to $\frac{OUn \times 2}{3}$	पल्लीयुक्त
Hn	$\frac{OUn \times 2}{3}$ + 1 to OUn	परिक्षिप्त

संत बहादुर सिंह (1977) ने अपने शोध ग्रन्थ में अधिवासों का वर्गीकरण करते समय आर0बी0सिंह द्वारा किए गए बनारस जनपद के अधिवासों के

वर्गीकरण के ढंग से असहमति व्यक्त की है जिसका कारण भौतिक संरचना एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की विभिन्नता को बताया । उन्होंने भी अधिवासों को तीन भागों में बांटा हैं।

1. सघन अधिवास या पुरवा रहित ग्राम;
2. अर्द्ध सघन अधिवास या अभिपुरवा ग्राम (2 से 6 पुरवा तक);
3. पुरवा ग्राम (7 से अधिक पुरवों वाला अधिवास) ।

इस वर्गीकरण में उन्होंने मात्रात्मक पद्धति का प्रयोग किया हैं । क्रिस्टालर (1933) ने जर्मनी की ग्रामीण बस्तियों के अध्ययन के पश्चात् उन्हें कई वर्गो में विभाजित किया : अनियमित सघन ग्राम; गोलटेड फार्मस्टेड; हैमलेट्स; प्लेस ग्राम; चीफ विलेज; स्ट्रीट विलेज; लाइनर विलेज; इस्टीट विलेज; अर्बन विलेज; सब अर्बन विलेज; मार्डन इन्डस्टियल सेटिलमेन्ट । इसी तरह इलियट (1862) ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण एवं विश्लेषण द्वारा निम्न प्रकार की ग्रामीण बस्तियों का सीमांकन किया : इस्टेड सेटिलमेन्ट- बड़े लोगों के फार्म; इस्मालफार्मर सेटिलमेन्ट; अर्ली डप्लप्ड एण्ड क्लोजली वुल्ड ऑफ सेटिलमेन्ट; लाइनर विलेज; डिसपर्स सेटिलमेन्ट; कोलोनियल सेटिलमेन्ट ।

उक्त विद्वानों का वर्गीकरण स्थिति एवं विकास की अवस्थाओं में अन्तर होने के कारण भारत जैसे खेतिहर देश की ग्रामीण बस्तियों के वर्गीकरण हेतु उपयुक्त नहीं है । उनका यह वर्गीकरण तत्कालीन यूरोप जैसे विषमता युक्त भूभाग की ग्रामीण बस्तियों के सीमांकन का आधार हो सकता है । भारत ग्रामों का देश है । यह तथ्य स्वयं उन्होंने भी स्वीकार किया है । ग्राम विकास एवं क्रमबद्ध परिवर्तनशील अवस्थाओं से ग्रामीण बस्तियों का स्वरूप सतत् परिवर्तीत होता रहता है ।

अध्ययन क्षेत्र की स्थिति, प्राकृतिक-सामाजिक-आर्थिक संरचना एवं अवस्थाओं को देखते हुए ग्रामीण बस्तियों का निर्धारण अपना एक अलग स्वरूप रखता है । एक तरफ उबड़-खाबड़, जंगली, पथरीला, अनुपजाऊ भाग है जो कि मानव की स्वयं की एकता को भी प्रकीर्ण करने की अविरत कोशिश करता है। ग्रामीण बस्तियां-पुरवों से लेकर एक एकाकी, निर्जन, स्थायी एवं अस्थायी सीमा तक मिलती हैं । दूसरी ओर उपजाऊ खेतिहर क्षेत्र, उत्तम समतल भूमि व बाढ़ प्रभावित क्षेत्र है, जहाँ पर ग्रामीण बस्तियां सिमटती सी प्रतीत होती हैं तथा दूर-दूर दृष्टिगोचर होती है । इतना ही नहीं, अध्ययन क्षेत्र में ऐसा भी भूभाग स्थित है जहाँ वैज्ञानिक प्राविधिकी, सुरक्षा, उन्नत कृषि आदि के कारण ग्रामीण बस्तियां अधिकाधिक प्रकीर्णन प्रवृत्ति को जन्म दे रही हैं । यह

प्रकीर्णन संहत से उपसंहत तथा पुरवा से एकाकी फार्म हाउस तक भी पहुँच चुका है लेकिन आर्थिक असमानता के कारण इसके आगे नहीं पहुँच सका है ।

इन ग्रामीण बस्तियों के वर्गीकरण के लिये आर0बी0सिंह (1969) द्वारा प्रतिपादित सांख्यिकीय आधार उपयुक्त है जिसमें आवासीय भवनों की मात्रा को भी गणितीय रूप में सम्मिलित करके जनपद के ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों को चिन्हित किया गया है ।

1. सघन अधिवास, 2. अर्द्ध सघन अधिवास, 3. पुरवा ग्राम, 4. बिखरे हुये अधिवास (चित्र संख्या- 4.3) ।

सघन अधिवास- सघन अधिवास जसपुरा विकासखण्ड के अन्तर्गत एक पेटी के रूप में चंदवारा, बड़ागाँव, सिन्धनकला, अदालत पंचायत मे स्थित है । यह पेटी यमुना व केन नदियों के किनारे फैली हुयी संगम स्थल पर मिलती है । इस सम्पूर्ण क्षेत्र में भीषण बाढ़ प्रति वर्ष आती है । यहाँ पर ग्राम शुष्क बिन्दु पर स्थित हैं। चन्दवारा अदालत पंचायत के चार ग्राम अदरी, गडोला, गौरी खुर्द व अमचौली में प्रति वर्ष बाढ़ के पानी में डूबते है फिर भी यहाँ के लोग अपना यह अधिवास छोड़ने के लिये तैयार नहीं है और न ही पास के ऊंचे भाग यानी शुष्क बिन्दु पर अपना अधिवास बनाना चाहते हैं । तिन्दवारी विकासखण्ड के अन्तर्गत दो संहत अदालत पंचायतें चिल्ला व बेंदा हैं जिनके ग्राम शुष्क बिन्दु पर स्थित हैं । बिसण्डा विकासखण्ड के अन्तर्गत स्थिति भदेदू व कोर्रही अदालत पंचायतें संहत हैं जिनके अन्तर्गत आने वाले ग्राम सुरक्षा व एक ही जाति (कुर्मी) के निवास स्थल होने के कारण संहत है । यह क्षेत्र समान संरचना वाला उपजाऊ मैदानी भूभाग हैं । विकासखण्ड मानिकपुर के अन्तर्गत पाठा क्षेत्र के कई ग्राम संहत कोटि के हैं । ये ग्राम जल बिन्दु पर स्थित है । इस प्रकार के अधिवासों की प्रमुख विशेषता एक मालगुजारी मौजा की सीमा के अन्तर्गत एक अधिवास, (समस्त गृहों का एकत्रित रूप) में अत्यन्त सघनतायुक्त हैं (चित्र संख्या- 4.4ए)। इन स्थानों पर उस क्षेत्र में जीविका पाने वाले व्यक्ति आराम करते, वस्तुएं एकत्रित करते तथा अपने अधीनस्थ क्षेत्र में कार्यो का क्रियान्वयन करते हैं । इस प्रकार के अधिवासों का आकार 5 मकान से 500 मकानों तक हो सकता है । विकासखण्ड पहाड़ी में बरद्वारा, विहरवाँ, भदेदू अदालत पंचायतें संहत हैं । विकासखण्ड रामनगर में नांदिनकुरम्यान, छीबों, हन्ना बिनैका, अदालत पंचायतें तथा मऊ विकासखण्ड में बियावल, मऊ, पूरब पताई, अदालत पंचायतें संहत अधिवास हैं । ये सभी ग्राम यमुना नदी के किनारे स्थित

Rural Settlement Types
Compact
Semi-Compact
Hamleted
Dispersed
5 0 5 10 15 20
Km
Fig.No. 4.3
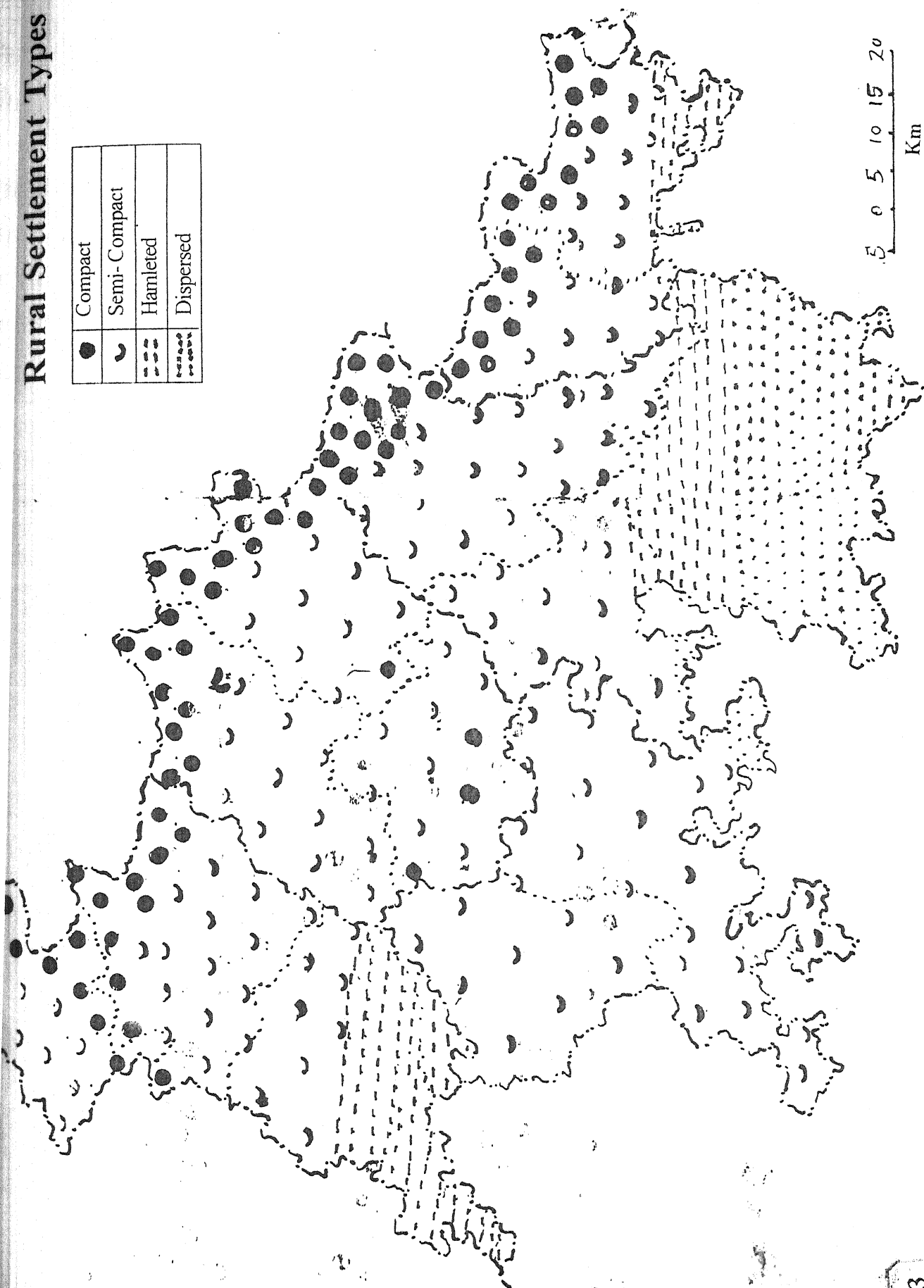
DISTRICT - BANDA

Types of Settlement
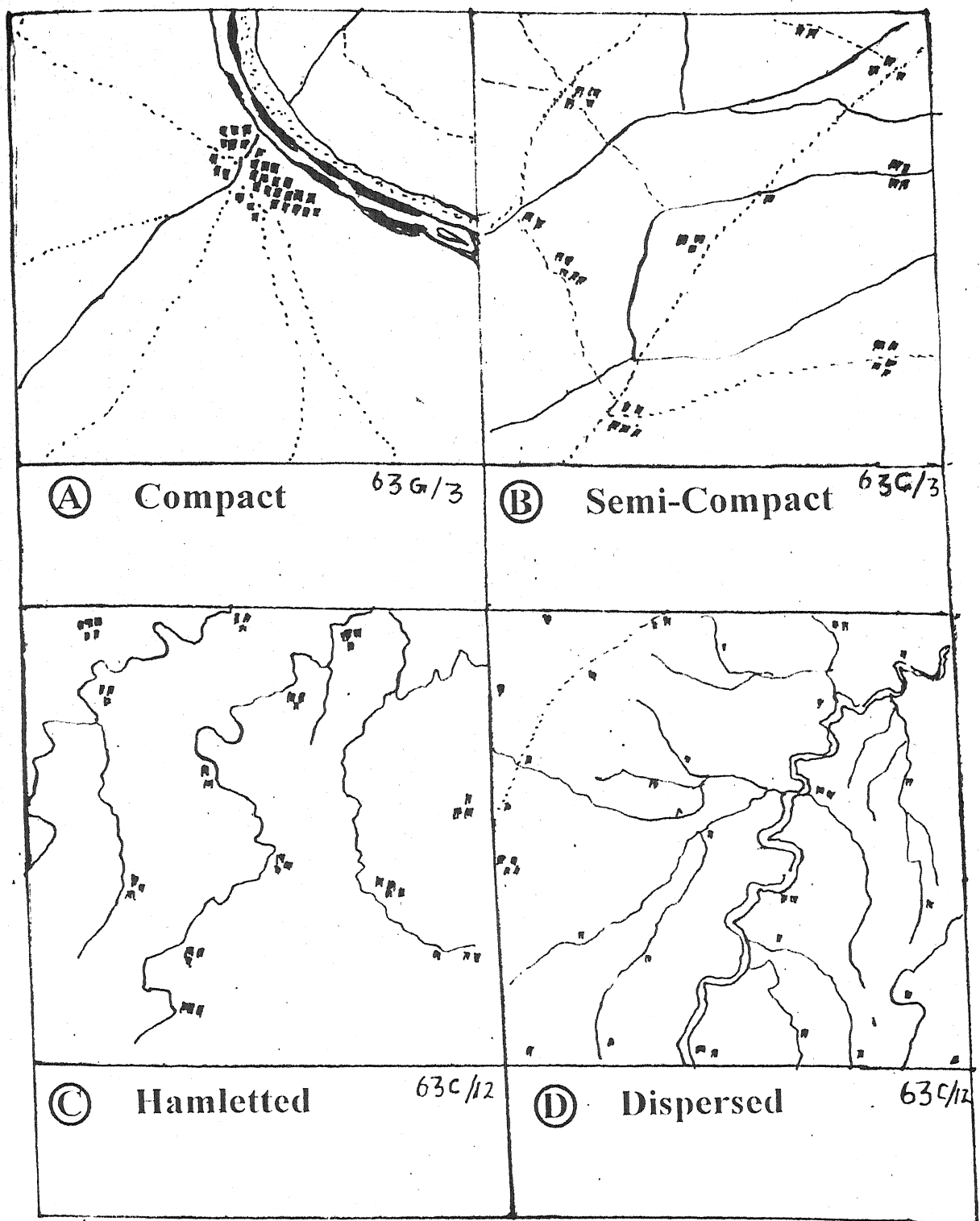
Fig. No. 4.4 (A-D)

हैं जहाँ पर बाढ़ व सुरक्षा के कारण अधिवास सिमट गये है । इसी कारण से यहाँ बडे-बड़े ग्राम देखने को मिलते हैं ।

अर्द्ध सघन अधिवास- अर्द्ध सघन अधिवास संहत एवं पल्लीयुक्त अधिवास के बीच की अवस्था हैं जिसकी प्रमुख विशेषता ग्राम की सीमा में प्रमुख ग्राम व एक या दो पुरवा (पल्ली) हैं । यह पुरवा या पल्ली प्रमुख ग्राम से पगडण्डी या बैलगाडी के रास्ते से सीधे जुड़े होते हैं । जनपद में इस प्रकार के अधिवास लगभग 750 ग्रामों में हैं । इस तरह के अधिवास अधिक बड़े क्षेत्रफल वाले है जहाँ पर सामान्य स्थितियाँ पायी जाती हैं खेतों की देखरेख, केन्द्रीय स्थिति आदि कारणों से इनकी उत्पत्ति हुई हैं । बबेरू, तिन्दवारी, महुवा, नरैनी विकासखण्ड के अधिकतर ग्राम इस श्रेणी में हैं (चित्र संख्या- 4.4बी) ।

पुरवा ग्राम- इस प्रकार की बस्तियों को एकाकी बस्तियाँ भी कहते हैं । ऐसी बस्तियों को दो रूपों में देखा जा सकता है । प्रथम- अविकसित क्षेत्र में जिसमें मानिकपुर विकासखण्ड प्रमुख है । आर्थिक बदहाली तथा संसाधनों के अभाव तथा एकाधिकार के कारण अधिकतर बस्तियाँ दूर-दूर जंगलों मे देखने को मिलती हैं । जिनका प्रमुख व्यवसाय वन्य उत्पादों से अपनी जीविका चलाना है । द्वितीय- विकसित क्षेत्रों में- जिसमें बड़ोखर विकासखण्ड मुख्य है । यहाँ पर सिंचाई के साधनो का अत्याधिक विकास, उर्वर भूमि, सम्पन्नता, आदि कारणों से फार्म हाउस जैसी- बस्तियों का उद्भव हो गया है । यहाँ पर अपने-अपने चकों में सड़को से लगे हुये अधिवास देखने को मिलते हैं लेकिन इनकी संख्या अभी बहुत कम हैं । इसके अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र में ऐसे अधिवास चित्रकूट, नरैनी, मऊ विकासखण्डों में देखे जा सकते हैं (चित्र संख्या- 4.4सी) । इनकी प्रमुख विशेषतायें निम्न है-

1. अधिवास दूर-दूर ।
2. प्राथमिक क्रियाकलापों यथा- लकड़ी काटना, पशुचारण, पत्ता तोड़ना, शहद इकट्ठा करना आदि मुख्य व्यवसाय हैं ।
3. विकसित कृषि क्षेत्रों में उचित देखभाल ।
4. आकार छोटा होता है ।
5. प्राकृतिक वातावरण के आन्नद का उपभोग करते हैं ।

बिखरे हुये अधिवास- इस प्रकार की बस्तियां एकाकी बिखरी हुई, दूर-दूर तथा चलगामी होती हैं । ऐसी बस्तियों के निवासी अत्यधिक गरीब हैं जो अपनी आजीविका हेतु स्थान भी बदल लेते हैं । मानिकपुर विकासखण्ड में जंगलों, तालाबों जल स्रोतों

के पास ऐसी बस्तियाँ देखने को मिलती हैं । चित्रकूट विकासखण्ड में कसहाई, कपसेठी, लोढवारा; मानिकपुर विकासखण्ड में अगरहुड़ा, ऊंचाडीह, केहुनिया, तथा पहाड़ी विकासखण्ड में गौहानीकला हरदौली, बछरन, असोह न्याय पंचायतों में इस प्रकार की बस्तियाँ देखने को मिलती हैं । मऊ विकासखण्ड की बरगढ़ व खन्डेहा न्याय पंचायतों में भी बिखरे हुये अधिवास मिलते है । क्षेत्र में पायें जाने वाले सघन, अर्द्ध सघन, पुरवा ग्राम तथा बिखरे हुए अधिवासों का विवरण तालिका संख्या 4.5 तथा चित्र संख्या-4.4डी में प्रदर्शित किया गया है ।

तालिका संख्या- 4.5 के परीक्षण से स्पष्ट है कि जसपुरा तथा तिन्दवारी विकासखण्डों में सघन अधिवासों की अधिकता है । बिसण्डा, महुवा, बड़ोखर खुर्द तथा नरैनी विकासखण्डों में अर्द्ध सघन अधिवासों की संख्या अधिक है जबकि पुरवा ग्रामों तथा बिखरे हुए अधिवासों की संख्या क्रमशः रामनगर, चित्रकूट, मानिकपुर एवं पहाड़ी विकासखण्डों में अधिक है । इसका कारण यह है कि यह क्षेत्र एक असमतल भूभाग तथा संसाधनों की दृष्टि से अविकसित क्षेत्र है।

ग्रामीण बस्तियों को निर्धारित करने वाले तत्व- किसी क्षेत्र में कौन सा प्रतिरूप पाया जाएगा, यह उस क्षेत्र की स्थानीय उच्चावच्च की दशाओं में अन्तर, जलवायु, मिट्टी की उर्वरा शक्ति, भूमि को जोतने-बोने के विभिन्न ढंगों, विभिन्न जातीय एवं सामाजिक रीति रिवाजों तथा मान्यताओं, जल की उपलब्धि में प्रादेशिक अन्तर तथा सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं पर निर्भर करेगा (हडसन, 1970)। जहाँ कृषक सघन खेती करते हैं अथवा स्थायी रूप से टिककर निवास करते हैं- जैसे मानसूनी एशियाई देशों में- जहाँ चावल पैदा किया जाता है और इसके लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती हैं, वहाँ अनिवार्यतः कृषि को भूमि के साथ ही जुड़े रहना पड़ता है (फिंच व ट्रीवार्था, 1946) ।

वस्तुतः किसी भी प्रदेश में ग्राम्य बस्तियों का विकास वहाँ की प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारकों के समन्वित प्रभाव का परिणाम है । इस तथ्य की पृष्ठभूमि में क्षेत्र विशेष की ग्राम्य बस्तियों की उत्पत्ति, विकास और भौगोलिक विवरण के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता हैं।

केन्द्रीयकरण को प्रभावित करने वाले कारक

प्राकृतिक कारक- सघन ग्रामीण बस्तियों की उत्पत्ति एवं प्रतिरूप को निर्धारित करने में जिन प्राकृतिक कारको ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वे निम्न है :

तालिका संख्या 4.5

अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण अधिवासों के प्रकारों का क्षेत्रीय वितरण (न्याय पंचायत स्तर पर) 1997

तहसील	विकासखण्ड	सघन	अर्द्धसघन	पुरवा ग्राम	बिखरा हुआ अधिवास
बाँदा	जसपुरा	सिंधनकला चन्दवारा बड़ागाँव	रामपुर गड़रिया	जसपुरा	-
	तिन्दवारी	चिल्ला बेंदा	मूगुंस,पिपरगवा, भुजरख, पलरा, पपरेन्दा,खपटिहाकलाँ, निवाइच,	-	-
	बड़ोखर खुर्द	-	लामा,लुकतरा, करबई,तिन्दवारा बड़ोखर खुर्द	मोहनपुरवा, मटौंध, जारी	-
बबेरू	बबेरू	-	परास,सातर, भभुवा, निम्भौर, बड़ागाँव, बगेहटा, करौली, पल्हरी, हरदौली	-	-
	कमासिन	-	छिलोलर, परसौली साड़ासानी,	कमासिन, औदहा बीरा, सुनहली, नारायणपुर बिसण्डा,	-
	बिसण्डा	भदेदू, कोर्रही,	पवइया, सिंहपुर	चन्द्रायल, ओरन,ग्रामीण, चौसड़	-
नरैनी	महुवा	-	खुरहण्ड, बड़ोखर बुजुर्ग, खम्भौरा, बहेरी, गोखिया, बरईमानपुर,बिलगाव, गिरवाँ, अर्जुनाह, पनगरा	-	-
	नरैनी	-	अतर्रा रूरल, तुर्रा, बदौसा, रसिन, डढ़वामानपुर	नहरी, पुकारी सढ़ा, गुढ़ाकला पडमई, पौहार रौलीकल्यानपुर	करतल, कालींजर

तहसील	विकासखण्ड	सघन	अर्द्धसघन	पुरवा ग्राम	बिखरा हुआ अधिवास
कर्वी	चित्रकूट	–	–	इटखरी, खोह, घुरेटनपुर, खोही, परसौजा, भरतपुर	कसहाई, कमसेठी, लोढ़वारा,
	मानिकपुर	–	–	–	अगरहुडा, उमरी, ऊंचाडीह, ऐचवारा, केहुनिया, भौरी, रामपुर, सरैया, कल्याणगढ़, रैपुरा,
	पहाड़ी	–	–	–	औदहा, भदेदू, कलवारा बुजुर्ग, नांदी, पहाड़ी, गौहानीकला, बरद्वारा, लोहदा, अशोह, ओरा, बछरन, हरदौली
मऊ	मऊ	–	मऊ	पूरब पताई, गाहर पिआयल, खपटिहा	बरगढ़, खडेहा
	रामनगर	–	रामनगर, हन्नाबिनैका	रामपुर, छीबों नांदिन कुर्मियान	–

स्रोत : क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित ।

1. **समतल उच्चावच्च वाला धरातलीय भूभाग-** समतल धरातलीय भाग सघन एवं पास-पास बसी हुयी बस्तियों को जन्म देते हैं । यही कारण हैं कि क्षेत्र के समस्त समतल मैदानी भाग ग्राम्य बस्तियों के प्रमुख केन्द्र बन गये हैं।

इन्हीं धरातलीय दशाओं जनपद के अन्तर्गत जसपुरा, तिन्दवारी, महुवा, बड़ोखर खुर्द, बिसण्डा, बबेरू विकासखण्डों में ग्राम पास-पास सघन और बड़े आकार के मिलते हैं ।

2. **पर्याप्त जल संसाधन-** मानव जीवन के लिये जल नितान्त आवश्यक हैं। अतः जल प्राप्ति की सुविधा को ध्यान में ही रखकर मानव किसी बस्ती का निर्माण करते हैं (मिश्र, 1994) ।

अध्ययन क्षेत्र में पर्याप्त जल की पूर्ति बस्तियों के एकत्रीकरण को प्रोत्साहन देता हैं जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की बस्तियाँ विकसित होती हैं। तालाब, झील व नदी के किनारे बसे हुए सघन ग्राम इस बात की पुष्टि करते हैं।

विकासखण्ड जसपुरा, तिन्दवारी, बड़ोखर खुर्द, बबेरू, बिसण्डा, महुवा में आवश्यकतानुसार पर्याप्त जल मिलने के कारण ग्रामीण बस्तियों का विकास सहज सा हो गया है । पाठा क्षेत्र जिसके अन्तर्गत विकासखण्ड चित्रकूट, पहाड़ी, मानिकपुर, व मऊ के भाग आते हैं, जल संसाधन की अपर्याप्तता के कारण ग्राम्य बस्तियां जल बिन्दु पर ही विकसित हुई हैं ।

3. उपजाऊ मिट्टी- समतल धरातल एवं पानी के सहयोग से उर्वर भूमि जैसे कारक ने पृथ्वी पर कृषि अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है । जिसके फलस्वरूप ग्राम्य भूदृश्य की उत्पत्ति उसके लम्बे इतिहास एवं वितरण प्रतिरूप का निर्धारण हुआ है। वस्तुतः अध्ययन क्षेत्र की सम्पूर्ण जलोढ़ निर्मित क्षेत्र की उपजाऊ भूमि, मार, पडुवा व काबर भूमि के उपजाऊ सिंचित क्षेत्र में सघन बसाव जबकि यमुना, केन, बागै, पयस्वनी नदियों के क्षत-विक्षत क्षेत्र तथा असमतल पहाड़ी भूमि में अर्द्ध प्रकीर्ण एवं प्रकीर्ण बस्तियाँ देखने को मिलती हैं ।

सांस्कृतिक कारक- उपरोक्त प्राकृतिक कारको के अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न भागों में रहने वाली विभिन्न जातियों द्वारा विकसित, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान के अनुसार भी ग्राम्य बस्तियों की उत्पत्ति एवं उनके भौगोलिक वितरण आदि तथ्यों पर मौलिक प्रभाव पड़ता है । भूमि को प्रयोग करने की प्राथमिक अवस्थाओं में सुरक्षा एवं एक ही प्रकार की जीवन यापन की दशाओं के कारण छोटे-छोटे मानव समूहों को जन्म मिला है । इस प्रकार विकीर्णता के आधार पर एक साथ रहने की प्रवृत्ति मानव में अधिक पायी जाती है (मिश्र, 1994) । शोध क्षेत्र के विभिन्न भागों में धर्म, परिवार जाति के आधार पर मानव पुंज की भाँति गांवों में निवास करता है । कृषि कार्य में सहयोग की आवश्यकता मानव को पुंजित समूहों की ओर ले जाती है । वशानुक्रम से मानव अपने वंश, गोत्र व नजदीकी सम्बन्ध के कारण साथ कार्य करते रहते व विकसित होते है (हाल, 1931) । धान उत्पादक क्षेत्र में अत्याधिक मानव श्रम की खपत के कारण मालिक, खेतिहर मजदूर, मजदूर व अन्य एक साथ रहते हैं । फलस्वरूप अतर्रा, विसण्डा तथा महुवा क्षेत्र में सघन गांवों की उत्पत्ति हुई है ।

1. खेतों का आकार छोटा व बिखरा हुआ होना- बस्तियों के पुंजीकरण का यह एक महत्वपूर्ण कारक है । बिखरे हुए खेत बिखरी हुई बस्तियों को कभी भी जन्म दे सकते हैं । यह समस्त लोग एक उचित स्थान पर साथ-साथ ही निवास करते है तथा कुओं, तालाबों, मन्दिरों, पंचायतों व रास्तों का सुविधापूर्ण उपभोग करतें है । खेतों का आकार छोटा होने का मुख्य कारण परिवार वृद्धि, बँटवारा तथा एकत्रीकरण होता है । इसी के साथ संहत गांव बढ़ता चला जाता है ।

2. जाति एकरूपता एवं सामाजिक सम्बन्ध- ग्राम्य बस्तियां परिवार एवं जाति व्यवस्थान्तर्गत वृद्धि को प्राप्त होती हैं । वर्ण व्यवस्था के अनुसार विभिन्न जातियां अपना-अपना कार्य सम्पादित करती हैं और सामाजिक सहयोग प्रदान करती हैं । इन विभिन्न जातियों का जमघट ग्राम को जन्म देता हैं । वस्तुतः एक दूसरे की आवश्यकता सबको प्रतीत होती हैं । इनमें लुहार, चमार, बढ़ई, मेहतर, नाई, ब्राह्मण, क्षत्रिय सभी शामिल हैं तथा एक दूसरे को सेवा प्रदान करते हैं । सामाजिक व्यवस्था के अनुसार इन सभी जातियों के अलग-अलग मुहल्ले होते हैं । ग्राम के केन्द्र में उच्च वर्गीय जातियां ब्राह्मण व राजपूत निवास करते हैं जिसे अध्ययन क्षेत्र में इसे स्पष्ट देखा जा सकता हैं ।

3. धर्म एवं अन्धविश्वास- धार्मिक प्रवृत्ति के कारण मानव धार्मिक स्थानों को सहयोग से तथा कभी-कभी ही निर्मित कर पाता हैं और इन धर्मालयों (मन्दिर,मस्जिद, गिरजाघर) के आस-पास ही मानव निवास करने लगता हैं जिससे वह अपने आराध्य देव की उपासना प्रति दिन कर सके । जनसंख्या एवं परिवार वृद्धि के कारण ही समयोपरान्त ही ऐसे स्थल पुंजीभूत हो जाते हैं । सीतापुर, विन्ध्वासिनी मन्दिर क्षेत्र, राजापुर, हथौड़ा, हरदौली, ललोली आदि ग्राम अधिवास के बसाव में उस प्रकार के कारक का प्रमुख योगदान है ।

3. सुरक्षा- शान्ति व सुव्यवस्थिति ग्राम्य जीवन में सुरक्षा अति आवश्यक तत्व हैं । सुरक्षित ग्रामों को ही मानव ने प्रारम्भ में अपना निवास स्थल बनाया है लेकिन अत्याधिक सुरक्षा एवं सुव्यवस्था पुनः विकीर्णता का भी प्रतीक हैं । अति सुरक्षा की स्थिति में मानव अपनी आवश्यकतानुसार अपना निवास स्थल चुनने के लिये स्वतन्त्र हो जाता है । क्षेत्र में असुरक्षा की दशाओं विशेषतया डाकुओं के आतंक एवं जंगली जानवरों से सुरक्षा के लिए पाठा क्षेत्र में सुरक्षित सघन व बड़े ग्रामों में के लिए मानव उद्यत है ।

प्रकीर्णन को प्रभावित करने वाले कारक- ग्राम्य बस्तियों के प्रकीर्णन को प्रभावित करने वाले कारके निम्नलिखित हैं :

1. **असमान उच्चावच्च वाला भूभाग-** वस्तुतः असमान धरातलीय भाग बिखरी हुई एकाकी बस्तियों को जन्म देते हैं । जनपद के अन्तर्गत नरैनी, चित्रकूट, मानिकपुर, पहाड़ी व मऊ विकासखण्ड का दक्षिणी भूभाग असमान उच्चावच्च वाला पठारी भूभाग हैं । इसी कारण इस क्षेत्र में ग्राम्य अधिवासों का विकीर्णन हुआ हैं। इस समस्त भूभाग में छोटी-छोटी एंकाकी बस्तियां दृष्टिगोचर होती हैं । न्याय पंचायत व ग्राम स्तर पर इनका क्षेत्रफल तो अत्याधिक हैं लेकिन कृषि योग्य भूमि 5 से 20 प्रतिशत तक बिखरी हुई है ।

2. **अपर्याप्त या अत्यधिक जल संसाधन-** यही कारण है कि नरैनी, चित्रकूट, पहाड़ी व मानिकपुर विकासखण्ड में जल की अपर्याप्तता के कारण जल बिन्दुओं पर अधिवासों का विकास हुआ है तथा इन छोटे-छोटे जल श्रोतों के पास छोटी-छोटी बस्तियां दृष्टिगोचर होती हैं । अध्ययन क्षेत्र की पाठा भूमि जल की अपर्याप्तता के कारण प्रारम्भ से ही ग्रसित है जो इस लोकोक्ति से प्रमाणित होता है-

'भँवरा तेरा पानी गजब करि जाय ।
गगरी न फूटै खसम मरि जाय ।।

इस लोकोक्ति में आदमी की तुलना में पानी को अधिक महत्व दिया गया हैं (मिश्र, 1999) ।

3. **बाढ़-** बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में मानव अपना अस्थायी निवास स्थल बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में बना लेता हैं और अपने खेतों का उचित निरीक्षण एवं रख-रखाव करता हैं । बाढ़ के समय ये लोग अपना सामान ऊंचे स्थान पर उठा ले जाते हैं जो कि मुख्य ग्राम होता हैं और वह ग्राम शुष्क बिन्दु पर स्थिर होता हैं । यमुना नदी द्वारा बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र में इस प्रकार के पुरवें स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं । यह सब लगभग अस्थायी ही होते हैं ।

सांस्कृतिक कारक

1. **जाति वंशानुक्रम-** छोटे भूमि स्वामी व बटाई में खेत जोतने वाली जातियां यथा- अहीर, केवट, लोध व अन्य जातियां कृषित भूमि में ही अपना निवास स्थल बनाकर रहने लगती हैं और उनका वह निवास स्थल अलग पुरवें के रूप में विकसित हो जाता है जबकि उच्च जातियां व बड़े भू स्वामी ग्राम के केन्द्र में निवास करते हैं तथा अन्य विभिन्न सेवा प्रदान करने वाली जातियां पास में ही कुछ दूर पर अपना पुरवा बना लेती हैं । ग्राम के विकास के साथ ये पुरवें ग्राम में ही मिल जाते हैं। इसके पश्चात् पुनः अन्य छोटी जातियां ग्राम से दूर अपना पुरवा बनाती है । अलग-अलग जाति के लोग अलग-अलग पुरवों में निवास करते हैं। इस तरह जाति वंशानुक्रम, ग्राम्य अधिवास के प्रकीर्णन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं ।

2. **भूमि पट्टा-** सन् 1949 के पहले अंग्रेजों के शासन काल में मालगुजारी राजाओं, तालुकेदारों एवं जमीदारों द्वारा एकत्र की जाती थी जो घर बनाने व बटाई पर खेती करने के लिए लोगों को खेत दे देते थे । इनमें अधिकतर खेतिहर मजदूर व अन्य श्रमिक निवास करते थे, जिनका स्वरूप पुरवा सदृश होता था । यह पुरवें भी उसी जमींदार या तालुकेदार के नाम पर बने हैं । जमीदारी विनाश अधिनियिम लागू होने के पश्चात् वह समस्त बटाई वाली भूमि उसी कास्तकार की हो गयी है जो उसे जोतता बोता था । अब वह भूमि उनकी निजी हो जाने के कारण वे पुरवें स्थायी हो गये हैं ।

आर्थिक कारक- वस्तुतः अधिवासों के बसाव में आर्थिक कारक का महत्वपूर्ण योगदान है । यह एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला क्षेत्र है । अस्तु गहन कृषि क्षेत्रों में सघन स्वरूप वाली बस्तियों को जन्म मिला है जैसे बड़ोखर, तिन्दवारी, जसपुरा, महुवा, बिसण्डा, नरैनी आदि विकासखण्ड । यहाँ पर इस प्रकार की बस्तियाँ भी है जिनमें मुख्य गांव के अतिरिक्त 20 तक पुरवे पाए जाते हैं ।

References

1. Barnes, J.A. and Robinson, K.H. (1940) : A New Method for the Representation of Dispersed Rural Population, Geographical Review, PP. 134-137.
2. Christaller, W. (1933) : Die Zentralen Orte in Suddeutschlund, Jena, Translated by C.W. Basken, Central Place in the Southern Germany, New Jersey, Prentice Hall 1966, P. 230.
3. Elliot, C.A. (1962) : Chronicles of Oonao (Allahabad Mission Press), P.26.
4. Finch, V.C. and Trewartha, G.T. (1946) : Elements of Geography ; Physical and Cultural (New York Mc Graw Hill), P. 553.
5. Hall, R.B. (1931) : Sum Rural Settlement Forms in Japan, Geographical Review, 21, PP. 93-123.
6. Hudson, F.S. (1970) : Geography of Settlements, Mc Donald and Evans, London.
7. मिश्र, कृष्ण कुमार (1999) : पाठा के कोल, समस्याएं एवं सुझाव, उजाला, अगस्त, पृष्ठ- 32-36 ।
8. मिश्र, कृष्ण कुमार (1994) : अधिवास भूगोल, कुसुम प्रकाशन, अतर्रा, पेज- 19-54।
9. Singh, R.B. (1969) : Rural Settlement Types and their Distribution ; Examples from Varanasi District, India N.G.J.I. 15(2), P. 100.
10. Singh, S.B. (1977) : Rural Settlement Geography; A Case Study of Sultanpur District, PP. 31-45.
11. Swainson, B.M. (1935) : Rural Settlement in Somerset, Geography 20, PP. 112-124.

अध्याय ५

ग्राम्य आकारिकी संगठन एवं स्थानिक सम्बन्ध

VILLAGE MORPHOLOGICAL STRUCTURE AND SPATIAL RELATIONSHIP

ग्राम्य आकारिकी संगठन एवं स्थानिक सम्बन्ध
VILLAGE MORPHOLOGICAL STRUCTURE AND SPATIAL RELATIONSHIP

अध्याय चार में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार एवं वितरणात्मक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है जो भौगोलिक परिस्थितियों के कारण क्षेत्र में विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं । इस अध्याय में ग्राम्य आकारिकी व स्थानिक सम्बन्धों- गांवों की आन्तरिक एवं बाह्य संरचना तथा उससे सम्बद्ध घटकों का अभिनिर्धारण, वर्गीकरण व प्रादेशीकरण का विवरण व विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है जिसका ग्राम्य नियोजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है । मानव बसाव तत्कालीन संस्कृति एवं परम्परा द्वारा निर्धारित होते हैं और सांस्कृति भूदृश्यों के महत्वपूर्ण तत्वों का निर्माण करते हैं । राजनैतिक-सांस्कृतिक एवं सामाजिक-आर्थिक अवस्थाओं की विविधता के कारण इनकी प्रतिरूपता स्थानिक एवं सामाजिक विषमता पर निर्भर करती हैं । बसाव-विन्यास के अन्तर्गत भवन, उनकी व्यवस्था एवं गलियों के प्रतिरूप को सम्मिलित किया जाता हैं जोकि सामूहिक रूप से इनकी उत्पत्ति, विकास एवं कार्य को प्रकट करते हैं। भौतिक-ऐतिहासिक-सांस्कृतिक प्रक्रियायें किसी एक सम्पूर्ण बस्ती या उसके किसी भाग के आकार एवं प्रतिरूप के निर्माण व निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । भौतिक विन्यास को सरलता पूर्वक स्थित तत्वों के विश्लेषण से समझा जा सकता है ।

सैद्धान्तिक आधार (Theoretiocal Base)

अधिवास का सामान्य आकार एवं आकृति तथा उसका निर्माण एवं बसाव, रास्ते, गलियारे व सड़को की संरचना की सम्भावनाएं आदि धरातलीय संरचना की उपज होती हैं । इसके अतिरिक्त गृहीय संरचना, स्थानिक गृह निर्माण सामग्री के अनुसार निर्धारित होती हैं । अध्ययन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में यान्त्रिक, प्रक्रिया, संस्था सम्बन्धी स्थिति तथा सामाजिक लगाव का स्तर, आन्तरिक बसाव प्रक्रिया तथा बस्ती का प्रकार, चाहे वह कृषिगत, औद्योगिक या खनन कार्य प्रतिपादित करती हो, को सम्मिलित किया जाता हैं । सामाजिक विन्यास- प्राकृतिक विन्यास का मार्ग दर्शक है जिसको भवनों एवं गलियारों के विस्तार, प्रकार व स्थिति के आधार पर जाना जा सकता हैं । सामाजिक स्थिति व कार्यों के विचार में वे समस्त प्रक्रियायें सम्मिलित हैं, जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से नियन्त्रित व न्यायोचित हैं (सिंह, 1972) । ग्रामीण अधिवास, जो कि विभिन्न प्रकार के कार्य व सेवाएं प्रदान करते

हैं, की व्याख्या सामाजिक संगठन के जैविक तत्व के रूप में की जा सकती हैं तथा उनकी बसाव आकारिकी संरचना निम्नलिखित घटकों से सम्बन्धित हैं ।

1. भौतिक एवं सांस्कृतिक दशाएँ- जो अधिवास के नाभिकों की उत्पत्ति से सम्बद्ध हैं ।
2. अधिवास के कार्यात्मक एवं आकारिकी विकास में नाभिक की प्रतिक्रियाएं।
3. समकालीन अधिवास का जीवन एवं संगठन तथा समीपवर्ती क्षेत्रों से उसके सम्बन्ध (डिकिन्सन, 1967) ।

"स्थल रूप- संरचना, प्रक्रम व अवस्था के परिणाम होते हैं (डेविस)।" इनके अनुसार भौतिक संरचना, भवनों की व्यवस्था, उनसे सम्बद्ध गलियों तथा ग्रामीण रास्तों की संरचना; प्रक्रियायें- जो ग्रामीणों की सामाजिक आर्थिक स्थिति एवं संरचना; तथा अवस्था- जिसमें अधिवास का ऐतिहासिक विकास एवं स्वरूप में क्रमिक परिवर्तन को वर्तमान शोध परिपेक्ष्य में चिन्तन हेतु लिया गया है । वर्तमान तत्वों की ग्राह्यता को ध्यान में रखकर वर्तमान अध्याय के अध्ययन के दो प्रमुख उद्देश्य हैं :

1. स्थानिक सम्बन्धों की खोज,
2. अधिवास की विन्यास आकृति ।

इसीलिए संरचना विकास को दिक्काल ढांचे में अधिवास इकाई के सामाजिक, सांस्कृतिक गुण या तन्त्र के रूप में ग्रहण किया गया है । मुखर्जी (1976) के अनुसार ग्राम्य आकारिकी का सम्बन्ध जनसंख्या, आर्थिक क्रिया तथा सांस्कृतिक भूदृश्य से है । वस्तुतः आकारिकी विस्तृत गुणार्थ वाला पद है जिसके अन्तर्गत सामान्यतया निम्न तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है :

1. ग्राम की सामाजिक स्थानिक संरचना;
2. जाति संरचना;
3. जाति के अनुसार भू स्वामित्व;
4. खेत प्रतिरूप तथा ग्राम आकार प्रतिरूप का विश्लेषण ।

ग्राम- ग्राम-ग्राम्य भूदृश्य का महत्वपूर्ण अंग हैं जिसमे मानव समुदाय अपनी जीविका निर्वाह हेतु प्राथमिक उत्पादन में संलग्न रहते हैं । ग्राम का अपना स्वतन्त्र जीवन व अस्तित्व होता है । इसीलिए इन्हें कृषि प्रधान कार्यशाला की संज्ञा दी जाती है (परपिलो, 1977) । परपिलों की भाँति ट्रीवार्था (1946) ने गांवों को कृषि व्यावसायिक केन्द्र स्वीकार नहीं किया है वरन् ग्राम को एक निवास स्थल की संज्ञा प्रदान की है । यह ग्राम एक राजस्व मौजा द्वारा परिभाषित होते हैं जिनमे कुछ

पुरवें भी सम्मिलित होते हैं यह पुरवे कृषिगत या अन्य भूमि द्वारा पृथक होते हैं और यह राजस्व ग्राम की सीमा के अन्तर्गत ही स्थित होते हैं । दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि ''राजस्व ग्राम की एक निश्चित सर्वेक्षित सीमा होती है जिसके अन्तर्गत वह एवं उसके पुरवें स्थित होते हैं तथा एक अलग प्रशासनिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं ।'' उपरोक्त तथ्य से इस बात की पुष्टि होती है कि ग्राम तथा ग्राम्य भूदृश्यावली के मूलतः तीन महत्वपूर्ण अंग होते हैं ।

1. अधिवास;
2. उत्पादक क्षेत्र;
3. उपलब्ध क्रियाकलाप ।

जिन राजस्व ग्रामों में अधिवासों का अभाव होता है, उन्हें अध्ययन क्षेत्र में खेर या गैर आबाद ग्राम कहते हैं ।

बस्ती भूगोल के प्रभृति विद्वान डाक्सियाडिस (1968) ने ग्रामीण अधिवासों के चार महत्वपूर्ण अंग माने हैं जो इस प्रकार हैं ।

1. समांगी भाग- इसके अन्तर्गत ग्राम से सम्बन्धित भूमि को लिया जाता हैं ।
2. केन्द्रीय भाग- इसके अन्तर्गत निर्मित क्षेत्र यथा- ग्राम्य गृहों को सम्मिलित किया जाता हैं ।
3. परिसंचरण भाग- इसके अन्तर्गत मुख्यतया सड़कें, गलियारे, रास्ते व मार्ग आदि आते हैं ।
4. विशिष्ट भाग- ग्रामीण बस्ती के विशिष्ट भाग को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है यथा- विद्यालय, मन्दिर, देवस्थान, पंचायत गृह, सामुदायिक विकास केन्द्र तथा जन हितार्थ सरकारी या गैर सरकारी भवन ।

खेत एवं गृह केन्द्र **(Farm and Village Foci)**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अस्तु विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक तथा जीवन सुरक्षा हेतु समूह में रहना उसकी मजबूरी है । इन निवास स्थलों का चुनाव कृषकों के पूर्वजों द्वारा किया गया था जो देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील भी रहें हैं । कृषिभूमि से घिरा अधिवास- खेतों तथा निवास स्थल के बीच स्थानिक अधिकतम निकट्य के अनुसार पहले ही निश्चित किया जाता है। जैसा कि आज व्यक्गित खेत या खेतों के पास निर्मित गृह से सम्बन्ध है । पहले विस्तृत खेत व अधिवास पास-पास रहे होंगे जो बाद में विभिन्न सामाजिक आर्थिक कारणों के परिणामस्वरूप छोटे व दूर-दूर हो गये हैं । ग्राम्य बस्तियों का कृषक अपनी आवश्यकता व समर्थ के अनुसार अपने विभिन्न खेत ग्राम्य सीमा के अन्तर्गत रखता

है । विभिन्न भौतिक-सामाजिक-आर्थिक कारको के फलस्वरूप आवासीय इकाइयों के समूहन से कुछ आर्थिक हानियां भी होती है । ये हानियां मुख्यतः खेत एवं आवासीय गृहों के मध्य दूरी के कारण होती हैं जो कि ग्राम के आकार-प्रकार, बिखराव के कोण, खेतों का आकार व विखराव तथा स्वामित्व के अनुसार कम या अधिक हो सकती हैं । इनमें से खेतों का विखराव तथा कृषि गृह इकाइयों का समूहन अधिकतम दूरी के दो प्रमुख कारक हैं । चिशोल्म (1968) ने विस्तार से इस समस्या का अध‌यन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि खेतों का विखराव ही शायद अधिकतम दूरी का सबसे बड़ा कारक है जबकि भूस्वामित्व की पद्धति, खेतो का फैलाव, रास्तों व मार्गो की कमी, अधिकतम दूरी के अतिरिक्त कारक हैं ।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि ग्रामीण निवास स्थल एवं खेतों के मध्य दूरी के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक है क्योंकि इसके माध्यम से मानव भूमि सम्बन्धों को पूर्णतः स्पष्ट किया जा सकता हैं । इसीलिए अध्ययन क्षेत्र के 13 विकासखण्डों में विस्तृत आवासीय ग्रामों एवं खेतों के मध्य दूरी को ज्ञात करने के लिए अधोलिखित परिकल्पनाओं को प्रमुखता प्रदान की गयी हैं :

1. एक विकासखण्ड के सभी ग्राम समान आकार वाले हैं ।
2. ग्राम की समस्त जनसंख्या एक ही अधिवास में निवास करती हैं ।
3. ग्राम्य निवास स्थल, ग्राम्य सीमा के केन्द्र में ही स्थित हैं ।
4. सम्पूर्ण ग्राम भू स्वरूप एक सतत ब्लाक में स्थित है ।
5. ग्राम का क्षेत्र वृत्तकार होता है लेकिन परिकल्पना के आधार पर षट्कोणीय होता है ।
6. ग्राम का कृषक अपने ग्राम की सीमा के बाहर कृषि कार्य नहीं करता या उसके खेत सम्बन्धित ग्राम सीमा के बाहर किसी ग्राम सीमा में नहीं होते ।
7. ग्राम का प्रत्येक खेत काक उड़ान रेखीय दूरी प्रतिरूप में पहुंचने योग्य है ।

उपर्युक्त परिकल्पनाओं को ध्यान में रखते हुए गणना के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के 13 विकासखण्डों के ग्रामों व खेतों के मध्य की दूरी अग्राकिंत सूत्र की सहायता से ज्ञात की गयी हैं (तालिका संख्या- 5.1) ।

$$Vf = 0.5373 \sqrt{\frac{A}{N}}$$

जबकि Vf = औसत ग्राम खेत दूरी;
A = क्षेत्र का क्षेत्रफल;
N = उस क्षेत्र में ग्रामों की संख्या ।

तालिका संख्या- 5.1

अध्ययन क्षेत्र में कृषक निवास स्थल से औसत ग्राम खेत दूरी (1997)

क्र0सं0	विकासखण्ड	क्षेत्रफल वर्ग किमी0	कुल ग्राम	औसत ग्राम खेत दूरी मीटर में	कोटि क्रम
1	चित्रकूट	508.76	128	1071	2
2	पहाड़ी	580.85	123	1167	5
3	मानिकपुर	1003.89	107	1646	13
4	नरैनी	602.78	146	1092	3
5	महुवा	412.73	118	1004	1
6	कमासिन	527.79	75	1425	8
7	बबेरू	607.22	80	1480	10
8	बिसण्डा	306.73	57	1246	7
9	जसपुरा	409.32	45	1620	11
10	तिन्दवारी	597.95	80	1478	9
11	बड़ोखरखुर्द	671.70	72	1641	12
12	मऊ	485.86	100	1184	6
13	रामनगर	338.88	73	1157	4
	योग	7054.49	1204	1354	
	बन ग्राम		3		
	सम्पूर्ण योग		1207		

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका से प्राप्त आंकड़ो की गणना के आधार पर ।

तालिका संख्या 5.1 के विष्लेषण से स्पष्ट है कि बस्ती व खेतो के मध्य दूरी 1646 मीटर मानिकपुर विकास खण्ड में पाई जाती हैं । सम्पूर्ण जनपद के ग्रामों व खेतों के मध्य पारस्परिक औसत दूरी 1354 मीटर है । इससे यह स्पष्ट है कि जनपद के विभिन्न विकास खण्डों में ग्रामों व खेतों के मध्य पारस्परिक दूरी के माध्य में पर्याप्त विषमतायें मौजूद हैं जिसका प्रमुख कारण ग्राम्य वातावरण में भौतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में विषमता है ।

सम्पूर्ण क्षेत्र की व्याख्या हेतु अध्ययन क्षेत्र के सभी विकास खण्डो में प्राप्त ग्राम एवं खेत की परस्पर दूरी को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है ।

तालिका संख्या- 5.2

अध्ययन क्षेत्र में ग्राम खेत दूरी, 1997

ग्राम व खेतों की दूरी का क्रम	वर्गअन्तराल	विकासखण्डों की संख्या
न्यूनतम दूरी	1400 मी0 से कम	6
मध्यम दूरी	1401मी से 1600मी0	4
अधिकतम दूरी	1600 मी0 से अधिक	3

स्रोत : सांख्यकीय पत्रिका से प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

1. **न्यूनतम दूरी-** इसके अन्तर्गत महुवा, चित्रकूट, रामनगर, पहाड़ी, मऊ, नरैनी विकासखण्ड सम्मिलित हैं ।
2. **मध्यम दूरी-** इसके अन्तर्गत बिसण्डा, तिन्दवारी, बबेरू, कमासिन, विकासखण्ड सम्मिलित हैं ।
3. **अधिकतम दूरी-** इसके अन्तर्गत जसपुरा, मानिकपुर, बड़ोखर खुर्द विकासखण्ड आते हैं ।

खेतों का आकार एवं प्रतिरूप (Field Sizes and Patterns)

किसी भी क्षेत्र में खेतों के आकार एवं प्रकार के निर्धारण में एक तरफ मिट्टी की उर्वरता, जल निकास प्रतिरूप एवं कृषि क्रिया पद्धति तथा दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि एवं विस्तार तथा निवासियों के आर्थिक स्तर का प्रभाव परिलक्षित होता हैं । खेतों का आकार और उनकी विविध प्रकार की विशेषताएं, भूमि, उत्पादकता, आवासीय बस्ती से खेतों की दूरी तथा उत्तराधिकार के नियम पर आधारित है । उत्तराधिकार के नियम के अन्तर्गत प्रत्येक पुत्र का प्रत्येक खेत मे व परिवार की समस्त भूमि पर हिस्सा होता हैं और यह हिन्दू विधि तथा जमींदारी विनाश अधिनियम दोनो में उल्लेखित किया गया हैं । यह भी विशेष महत्वपूर्ण है कि आवासीय क्षेत्र के पास खेतों का आकार छोटा होता है तथा दूर बढ़ने पर खेतों के आकार मे क्रमश बढ़ोत्तरी होती जाती है (चित्र संख्या- 5.1) । इसका कारण यह है कि बस्ती के पास की भूमि (गोयड़) अत्याधिक उपजाऊ होती है तथा यह भूमि आवास बनाने व कृषि की निगरानी में अत्याधिक उपयुक्त होती हैं ।

उ0प्र0 चकबन्दी अधिनियम के अन्तर्गत क्षेत्र के ग्रामों में चकबन्दी की गयी लेकिन चकदारों ने भूमि की अलग-अलग किस्म होने से कई-कई चक बनवाए । पुनः बटवारा व विक्रय के कारण चकों का आकार छोटा होने लगा हैं तथा 168ए ज0वि0अ0 का प्राविधान शिथिल होने के कारण तथा माल अधिकारियों के असम्यक् अधिकार प्रयोग से खेतों का आकर स्थिर नहीं रह सका हैं । अध्ययन क्षेत्र के चकबन्दी क्रिया विहीन ग्रामों में खेत छोटे-छोटे व दूर-दूर हैं । कुछ खेत इतने छोटे हैं कि परम्परागत कृषियन्त्र प्रयोग करने में भी परेशानी होती हैं । खादर के क्षेत्रों में सर्वेक्षण से यह पाया गया हैं कि बहुत से खेतों की चौड़ाई 1/2 गाठा (3फुट 3.5इंच) तथा लम्बाई 2 कि0मी0 तक हैं ।सर्वेक्षण बताता है कि इस प्रकार का प्रतिरूप लगभग सभी ग्रामों में मिलता है ।

1998

N

S

FIELD PATTERN
SETTLEMENT
CANAL
METALLED ROAD
THRESHING GROUND
PONDS
CHAKA ROAD
CART TRACK
WELLS
GARDEN
WAST LAND

TO ORAN

ATARRA

METRES
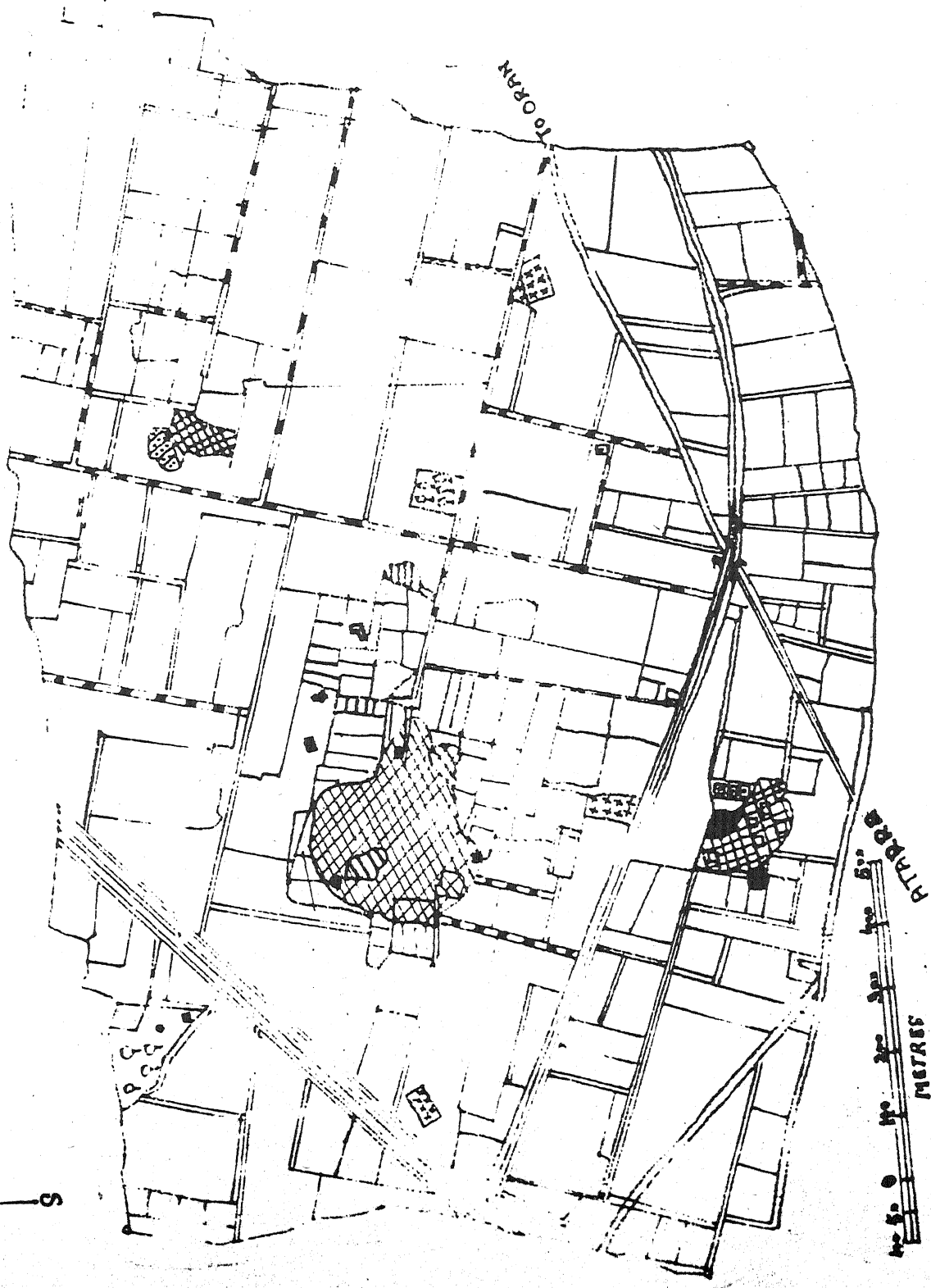
Fig No. 5.1

बसरेही (Basrehi)

ग्राम बसरेही (25^0 17' 38'' उत्तरी अंक्षाश एवं 80^0 35' 45'' पूर्वी देशान्तर) पर केन, बागै द्वाव मे अतर्रा नगर से 3 किमी0 उत्तर-पूरब में केन नहर के समीप स्थित है । इस ग्राम में दो प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं- 1. गोयड़, 2. पडुवा । गोयड मिट्टी बस्ती के समीप स्थित है जो अत्याधिक उपजाऊ है । पडुवा मिट्टी अपेक्षाकृत कम उपजाऊ है लेकिन धान उत्पादन के लिए अति उपयोगी है । यहाँ 87.89प्रतिशत भूमि पर कृषि की जाती है । खरीफ व रबी की फसलें उगाई जाती हैं । वर्ष 1997 में कुल कृषित भूमि के 96.3 प्रतिशत भाग पर खरीफ तथा 90.7 प्रतिशत भाग पर रबी की फसल बोई गयी थी । यह ग्राम पूर्णरूप से सिंचित है तथा नहर सिंचाई का मुख्य साधन है ।

खेतों का आकार बस्ती के पास बहुत छोटा है तथा दूर बढने पर खेतों के आकार में वृद्धि होती जाती है (चित्र संख्या- 5.1) । औसत बस्ती खेत दूरी 950मीटर है ।

इस ग्राम में मुख्य बस्ती के अलावा 3 पुरवे- प्रधान का पुरवा, मैकू का पुरवा तथा चमारन पुरवा हैं । इनमें अधिकतर कृषि श्रमिक निवास करते हैं। ग्राम में कृषि मजदूरों की संख्या अत्याधिक है जो पिछड़ी जाति के हैं ।

ग्राम-आकृति विश्लेषण (Village-Shape Analysis)

ग्रामीण भूदृश्यावली के सांस्कृतिक तत्व के रूप में मानव अधिवास का महत्वपूर्ण स्थान है । यही कारण है कि भूगोलवेत्ताओं के लिए ग्राम्य अधिवासों का भौगोलिक अध्ययन महत्वपूर्ण है । अधिवासों का आकार, सीमा तथा विशेषताओं के मापन हेतु पहले गुणात्मक उपागम् का सहारा लिया जाता था परन्तु वर्तमान समय मे ग्राम्य आकृति के विश्लेषण हेतु मात्रात्मक उपागम् का प्रयोग अधिक किया जाता है । ग्राम्य प्रदेश, जो परिवृद्ध क्षेत्र की धारणा से सम्बद्ध हैं, द्विविमीय लक्षणों से युक्त मानकर संवृत वक्रों द्वारा निरूपित किया जा सकता हैं (हड़सन, 1972) । निश्चित ही यह संवृत निरूपण ग्राम्य प्रदेश की आकृति को प्रकट करेगा जिसका विश्लेषण ग्राम्य आकार की व्याख्या हेतु एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में किया जा सकता हैं । साधारणतया ग्रामीण अपने ग्रामीण क्षेत्र से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता है । अत: ग्राम्य प्रदेश को परिबृद्ध क्षेत्र कहा जा सकता हैं । इसके अतिरिक्त ग्राम्यवासियों का सम्बन्ध विभिन्न आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोस के विस्तृत क्षेत्र से होता हैं । यह आवश्यकताएं क्रय-विक्रय, दवा व स्वास्थ्य सेवाओं की प्राप्ति,

तीर्थ यात्रा, धार्मिक उद्देश्य, देशाटन, शादी-विवाह, मेले आदि हो सकते हैं । इस प्रकार सांस्कृतिक सीमा को प्रत्यक्षित दिक् कहा जा सकता है । आकृति विश्लेषण का सम्बन्ध क्रमशः परिबृद्ध दिक् अथवा क्षेत्र से है । वर्तमान विश्लेषण परिबद्ध क्षेत्र की धारणा से सम्बन्धित हैं । द्विविमीय लक्षणों से युक्त मानकर उसे संवृत्त वक्रों द्वारा निरूपित किया जा सकता हैं । यह संवृत निरूपण ग्राम-प्रदेश की आकृति को प्रकट करेगा ।

परिबृद्ध क्षेत्र की धारणा, जिसमें किसी के विधि सम्मत अधिकार एवं बाध्यताएं सीमा पार करने पर परिवर्तित हो जाती हैं, परिवृद्ध दिक् अथवा क्षेत्र के संगठन को दो समूहों में व्यक्त किया जा सकता है (काक्स, 1972) ।

1) परिवृद्ध दिक् का आवासीय संगठन;
2) परिवृद्ध दिक् का कृषि संगठन ।

इसमें प्रथम संगठन आवासीय स्थल (निर्मित क्षेत्र) से सम्बन्धित है जिसमें विभिन्न जातियों के लोग रहते तथा सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं के कारण एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं जबकि दूसरी व्यवस्था में विभिन्न जातियों एवं समुदाय के लोग कृषि से सम्बद्ध गतिविधियों में एक दूसरे की सहायता करते हैं। प्रथम संगठन आवासीय स्थल पर तथा द्वितीय संगठन ग्राम्य सीमा पर आधारित हैं। इस सम्बन्ध में आवासीय क्षेत्र और ग्राम सीमा की आकृति का विश्लेषण बहुत सार्थक हो जाता हैं ।

किसी भी ग्राम के सम्बन्ध में आकार विश्लेषण एवं उनका मापन एक महत्वपूर्ण विषय हैं तथा इसके विश्लेषणात्मक अध्ययन से नियोजन उद्देश्यों की प्राप्ति उचित प्रकार से की जा सकती हैं । वस्तुतः ग्राम्य आकृति विश्लेषण हेतु दो विधियां प्रचलित हैं :

1. गुणात्मक उपागम;
2. मात्रात्मक उपागम ।

गुणात्मक उपागम- ग्राम बस्तियों की आकृति एवं संरचना प्रतिरूप के सम्बन्ध में मीटजेन (1895) का कार्य विशेष महत्व का हैं । उन्होंने जर्मनी की ग्रामीण बस्तियों को उनकी आकृति एवं प्रतिरूप के आधार पर वर्गीकृत किया है । बाद में इनके विचारों का अनुगमन विभिन्न भूगोलवेत्ताओं यथा- हाल (1932), डिमान्जियां (1933), सिंह (1955) आदि ने किया । वर्तमान अध्ययन में गांवों के प्रतिरूप एवं आकृति से तात्पर्य यह है कि गांवों की व्यवस्था एवं इससे सम्बन्धित अन्य

अवस्थापनाएँ विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कारकों के परिणाम स्वरूप उपयुक्त एवं सुविधाजनक स्थितियों की ओर विस्तृत होती हैं ।

वस्तुतः ग्राम्य आकारिकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक साथ ही साथ भूमि, जल बिन्दु, मृदा, कृषित क्षेत्र, सुरक्षा की आवश्यकता, जाति पदानुक्रम, पारस्परिक अन्तर्निभरता रास्तों, गलियारों, धार्मिक केन्द्रों आदि लक्षणों का प्रतिफल हैं ।अध्ययन क्षेत्र में ग्राम्य अधिवासों के मुख्यतः नौ प्रतिरूप देखने को मिलते हैं ।

1. **आयताकार या वर्गाकार प्रतिरूप-** अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश गांव आयताकार स्वरूप वाले हैं जिसे आसानी से पहचाना जा सकता है । इस तरह का प्रतिरूप, मुख्यतः खेतों के प्रतिरूप से नियन्त्रित होता है । हमारी भूमि मापन की इकाई बीघा या एकड़ वर्गाकार इकाई पर आधारित है और यह इस प्रतिरूप को जन्म देने में सहायक सिद्ध हुई है । ऐसे गांवों मे मकानों के विकास की प्रवृत्ति, बिना खेतिहर भूमि के आकार को नुकसान पहुंचाए, आबाद क्षेत्रों से संलग्न होती है। मकान प्रधानतः आयताकार या वर्गाकार ही होते हैं । अधिकांशतः आयताकार भूविन्यास तथा मकानों का दिक् विन्यास भी इस प्रतिरूप के विकास में सहायक माना जाता हैं । यह निर्विवाद है कि वस्तुतः जब कोई बस्ती सामूहिक रूप में अस्तित्व में आती है तो उसका आकार अधिकांशतः आयताकार या वर्गाकार रूप में विकसित होता हैं लेकिन जब वह स्वाभावतः विकसित होता है तो उसका आकार स्थूलतः आयताकार या वर्गाकार हो जाता है (मिश्र, 1994) । ऐसे गांवों में गलियाँ एवं रास्ते एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई मिलती हैं । अध्ययन क्षेत्र में ऐसे गांव भाथा, तेन्दुरा, चौसढ़, पचनेही, बड़ोखर खुर्द, अलिहा व धौसड़ है (चित्र संख्या- 5.2ए)।

2. **पोला-वर्गाकार या आयताकार प्रतिरूप-** कुछ विशिष्ट भौतिक अथवा सांस्कृतिक तत्वों यथा- टीला, तालाब, किला, प्राचीन खण्डहर, मस्जिद, एवं किसी देवी देवता के स्थान के कारण इनके चारों तरफ आवासीय क्षेत्र विकसित हो जाता है । फलस्वरूप उसका आकार केन्द्र में खोखला प्रतीत होता है । ग्राम के मध्य का यह स्थल भिन्न-भिन्न आकृति वाला हो सकता हैं किन्तु यह प्रायः आयताकार या वृत्ताकार रूप में पाया जाता हैं । कुछ ग्रामों के मध्य में तालाब पाए जाने के कारण गृह निर्माण या अन्य उपयोग हेतु मिट्टी की खुदाई भी हो सकती हैं (अहमद, 1949) । धर्मानुयायी इन खाली स्थलों पर प्राकृतिक बाधा या दैबीय प्रकोप का भय या सामाजिक नियन्त्रण बताकर आवास बनाने नहीं देते हैं । जनपद में पहाड़ी व मानिकपुर विकासखण्ड में ऐसे ग्राम अधिकतर देखने को मिलते

है जहाँ पर गांव के मध्य का खाली स्थल टेकरी या तालाब के रूप में है । ऐसे ग्राम सिहुडा, बेलगांव, हकीमपुर, उत्तमपुर, आदि है (चित्र संख्या- 5.2बी) ।

3. **वृत्ताकार प्रतिरूप-** यह प्रतिरूप अधिकांशत: प्राचीन गांवों में देखने को मिलता है और मूलत: स्थानीय भू स्वामी, जमींदार, मुखिया आदि के घरों के चतुर्दिक अधिकतम पुंजन का प्रतिफल है । इस प्रतिरूप में ग्राम के मध्य विभिन्न दिशाओं से मार्ग आकर मिलते हैं या उस ग्राम के केन्द्र से अन्य ग्रामों को मार्गों का विसरण होता है । प्रमुख रास्तों के अलावा गलियां मकड़ी के जाल के सदृश होती है । जनपद में पच्चीस प्रतिशत ग्राम इस प्रतिरूप के हैं जिनमें ओरन, पपरेन्दा, जारी, सिन्धनकला, पैलानी मुख्य हैं (चित्र संख्या- 5.2सी) ।

4. **रेखीय प्रतिरूप-** किसी स्थल के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्व-अधिवासों को कुछ निश्चित स्थितियों के अन्तर्गत विशेष दिशा में विकसित होने के लिए प्रभावित करते हैं । इस तरह भवनों का बसाव किसी एक दिशा में एक रेखा के सहारे या समान्तर बढ़ता जाता है । रैखिक प्रतिरूप के सन्दर्भ में गांवों का विकास मुख्यत: सड़क, रेलवे लाइन, बैलगाड़ी का रास्ता, नहर आदि के किनारे-किनारे होता है । इन बस्तियों में मकान आमने-सामने या अगल-बगल स्थित होते हैं तथा बसाव सघन व प्रकीर्ण किसी भी प्रकार का हो सकता है । अध्ययन क्षेत्र में तेन्दुही, रोहसत, जोरहटा, खुरहण्ड स्टेशन ललता रोड (चित्र संख्या- 5.2डी) आदि हैं । इस आकृति के ग्राम्य अधिवास वस्तुत: ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार केन्द्र इस रूप में विकसित हो जाते हैं जो सड़क व रेल मार्ग से नगरों से सम्बद्ध होते हैं ।

5. **शंतरंजीय प्रतिरूप-** इस प्रतिरूप में गलियां उत्तर-दक्षिण या पूरब-पश्चिम की दिशा में एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई स्थित होती हैं । इस प्रतिरूप वाले ग्राम कई आयताकार वास खण्डों में निर्मित होते हैं जिसे समान्तर गलियां पृथक करती हैं । वृहद आकार वाले ग्रामों में कृषि उत्पादों को लाने, निवासियों के आने-जाने के लिए बहुसंख्यक गलियों की आवश्यकता होती है । इनके रास्तों में बैलगाड़ी, जीप, हाँथी, आदि पहुँचते हैं लेकिन सकरी गलियों में एक साथ दो या तीन व्यक्ति ही गुजर सकते हैं । ये समान्तर एक दूसरे को काटती हुई गलियां ग्राम के सभी महत्वपूर्ण स्थलों तक पहुंचने में सहायक होती है । इस प्रतिरूप पर प्रचलित जाति व्यवस्था का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । ऐसे ग्रामों में विभिन्न जातियों के लोग पास-पास रहते हुए भी अलग-अलग आवासीय क्षेत्रों, जो कि गलियों से पृथक होते हैं, में रहते हैं । अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत ऐसे ग्राम-

चन्दवारा, कानाखेड़ा, गौरीकलॉ, गिरवाँ (चित्र संख्या- 5.2ई) आदि हैं ।
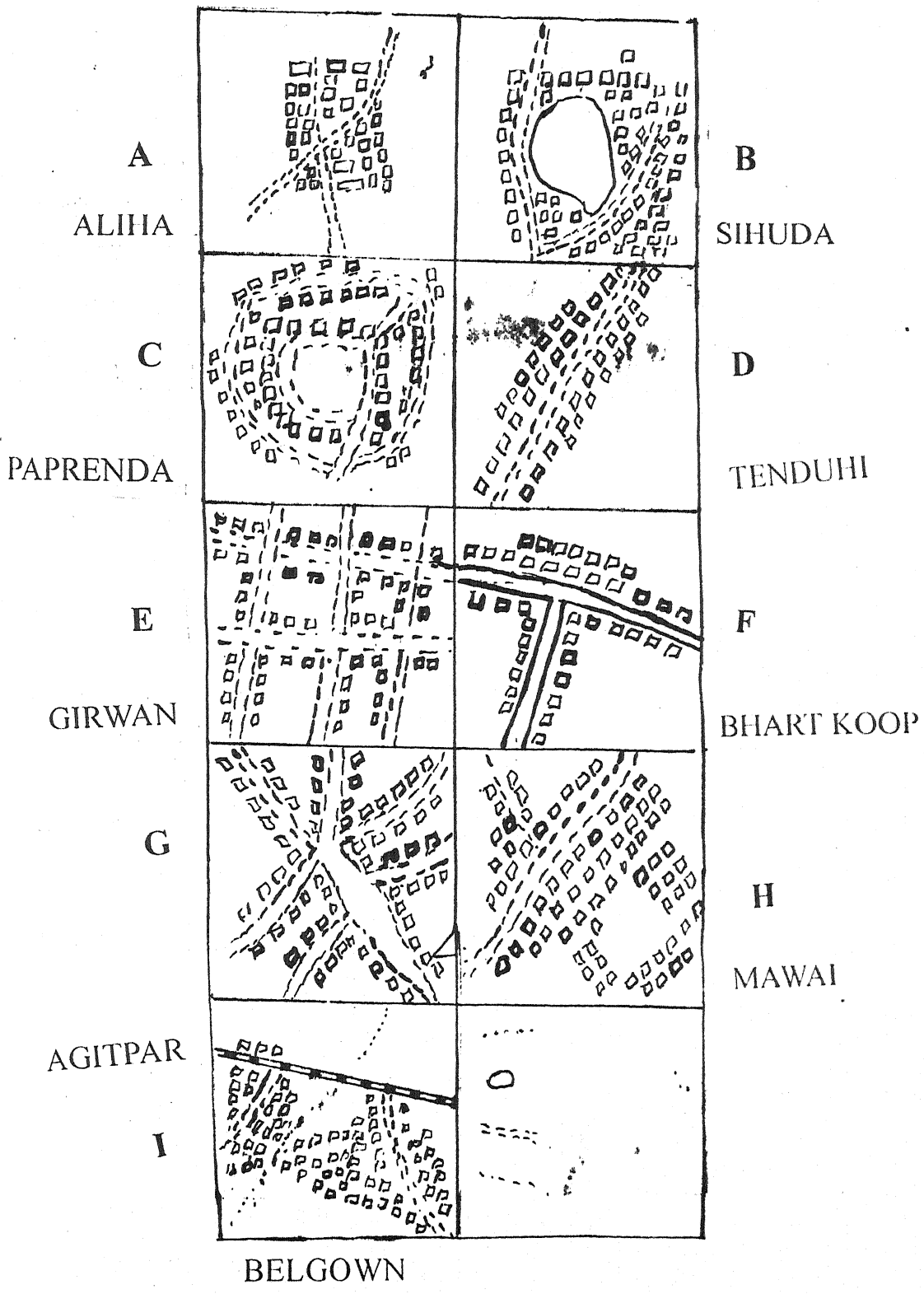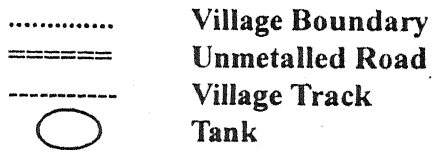
6. **एल तथा टी आकार प्रतिरूप-** ग्राम बस्तियों में कुछ अधिवास ऐसे भी मिलते है जो न तो वर्गाकार होते है और न ही आयताकार । वरन् दो आयतों के मेल का परिणाम होते हैं । इन के सममिलन से निर्मित प्रतिरूप में एल आकार के गांव अधिक सर्वभौमिक हैं । वास्तव में एल प्रतिरूप का उद्भव ही दो आयताकार खण्डों के समकोण पर मिलने से है । ऐसे अधिवासों का विकास उन स्थलों पर होता है जहाँ पर दो सड़कें या रास्ते आकर एक दूसरे से मिलकर खत्म हो जाते हैं तब इन दोनों सड़कों के किनारे बसी हुई बस्ती एल आकार वाली दिखाई पड़ती हैं । लेकिन यदि एक सड़क दूसरी सीधी जाती हुई सड़क में मिलकर खत्म होती है या कोई कच्चा या पक्का मार्ग एक दूसरे से लम्बवत मिलते हैं तब केवल एक ही रास्ता अन्य दिशा में जाता हैं । इनके किनारे बसी हुई बस्ती टी आकार में दिखायी पड़ती है । ऐसी बस्तियां प्रायः स्थल कारक की उपज होती हैं । स्थानीय प्रतिरूप के अनुसार एल एवं टी अंक्षरो की लघुतम जिह्वा बस्ती के नये विकास को प्रदर्शित करती है । यह विकास बस्ती के नये विकास अथवा नये प्रवासियों के कारण होता हैं । ओरन, भरतकूप, शिवरामपुर, भौरी, व खोहीं (चित्र संख्या- 5.2एफ) हैं ।

7. **तारा प्रतिरूप-** इस प्रकार के ग्राम अधिवास प्रारम्भ में आरीय या त्रिज्या के आकार के होते हैं लेकिन बाद में अधिवास के विकास होने पर यह केन्द्र से बाहर की ओर जाने वाले विभिन्न मार्गो के सहारे-सहारे बढ़ते जाते हैं । अध्ययन क्षेत्र में ऐसे ग्राम बिसण्डा, फतेहगंज (चित्र संख्या- 5.2जी) हैं ।

8. **अनियमिति या अनाकार प्रतिरूप-** अध्ययन क्षेत्र में यह प्रतिरूप सामान्यतया अधिकांश भागों में देखने को मिलता है । इसमें अनियोजित व अनियमित रूप से मकानों का बसाव होता है । वस्तुतः इस प्रकार का ग्राम विभिन्न प्रकार के मुहल्लों में विभाजित होता हैं और इन समस्त मुहल्लों को मिलाकर किसी निश्चित प्रतिरूप का निर्माण नहीं हो पाता । ऐसा प्रतीत होता है कि भूतकाल में विभिन्न पुरवों का निर्माण जाति व्यवस्था के अनुसार हुआ होगा ।धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ने पर पुरवों के आकार में वृद्धि हो जाने से यह अनाकार स्वरूप आज सामने आया है। अध्ययन क्षेत्र में इस प्रकार के गांव मवई, हरदौली, कपसेठी, तुर्रा व खोही आदि (चित्र संख्या- 5.2एच) है ।

9. दो केन्द्रक प्रतिरूप- जब दो ग्राम अपनी सीमा के किनारे एक दूसरे से लगे हुए विकसित होते हैं तो वह दोनों ग्राम एक ग्राम की तरह दिखायी पड़ते हैं जिन्हें दो केन्द्रक प्रतिरूप कहा जा सकता है ।ऐसे दोनों ग्राम एक दूसरे के पास विकसित होते हैं तथा विकसित होते हुए अपनी अधिकतम सीमा पर पहुंच कर फिर एक दूसरे की भुजाओं के समानान्तर बढ़कर पुंज स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं (ब्रून्स, 1962) । इस तरह के ग्रामों के विकास का कारण बाजार स्थल का आकर्षण, सड़क की मध यस्थता या नये रेलवे स्टेशन का लाभ आदि हैं ।इसके अलावा बड़े तालाब के किनारे पर बसे हुए दो ग्रामों के कारण भी इस प्रतिरूप की उत्पत्ति होती है । अध्ययन क्षेत्र में ऐसे ग्राम अजितपारा-बिलगांव, मुरवाँ-हुसैनपुर, गड़ौला-गलौली आदि हैं जिनकी बस्तियां लगभग एक दूसरे से मिल चुकी (चित्र संख्या- 5.2आई) हैं ।

मात्रात्मक उपागम्- भौतिक-सांस्कृतिक दशाओं की विभिन्नताओं के कारण किसी क्षेत्र को ज्यामितीय आकृति में बांधना आसान कार्य नहीं है । पैकिंग सिद्धान्त दक्षता का माप दो रूपों में करता है ।

1. किसी भूभाग के मध्य केन्द्र से बाह्य स्थिति भाग की दूरी गति की दक्षता द्वारा मापित होती हैं ।
2. किसी भूभाग के परिमाप की लम्बाई द्वारा मापित सीमाओं की क्षमता (हैगेट, 1972)।

इसमें दूसरी मापन विधि अधिक महत्वपूर्ण है क्योकि निर्णय एवं संचालन ग्राम से धनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं ।किसी काल में किसी एक बिन्दु पर परिबृद्ध क्षेत्र के तीन ज्यामितीये गुण होते हैं । 1- क्षेत्र; 2- आकृति; 3- सम्बद्धता । जहाँ कोई सामान्य सम्बन्धित आकृति बहुभुज के किसी भुजा की संख्या, जिसकी भुजायें सम किन्तु परिवर्ती लम्बाई की हैं, से सम्मिलित किया जा सकता है । लेकिन इस प्रक्रिया के कारण बहुभुज की नियमितता अव्यवस्थित हो जायेगी । वृत्त पार्सो एवं उर्ध्वों की अनन्त संख्या के कारण सर्वाधिक संहत आक्रति है ।अतः यह नियमित बहुभुजों के लिये सर्वाधिक लाभप्रद है । किसी क्षेत्र को वृत से सम्बद्ध करने पर यह समस्या पैदा होती है कि वृत अधिकांशतः क्षेत्र को या तो असेवित छोड़ देते हैं अथवा अति ब्यापन कर लेते हैं । इस समस्या को समाप्त करने के लिये किसी क्षेत्र में संचालन न्यून करने की दृष्टि से तीन सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं ।

1- नियमित त्रिभुज; 2- नियमित वर्ग; 3-नियमित षटभुज(चित्र संख्या-5.3ए व बी)।

इनमें षट्भुज असेवित क्षेत्रों की अनुपस्थिति, संचालन तथा दूरी न्यूनतमीकरण के सम्बन्ध में वृत के सभी लाभो से युक्त है ।

आकार मापन - प्रारम्भिक अध्ययन में त्रिभुजात्मक सुझाव पर आधारित अधिवासीय पद्धति षट्कोणीय माडल की ओर संकेत करती है, जैसा कि क्रिष्टालर (1966) व लॉस (1954) ने अधिवासों की संख्या, वितरण एवं दूरी की व्याख्या करने के लिए प्रयोग किया है । सर्वप्रथम थाम्पसन (1917) ने बस्तियों की आकृति विश्लेषण हेतु मात्रात्मक पद्धति का प्रयोग किया जिसे बाद में मिलर (1953) ने अपवाह बेसिन के विश्लेषण के लिये अपनाया एवं विकसित किया ।इनके द्वारा प्रस्तुत सूत्र इस प्रकार है :

सूत्र $= S = A_b / A_c$

जहाँ, S = अपवाह बेसिन का आकार;

A_b = अपवाह बेसिन का क्षेत्रफल;

A_c = वृत्त की परिधि ।

ब्राजील में हेगेट (1965) ने भी इसी सूत्र को आकृति विश्लेषण हेतु अपनाया । इन्होंने आकृति सूचकांक S को ग्राम के कुल क्षेत्रफल एवं वृत्त के क्षेत्रफल के साथ व्यास (दीर्घतम् अक्ष) का अनुपात माना ।

थाम्पसन द्वारा विकसित एवं हेगेट द्वारा अंगीकार सूत्र की व्याख्या निम्न प्रकार हैं-

$$\text{सूत्र } S = \frac{\text{क्षेत्रफल (किसी ग्राम का)}}{\text{क्षेत्रफल वृत्त का}} = \frac{A}{\pi r^2}$$

जहाँ, S = आकृति सूचकांक; A = गाँव का क्षेत्रफल;

πr^2 = वृत्त का क्षेत्रफल ।

इस प्रकार क्षेत्र और वृत का सहसम्बन्ध $= A / \pi r^2$ या $\frac{A}{\pi r^2}$

वृत्त की त्रिज्या R = व्यास/2 = $L/2$

इसलिये, $R^2 = L/2 \times L/2 = L^2/4$

$$S \quad \frac{A}{\pi L^2/4} \; ; \quad S = \frac{4A}{\pi L^2} \; ; \quad S = \frac{4A \times 7}{22 \times L^2} \; ;$$

$$= \; = 3.14159 \; ; \quad S = \frac{1.27A}{L^2} \; ।$$

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हैं कि मात्रात्मक उपागम के दो लक्षण प्रमुख हैं ।

1. गांव की आकृति सूचकांक का मान
2. गांव की सम्पर्क संख्याओं की आवृत्ति ।

बाँदा जनपद के 142 ग्रामों का विकासखण्डवार नमूनें के तौर पर आकृति सूचकांक हेगेट (1965) के सूत्र को आधार मानकर निकाला गया हैं जो सम्पूर्ण ग्रामों का 11 प्रतिशत हैं और उसे (तालिका संख्या- 5.3) एवं (चित्र संख्या- 5.3सी) में प्रदर्शित किया गया हैं ।

तालिका संख्या- 5.3

बाँदा जनपद में अधिवासों का आकृति सूचकांक, 1997

ग्राम	आकृति सूचकांक	ग्राम	आकृति सूचकांक
जसपुरा	0.42	पिपरहरी	0.49
रामपुर	0.49	खपटिहा कला	0.46
चन्दवारा	0.72	चिल्ला	0.48
गडरिया	0.53	लौमर	0.49
गौरीकला	0.39	जौहरपुर	0.57
अमारा	0.60	बेंदा	0.45
सिन्धनकला	0.46	भुजरख	0.57
पिपरोदर	0.59	मूगुंस	0.60
सबहदा	0.77	पपरेन्दा	0.73
गाजीपुर	0.57	धौसड़	0.56
नरौली	0.62	लामा	0.57
पैलानी	0.87	पचनेही	0.53
कनवारा	0.44	बन्थरी	0.51
गुरेह	0.75	छिलोलर	0.45
जौरही	0.49	जामू	0.47
जारी	0.53	परसौली	0.70
हथौड़ा	0.48	बेर्राव	0.50
भरखरी	0.56	बुढ़ौली	0.54
बसहरी	0.43	कैरी	0.44
मोहनपुरवा	0.47	कोर्रही	0.78
जखौरा	0.50	ओरन	0.59
पल्हरी	0.73	बल्लान	0.65
अलिहा	0.55	पुनाहुर	0.94

ग्राम	आकृति सूचकांक	ग्राम	आकृति सूचकांक
मुरवल	0.49	सिकलांढ़ी	0.24
बचेटा	0.58	चन्द्रायल	0.75
भभुआ	0.34	कुसमा	0.35
ब्योंजा	0.61	गड़ाव	0.27
औगासी	0.38	अमवां	0.29
समगरा	0.59	तिन्दुरा	0.82
मर्का	0.66	सहेवा	0.57
अछाह	0.58	बेलगांव	0.43
सांतर	0.67	छिबांव	0.50
कुचेन्दू	0.85	बनसखा	0.58
बीरा	0.44	रसिन	0.57
इंगुवा	0.46	रौली कल्यानपुर	0.49
नन्दना	0.40	सरधुवा	0.63
तेन्दुही	0.54	देवारी	0.47
खम्भौरा	0.52	रायपुर	0.25
बुढ़ौली	0.54	बछरन	0.43
थनैल	0.72	पचोखर	0.26
महुवा	0.61	कोहारी	0.35
बड़ोखर बुजुर्ग	0.50	परसौंजा	0.54
पैगम्बरपुर	0.38	चिल्लामाफी	0.48
जरर	0.41	कंठीपुर	0.12
अकबरपुर	0.83	कसहाई	0.88
बांसी	0.46	पाही	0.33
गढा	0.50	सिद्धपुर	0.90
पुकारी	0.92	घुरेटनपुर	0.44
रनखेरा	0.28	शिवरामपुर	0.39
पोंगरी	0.96	भैसौंधा	0.17
पंचमपुर	0.44	बीरा चित्रकूट	0.20
पनगरा	0.70	कपसेठी	0.44
बहेरी	0.54	खोही	0.50
बरद्वारा	0.85	ऐचवारा	0.32
बसन्तपुर	0.78	इटवा डुडैला	0.70
रामपुर	0.35	चितघटा	0.24
अगरहुड़ा	0.36	बराह माफी	0.34
जरिहा	0.46	नागर	0.51

ग्राम	आकृति सूचकांक	ग्राम	आकृति सूचकांक
सरहट	0.66	बिल्लौर	074
उमरी	0.57	जोरवारा	0.54
डभवार	0.44	तारी	0.69
कुबरी	0.32	खोहर	062
बठौता-ममनिया	0.59	परदवा	0.86
कल्याणपुर	0.98	गठवा	0.61
ठर्री	0.15	औझर	0.59
सिकरी	0.56	खरगडाह	0.33
अमवां	0.47	मनका छितैनी	0.59
रूपैली	0.47	कुटफवामाफी	0.48
मझंगवा	0.64	पचोखर	0.55
पहाड़ी	0.35	जमिरा	0.67
रामपुर	0.67	कूल मजरा	0.48

स्रोत : हेगेट के सूत्र की गणना के आधार पर ।

उपरोक्त गणना में वृत्त का सूचकांक मान 1.0 आता हैं जो वृत्तीय आकृति का द्योतक है । इसके अतिरिक्त षट्भुज का सूचकांक 0.83, आयत का सूचकांक 0.64 तथा त्रिभुज का सूचकांक 0.42 माना गया हैं । लेकिन कुछ विद्वानों ने त्रिभुज के सूचकांक मान को 0.55 माना हैं ।

आकृति विश्लेषण का दूसरा अभिलक्षण किसी एक क्षेत्र तथा उसके समीप स्थिति क्षेत्रों की सम्पर्क संख्या में सन्निहित हैं । नियमित षट्भुज तन्त्र की सम्पर्क संख्या 6, चतुर्भुज में 4 तथा त्रिभुज में तीन होगी । नमूने के तौर पर अध्ययन क्षेत्र के 142 ग्रामों की सम्पर्क संख्या की गणना तालिका संख्या- 5.4 में की गयी हैं और उसके परिणाम को चित्र संख्या- 5.3डी में दर्शाया गया हैं ।

तालिका संख्या- 5.4

सम्पर्क संख्याओं की आकृति

ग्राम	आकृति सूचकांक	ग्राम	आकृति सूचकांक
जसपुरा	5	पचनेही	8
रामपुर	9	कनवारा	6
चन्दवारा	5	गुरेह	6
गड़रिया	5	जौरही	7
गौरीकलॉ	7	जारी	7
अमारा	5	हथौड़ा	4
सिन्धनकलॉ	8	भरखरी	6

ग्राम	आकृति सूचकांक	ग्राम	आकृति सूचकांक
पिपरोदर	5	बसहरी	4
सबहदा	4	मोहनपुरवा	6
गाजीपुर	4	जखौरा	3
नरौली	5	पल्हरी	5
पैलानी	5	अलिहा	7
पिपरहरी	6	मुरवल	11
खपटिहा कलॉ	8	बघेटा	5
चिल्ला	4	भभुआ	5
लौमर	4	ब्योंजा	5
जौहरपुर	5	औगासी	7
बेंदा	5	समगरा	5
भुजरख	7	मर्का	5
मूगुंस	9	अछाह	4
पपरेन्दा	8	सांतर	5
धौसड़	7	कुचेन्दू	6
लामा	6	बीरा	7
इंगुवा	8	नन्दना	6
बन्थरी	6	तेन्दुही	3
छिलोलर	9	खम्भौरा	8
जामू	7	बुढ़ौली	4
परसौली	7	थनैल	5
बेर्राव	6	महुवा	9
बुढ़ौली	4	बड़ोखर बुजुर्ग	11
कैरी	9	पैगम्बरपुर	5
कोर्रही	6	जरर	12
ओरन	8	अकबरपुर	5
बल्लान	3	बांसी	7
पुनाहुर	6	गढा	6
सिकलोढ़ी	8	पुकारी	5
चन्द्रायल	4	रनखेरा	5
कुसमा	4	पोंगरी	4
गड़ाव	7	पंचमपुर	6
अमवां	6	पनगरा	7
तेन्दुरा	4	बहेरी	7
सहेवा	6	बरद्वारा	4
बेलगांव	7	बसन्तपुर	3
छिबांव	6	रामपुर	4
बनसखा	5	अगरहुड़ा	5
रसिन	13	जरिहा	4

ग्राम	आकृति सूचकांक	ग्राम	आकृति सूचकांक
रौली कल्यानपुर	8	सरधुवा	8
देवारी	4	डभवार	4
रायपुर	6	कुबरी	3
बछरन	11	बठौता-ममनिया	3
पचोखर	4	कल्याणपुर	5
कोहारी	4	ठर्री	6
परसौंजा	11	मझंगवा	7
चिल्लामाफी	7	सिकरी	5
कंठीपुर	4	अमवां	5
कसहाई	7	रूपैली	7
पाही	6	पहाड़ी	5
सिद्धपुर	3	रामपुर	5
घुरेटनपुर	5	बिल्लौर	4
शिवरामपुर	7	जोरवारा	6
भैसौंधा	5	खोहर	5
बीरा	3	परदवा	8
कपसेठी	6	गठवा	7
खोही	6	औझर	4
ऐंचवारा	9	खरगडाह	7
इटवा डुडैला	6	मनका छितैनी	9
चितघटा	3	कुटफवामाफी	6
बराह माफी	7	पचोखर	4
नागर	3	जमिरा	5
सरहट	6	कूल मजरा	5
उमरी	6	तारी	6

स्रोत : गांवों के सम्पर्क सूत्र की गणना पर आधारित ।

अध्ययन क्षेत्र में सम्पर्क संख्याओं की आवृत्ति 3 से 13 तक है । जिसमें 142 ग्रामों में 67 ग्राम (57.18प्रतिशत) का सम्पर्क सूचकांक 3 से 5 तक है तथा समस्त 142 ग्रामों का औसत सम्पर्क सूचकांक 5.86 है जो कि षट्भुजीय आकृति की आदर्श दशा की ओर इंगित करता है । अतः अध्ययन क्षेत्र षट्भुजीय नियोजन के लिये उपयुक्त है जिसे तालिका संख्या- 5.5 क व ख में दर्शाया गया है ।

तालिका संख्या- 5.5 क व ख के विश्लेषण से स्पष्ट है कि .40 से .60 आकृति सूचकांक के गांवों की संख्या सर्वाधिक (52.12 प्रतिशत) तथा 5 से 6 सम्पर्क सूचकांक वाले ग्रांमों की संख्या सर्वाधिक (43.67 प्रतिशत) है जबकि अन्य ग्रांमों का आकृति सूचकांक एवं सम्पर्क सूचकांक कम है ।

तालिका संख्या- 5.5 (क)

आकृति सूचकांक	ग्रामों की आवृत्ति	प्रतिशत
0-.10	0	0.00
.10-.20	3	2.11
.20-.30	8	5.63
.30-.40	15	10.56
.40-.50	35	24.65
.50-.60	39	27.47
.60-.70	17	11.84
.70-.80	13	9.16
.80-.90	7	4.93
.90-1.0	5	3.52
कुल	142	100.00

स्रोत : तालिका संख्या 5.3 की गणना पर आधारित व संयोजित ।

तालिका संख्या- 5.5 (ख)

सम्पर्क सूचकांक	ग्रामों की आवृत्ति	प्रतिशत
3	10	7.04
4	24	16.90
5	33	23.24
6	29	20.43
7	23	16.20
8	10	7.04
9	7	4.93
10	0	0.00
11	4	2.82
12	1	0.70
13	1	0.70
कुल	142	100.00

स्रोत : तालिका संख्या 5.4 की गणना पर आधारित व संयोजित ।

मानव भूमि अनुपात एवं जातिक्रम विन्यास- भूस्वामित्व न केवल जोतों के आकार, खेत प्रतिरूप, भूमि उपयोग, रीतियों, शस्यक्रम गहनता आदि को प्रभावित करता हैं अपितु किसानों की सामाजिक-आर्थिक दशा के मूल्यांकन और नवीन योजना के फलस्वरूप हो रहे परिवर्तनों में एक महत्वपूर्ण प्रभावी साधन है (मिश्र, 1994)। सामान्यतया जजमानी प्रथा में स्थानीय नेतृत्व एवं ग्राम नियन्त्रण भूमि स्वामित्व एवं जाति क्रमानुसार पाया जाता था तथा जिसका आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाविता में

घनिष्ठ सम्बन्ध होता था ।यही कारण है कि ग्रामीण व्यवस्था के संचालन में कोई अड़चन नही थी, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संख्या निहित प्रभाविता के फलस्वरूप ग्राम्य बस्तियां ग्राम प्रधान एवं पंचायत संरपच के अधिकार क्षेत्र में आ गये । ग्रामीण व्यवस्था के संचालन में मध्यम व निम्न वर्ग का प्रभुत्व बढ़ने लगा। अतः विविध प्रकार की अड़चने आना स्वाभाविक ही हैं (मिश्र, 1994) । इसके अलावा उन ग्रामों में जहाँ आर्थिक-सामाजिक प्रभाविता और संख्या निहित प्रभाविता साथ-साथ मिलती है, वहाँ ग्रामीण व्यवस्था के संचालन में कोई कठिनाई नहीं पायी जाती है ।

चूंकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है । अतः भूस्वामित्व के आधार पर स्थानिक प्रभुत्व निर्भर करता है । इस प्रकार किसी व्यक्ति या जाति का विकास भूस्वामित्व के आधार पर निश्चित किया जाता है (माण्डेलवाम, 1970)। मानव भूमि अनुपात एवं जातिक्रम विन्यास के परीक्षण हेतु ग्राम सैमरा का चयन किया गया है ।

ग्राम सैमरा : मानव भूमि अनुपात एवं जातिक्रम विन्यास

ग्राम सैमरा बांदा-फतेहपुर राजमार्ग पर बांदा से 23कि0मी0 की दूरी पर सड़क से लगभग 3 कि0मी0 उत्तर दिशा में स्थित है । यहाँ कुर्मी एवं हरिजन जाति की बहुल्यता है । जिनका प्रतिशत क्रमशः 50 व 19 है । आवासीय गृहों में इनका प्रतिशत क्रमशः 52 व 21 है । कुर्मी जाति के लोगों का सकल कृषि भूमि के 77प्रतिशत भाग पर स्वामित्व है । दूसरा स्थान ब्राह्मणों का है जिनका भूस्वामित्व 10प्रतिशत कृषि भूमि पर है (चित्र संख्या-5.4)। तेली जाति के लोगों को 3.7प्रतिशत, दर्जी 3प्रतिशत, चमार 1.8 प्रतिशत, कोरी 1.7 प्रतिशत, लोध 1.6 प्रतिशत, कुम्हार 1.3 प्रतिशत तथा बनिया 0.9 प्रतिशत भाग पर है । जाति के अनुसार प्रति व्यक्ति भूस्वामित्व में ब्राह्मण, कुर्मी, लोध, तेली, दर्जी, बनिया जाति के लोगों का स्वामित्व क्रमशः 1.74, 1.31, 1.09, 0.86, 0.84, 0.77 एकड़ है।

सामाजिक आकारिकी (Social Morphology)

सामाजिक आकारिकी के अन्तर्गत जाति विन्यास व्यवस्था एवं अन्य सामाजिक विशेषताओं पर विचार किया जाता है। उसमें गांव विभिन्न मुहल्ला या टोला, चौड़ी या संकरी गलियों से एक-दूसरे से पृथक होते हैं । प्रत्येक टोला एक जाति के विभिन्न परिवारों की आवासीय इकाई होता है । संहत गांव में मिश्रित आकारिकी पद्धति होती हैं जबकि पल्ली युक्त ग्रामों में आकारिकी सामान्य होती है जिसमें भवन रेखिक आकार में एक रास्ते के सहारे स्थित होते हैं । मिश्रित संरचना में रास्ते चौड़े तथा गलियां सकरी व जालीदार प्रतिरूपयुक्त होती हैं ।

VILLAGE Saimera , 1997
LAND OWNER SHIP BY CASTE
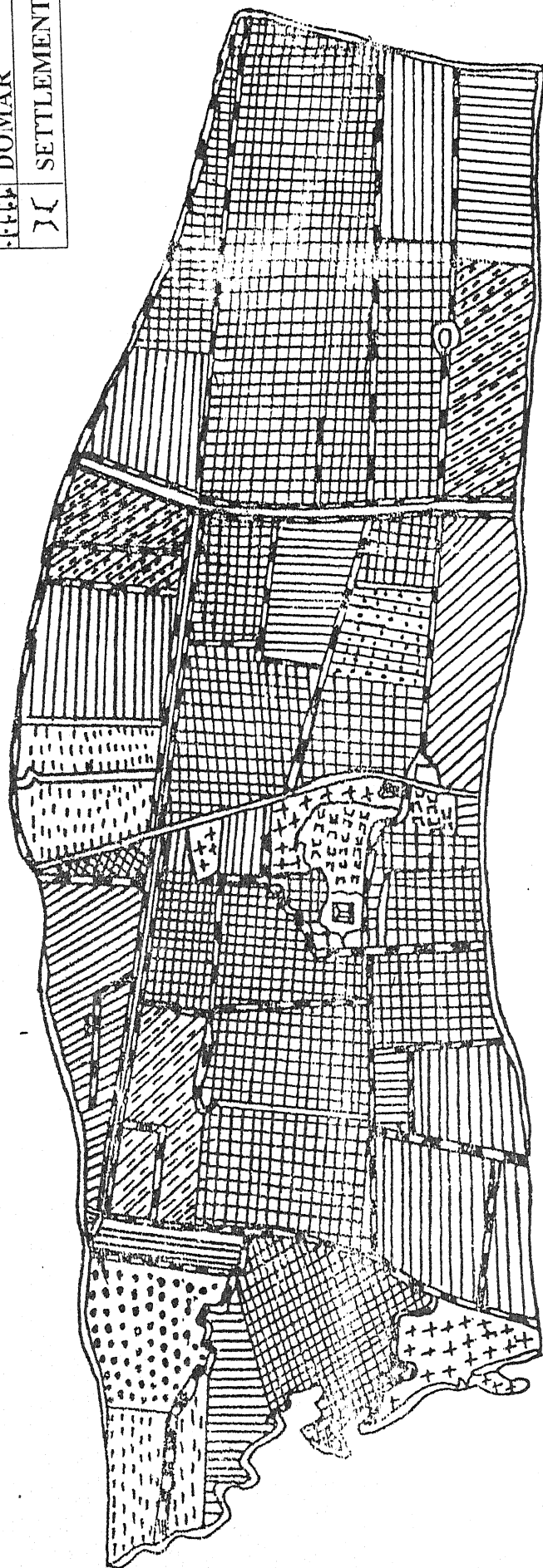
Fig. No. 5.4

सामाजिक पदानुक्रम के अन्तर्गत जाति विन्यास में प्रथम स्थान प्राप्त ब्राह्मण मन्दिर के पास या ग्राम के अलग भाग में रहते हैं । क्षत्रिय राजपूत भी ब्राह्मणों की तरह अलग संघ में आवासित होते है । वास्तव में जिन स्थानों पर जिन जातियों की संख्या एवं क्षमता अधिक होती है, वह ही केन्द्रीय भाग में निवास करती है तथा उसी का प्रभुत्व होता हैं । दूसरी जाति उसकी अनुसेवी होती है । अन्य सम्पर्की सेवाकर्मी सजातीय जातियां भी इन्हीं के पास अलग मुहल्लों में या मिश्रित रूप में निवास करती हैं लेकिन पिछड़ी जातियाँ मुख्य अधिवास से कुछ दूर पर अलग टोलों में निवास करती है । पिछड़ी जातियां जो कि भू-स्वामियों के खेतों और जानवरों की देखभाल में लगी रहती हैं । चूंकि मुख्य अधिवास के पास निवास करने पर इन्हे बेगार करना पड़ता है, अतः यह जातियां स्वयं मुख्य अधिवास से दूर रहना पसन्द करती हैं । जाति आधार पर निर्मित यह पुरवें या टोले, ठकुरान, बम्हनौटी, चमरौटी, कुम्हरउटा, कुर्मियान, आदि नामों से पुकारे जाते हैं । यह निर्विवाद है कि सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक स्तर एवं जातिक्रम विन्यास इत्यादि अध्ययन क्षेत्र के अधिवासीय पद्धति के सम्बन्ध में सही जानकारी प्रदान करने में सहायक हैं । आज कल अलग-अलग छोटे-छोटे पुरवें खत्म हो रहें है तथा बड़े ग्रामों में लोग विभिन्न जातियों के साथ-साथ रहना बुरा नहीं मानते। जमींदारी विनाश से सामाजिक पदानुक्रम के उच्च व निम्न जातियों के मध्य की खांई अब बहुत कम रह गयी हैं। परम्परा व्यवस्था के साथ जमींदारी पद्धति तथा सामाजिक एवं व्यावसायिक सेवाओं का विनिमय तथा आज्ञाकारिता ही अन्तर्ग्राम स्थानीय पद्धति के लिए उत्तरदायी हैं (सिंह, 1971) ।

ग्रामीण सड़के एवं रास्ते चाहे वह कच्चे हो या पक्के, ग्राम के दूसरे महत्वपूर्ण स्वरूप हैं । इनमें बैलगाड़ी का रास्ता, पगडन्डी आदि भी सम्मिलित हैं। मुख्य अधिवास अपने आश्रित पुरवों तथा चारों तरफ के अन्य अधिवासों से जुड़े होते हैं । वर्षा ऋतु में जब बैलगाड़ियां नही चल सकती, पगडन्डियाँ ही प्रमुख सम्पर्क मार्ग हेतु प्रयोग की जाती हैं । जनसंख्या वृद्धि, परिवार वृद्धि तथा आवासीय बटवारा होने से सघनता में वृद्धि होने से रास्ते व गलियों में अवैध कब्जा के परिणामस्वरूप रास्ते व गलियां संकरी होती जा रही हैं । यहाँ तक कि बैलगाड़ियां प्रवेश नहीं कर पाती । इसके अतिरिक्त नापदान का जल गलियों में अनियन्त्रित बहने से गलियां नालियों में परिवर्तित हो रही हैं । घर का आकार गृह स्वामी की आर्थिक स्थिति का दर्पण होता हैं । साधारणतया उच्च जातियों के लोग अपने घरों के सामने खुला मैदान रखते हैं । इसे ग्वाड़ा कहा जाता है । इनके मकान कच्चे, कच्चे-पक्के, व पक्के होते हैं जिन पर दो मंजिला मकान भी बने हो सकते हैं।

घर के मध्य में आंगन अवश्य होता हैं जबकि निम्न वर्गीय लोगों विशेषकर अनुसूचित जाति व पिछड़ी जाति के लोगों के मकान कच्चे, इकहरे होते हैं जिनमें आंगन का भी अभाव होता है । इनकी बस्तियां गन्दी व अस्वास्थ्यकर होती हैं तथा पास ही सुअरों के निवास की व्यवस्था होने के कारण जानवर व सुअर इन बस्तियों में स्वच्छन्दता से विचरण करते हैं । यहाँ तक देखा गया हैं कि डोमार व खटिक जाति, जो अध्ययन क्षेत्र में सुअर पालन व्यवसाय मे संलग्न हैं, इनके बर्तनों में यह जानवर पानी पीते हैं तथा घरों में गन्दगी फैलाते रहते हैं ।

कार्यात्मक दृष्टिकोण से कुछ अपवादों के साथ ग्रामीणों के निवास का प्राथमिक स्थान ग्राम है । कुछ ग्राम जो सड़क के किनारे स्थित होते हैं, आवासीय-व्यवसायिक स्थिति वाले भी होते हैं। इसके अलावा बहुत से ग्रामों में डाक व्यवस्था, स्वास्थ्य व्यवस्था, शिक्षा, प्रशासन आदि की सुविधाएं भी उपलब्ध होती हैं। प्रत्येक ग्राम के पूजा स्थल ग्राम सीमा के अन्तर्गत ही होतें है। जिनमें खेरेपति, देवीदाइन, मन्दिर, मस्जिद, शेवाला, प्रमुख हैं । यह पूजा स्थल ग्राम के चारों तरफ आवासीय क्षेत्र के बाहर भी फैले होते हैं ।

ग्राम अधिवासों का जाति अलगाव एवं विन्यासात्मक गुण मालूम करने के लिए अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न विशेषताओं वाले छः विकासखण्डों को चयनित कर क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर सूचनाएँ प्राप्त की गई तथा प्राप्त परिणामों को तालिका संख्या 5.6 ए, बी, सी, डी, इ, एफ में प्रदर्शित किया गया है ।

तालिका संख्या- 5.6

विकासखण्ड तिन्दवारी में जाति विन्यास एवं गृहों की स्थिति,1997

(A)

जाति का नाम	ग्राम में अधिवासीय स्थिति	गलियों की दशा	वास स्थान की कतार दिशा	मकान की ऊंचाई	सफाई या गन्दगी
ब्राम्हण	उत्तरी भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	ऊंचे	साफ
क्षत्रिय	अधिकतर भाग	चौड़ी	गोलाकार	ऊंचे	साफ
कुर्मी	पूर्वोत्तर भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	ऊंचे	साफ
अहीर	पश्चिम भाग	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	मध्यम	मध्यम साफ
तेली	दक्षिणी-पश्चिमी	सकरी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	गन्दी
चमार	पश्चिमी भाग	सकरी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
डुमार	दक्षिणी-पश्चिमी	सकरी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी
कुम्हार	पूर्वी भाग	सकरी	वर्गाकार	मध्यम	गन्दी

(B) विकासखण्ड कमासिन

जाति का नाम	ग्राम में अधिवासीय स्थिति	गलियों की दशा	वास स्थान की कतार दिशा	मकान की ऊंचाई	सफाई या गन्दगी
ब्राम्हण	अधिकतर भाग	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	ऊंचे	साफ
क्षत्रिय	उत्तर-पूरब भाग	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	ऊंचे	साफ
अहीर	पश्चिमी भाग	चौड़ी	वर्गाकार	ऊंचे	गन्दी
तेली	पूर्वी भाग	सकरी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	साफ
चमार	दक्षिणी भाग	सकरी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	गन्दी
डुमार	दक्षिणी भाग	सकरी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी
कुम्हार	पश्चिम भाग	तंग	वर्गाकार	नीचे	गन्दी
केवट	पूर्वी भाग	तंग	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी

(C) विकासखण्ड महुवा

जाति का नाम	ग्राम में अधिवासीय स्थिति	गलियों की दशा	वास स्थान की कतार दिशा	मकान की ऊंचाई	सफाई या गन्दगी
ब्राम्हण	उत्तर-पूरब भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	ऊंचे	साफ
क्षत्रिय	उत्तरी भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	ऊंचे	साफ
अहीर	पश्चिमी भाग	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	ऊंचे	साफ
तेली	उत्तर-पश्चिम	सकरी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	साफ
चमार	दक्षिणी भाग	चौड़ी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी
डुमार	दक्षिण-पश्चिम	सकरी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
कुम्हार	पश्चिम भाग	सकरी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी

(D) विकासखण्ड पहाड़ी

जाति का नाम	ग्राम में अधिवासीय स्थिति	गलियों की दशा	वास स्थान की कतार दिशा	मकान की ऊंचाई	सफाई या गन्दगी
ब्राम्हण	अधिकतर भाग	चौड़ी	वर्गाकार	ऊंचे	साफ
अहीर	पश्चिमी भाग	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	मध्यम	गन्दी
क्षत्रिय	उत्तर-पूरब भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	गन्दी
तेली	उत्तर-पूरब भाग	सकरी	पूरब-पश्चिम	नीचे	गन्दी
चमार	दक्षिणी भाग	तंग	पूरब-पश्चिम	नीचे	गन्दी
डुमार	दक्षिण-पश्चिम	सकरी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
कुम्हार	उत्तर-पूरब भाग	सकरी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी

(E) विकासखण्ड मानिकपुर

जाति का नाम	ग्राम में अधिवासीय स्थिति	गलियों की दशा	वास स्थान की कतार दिशा	मकान की ऊंचाई	सफाई या गन्दगी
कोल	अधिकतर भाग	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
ब्राह्मण	उत्तरी भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	ऊचे	साफ
क्षत्रिय	उत्तर-पूरब भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	साफ
अहीर	पश्चिमी भाग	चौड़ी	वर्गाकार	मध्यम	साफ
तेली	उत्तर-पश्चिम	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	नीचे	गन्दी
चमार	दक्षिणी भाग	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
डुमार	दक्षिणी भाग	चौड़ी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी
कुम्हार	पूर्वी भाग	चौड़ी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी

(F) विकासखण्ड रामनगर

जाति का नाम	ग्राम में अधिवासीय स्थिति	गलियों की दशा	वास स्थान की कतार दिशा	मकान की ऊंचाई	सफाई या गन्दगी
कोल	उत्तर-पश्चिम	चौड़ी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
ब्राम्हण	पूर्वी भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	साफ
क्षत्रिय	उत्तर-पश्चिम	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	साफ
अहीर	उत्तरी भाग	चौड़ी	पूरब-पश्चिम	मध्यम	साफ
तेली	पश्चिमी भाग	सकरी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
चमार	पश्चिमी भाग	सकरी	उत्तर-दक्षिण	नीचे	गन्दी
डुमार	दक्षिण-पश्चिम	सकरी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी
कुम्हार	उत्तर-पूरब भाग	सकरी	वर्गाकार	नीचे	गन्दी

स्रोत : ग्राम सर्वेक्षण के आधार पर ।

ग्राम सिमरिया कुशल की आकारिकी : एक प्रतीक अध्ययन

केन बागै दोआब में स्थित ग्राम सिमरिया कुशल 25°18'23'' उत्तरी अक्षांस एवं 80°35'45'' पूर्वी देशान्तर पर बांदा जिले की नरैनी तहसील में स्थित है । इसका कुल क्षेत्रफल 583.78 एकड़ तथा जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 2521 हैं जो 111 मकानों में आवासित है । इसके उत्तर में ग्राम आऊ, उत्तर-पूरब में ग्राम बरेहन्ड़ा, दक्षिण में ग्राम बसरेही तथा पश्चिम में ग्राम दिखितवारा चैक स्थित हैं । जनपद मुख्यालय से इसकी दूरी 35 कि0मी0 तथा कस्बा अतर्रा से इसकी दूरी 5 कि0मी0 हैं । अतर्रा बबेरू राजकीय मार्ग इस ग्राम की पश्चिमी सीमा से गुजरता है ।

इस ग्राम के आवासीय क्षेत्र के अन्तर्गत 10 हेक्टेयर भूमि में मुख्य अधिवास एवं प्रधान का पुरवा, चमारन पुरवा व अहीरन पुरवा स्थित हैं। प्रधान के पुरवा में चार मकान कुम्हारों के, एक मकान नाई का, ग्यारह मकान आरखों के, चार मकान काछियों के तथा बीस मकान चमारों के है । अहीरन पुरवा में छः मकान अहीरों के है तथा चमारों के पुरवा में ग्यारह मकान चमारों के हैं ।

आवासीय क्षेत्र के अन्तर्गत निम्न भूमि सम्मिलित हैं :

1. मानव आवास- इसके अन्तर्गत 60 आवास आते है जिनका प्रयोग आराम, निवास, भोजन, भण्डारण आदि कार्यो हेतु किया जाता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न सांस्कृतिक क्रियाकलाप भी इन्हीं गृहों में सम्पन्न होते हैं ।

2. पशु आवास- पशुओं के रखने, चारा, भूसा भण्डारण करने एवं कृषि यन्त्रों को रखने हेतु इनका प्रयोग किया जाता है । यह आवास अर्द्ध खुले एवं बड़े होते है । इनमें भूसा अटारी पर तथा जानवर प्राय: नीचे रखे जाते है । इनकी संख्या 50 है ।

3. पशु या मानव आवास सम्मिलित रूप से- स्थान की कमी के कारण कुछ लोग अपने आवास के ही कुछ भाग पर जानवरों और पशुओं को रखने का कार्य करते हैं व भूसा, चारा एकत्र करते हैं । इसके साथ-साथ इन्हीं आवासों में अपनी उत्पाद वस्तुओं का भण्डारण करते है, आराम करते हैं और निवास के साथ-साथ विभिन्न सांस्कृतिक क्रियाकलाप सम्पन्न करते हैं ।

4. फुटकर दुकानें- ग्रामवासियों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक छोटी-छोटी दुकाने हैं जिनमें किराने का सामान, सब्जी आदि बिकती हैं। इनकी संख्या 7 है ।

5. सार्वजनिक स्थल- इसके अन्तर्गत प्राइमरी पाठशाला, धार्मिक स्थल, पंचायत घर शामिल हैं ।

खाद के गड्ढे- इन गड्ढों का प्रयोग ग्रामवासी गोबर व कूड़ा डालने के लिए करते है । ये ग्राम के एक कोने में 0.40 एकड़ भूमि में बनाये गये हैं ।जल के गड्ढे- गांव के आन्तरिक भाग में सीमान्त की ओर दक्षिणी पूर्वी दिशा में कई जल के गड्ढे हैं जिनमें बरसाती जल, कुओं का जल, नापदानों का जल व नहर आदि का जल भरा रहता हैं तथा ग्राम के वातावरण को दूषित करता हैं इसके अन्तर्गत लगभग एक एकड़ भूमि आती है ।

तालाब- ग्राम मे तालाबों की संख्या अधिक है । सबसे बड़ा तालाब ग्राम के पूरब में स्थित है । कुल तालाबों की संख्या 6 है ।

नाला- अधिवास क्षेत्र से लगा हुआ बरसाती नाला दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूरब की ओर प्रवाहित होता है । वर्षा ऋतु में यह निकटवर्ती गृहों को क्षति पहुचाँता है तथा ग्राम के अधिवास विकास को नियन्त्रित, निर्देशित व दिशोन्मुख करता है ।

गृह संरचना- यहाँ पर तीन प्रकार के गृह मिलते हैं । कच्चे, कच्चे-पक्के मिश्रित, पक्के । इन गृहों निर्माण स्थानीय पदार्थो यथा- लकड़ी, मिट्टी आदि से किया जाता है । छतें अधिकतर खपरैल से बनाई जाती हैं । दीवारें बनाने के लिये मिट्टी के साथ पुआल (धान के डण्ठल) का प्रयोग किया जाता है । दीवारों की मोटाई लगभग 1 मीटर से अधिक व छत की ऊचाई जमीन से 6 या 7 फीट तक होती हैं । जल की व्यवस्था या पूर्ति कुओं तथा हैण्डपम्पों से होती है जो लगभग प्रत्येक सम्पन्न व्यक्तियों के गृहों में हैं । सम्पन्न व्यक्तियों के लिए शौचालयों की व्यवस्था भी लगभग प्रत्येक मवेशियों के रहने वाले बाड़े में है, जो कच्चे है । पक्के मकानों के लिए ईंट, पत्थर, लोहा, सीमेन्ट आदि बाहर नगरों से मंगाई जाती है । यह घर प्रमुखत: सम्पन्न लोगों के हैं । सभी प्रकार के मकानों की संख्या निम्नवत है । कच्चे मकान- 86, पक्के मकान- 15, मिश्रित कच्चे-पक्के मकान- 10 ।

गलियां व रास्ते- यातायात मार्ग के रूप में गलियारों का प्रयोग किया जाता है। ये गलियारे मनुष्यों, पशुओं, बैलगाड़ियों तथा ट्रैक्टर्स के आवागमन हेतु साफ, चौड़े हैं । आन्तरिक भाग में इनका आकार कुछ संकरा है, जो ग्राम्य अकारिकी को विशिष्ट रूप प्रदान करता है । प्रमुख चौड़ा रास्ता ग्राम के बाहर व तालाबों को जोड़ता हुआ जाता हैं । खेतों में जाने के लिए चौड़े चक रोड़ व सेक्टर रोड़ है, जो बिना मोड़युक्त हैं । सभी प्रकार के रास्ते कच्चे ही हैं जिनमे जानवरों व बैलगाड़ियों के निकलने से वर्षा ऋतु में या पानी बहने से कीचड़ हो जाता हैं।

जातीय संरचना- सामाजिक संरचना में जातीयता का महत्वपूर्ण स्थान है । इस ग्राम में ब्राह्मणों का प्रभुत्व हैं । कृषि भूमि व संख्यात्मक दोनों दृष्टियों से ब्राह्मण अन्य जातियों से बहुत आगे हैं । कुल 111 गृहों में ब्राह्मणों के 60 गृह हैं जिनका सम्पूर्ण गृहों में प्रतिशत 54.4 है । इसके पश्चात् चमार जाति का स्थान आता है । सम्पर्ण लोगों के गृहों की संख्या जाति अनुसार निम्नवत् हैं (तालिका संख्या- 5.7)।

तालिका संख्या- 5.7

सिमरिया कुशल : जाति के अनुसार गृहों की संख्या, 1997

जाति	गृहों की संख्या	जाति	गृहों की संख्या
ब्राह्मण	60	मेहतर	2
चमार	15	आरख	2
कुशवाहा	9	बढ़ई	5
नाई	1	कुम्हार	5
मुसलमान	2	अहीर	11
		योग कुल	111

स्रोत : ग्राम सर्वेक्षण के आधार पर ।

कार्यात्मक संरचना- यह ग्राम एक कृषि प्रधान ग्राम है । यहाँ की 85 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य, 5 प्रतिशत व्यवसाय, 2 प्रतिशत विभिन्न सेवाओं एवं 8 प्रतिशत अन्य कार्यो को सम्पादित करने में लगी हुई है ।

कृषि भूमि संरचना- इस ग्राम में चकबन्दी के पश्चात् खेतों का प्रतिरूप पूर्णतया आयताकार है ।ग्राम के पास के खेत छोटे-छोटे आकार के हैं तथा दूर जाने पर धीरे-धीरे इनका आकार बढ़ने लगता है (चित्र संख्या- 5.5)। अधिकतर बड़े खेत ग्राम के उत्तरी-पूर्वी कृषि क्षेत्र पर स्थित हैं ।

कणों की बनावट, उत्पादकता व मिट्टी के रंग के आधार पर यहाँ की मिट्टी चार प्रकार की है । (1) कछवारा, (2) गोयड़, (3) पडुवा, (4) काबर। इनमें पडुवा का क्षेत्रफल सबसे अधिक है । कुल खेतों की संख्या 325 हैं । कृषि भूमि का क्षेत्रफल 498.43 एकड़ है, जो कुल क्षेत्रफल का 85.43 प्रतिशत भाग है (तालिका संख्या-5.8)। शेष 14.57 प्रतिशत भूमि अनुत्पादक व अपर्याप्त है ।

तालिका संख्या- 5.8

भू-उपयोग प्रतिरूप, 1997

भू-उपयोग	क्षेत्रफल	प्रतिशत
कृषि योग्य भूमि	498.83	85.43
अकृष्य भूमि	50.14	8.58
कृषि योग्य बेकार भूमि	9.86	1.68
चारागाह	5.13	0.87
नहर	19.82	3.39
कुल भूमि	583.78	100.00

स्रोत : तहसील अतर्रा के माल अभिलेख (1997) के आधार पर ।
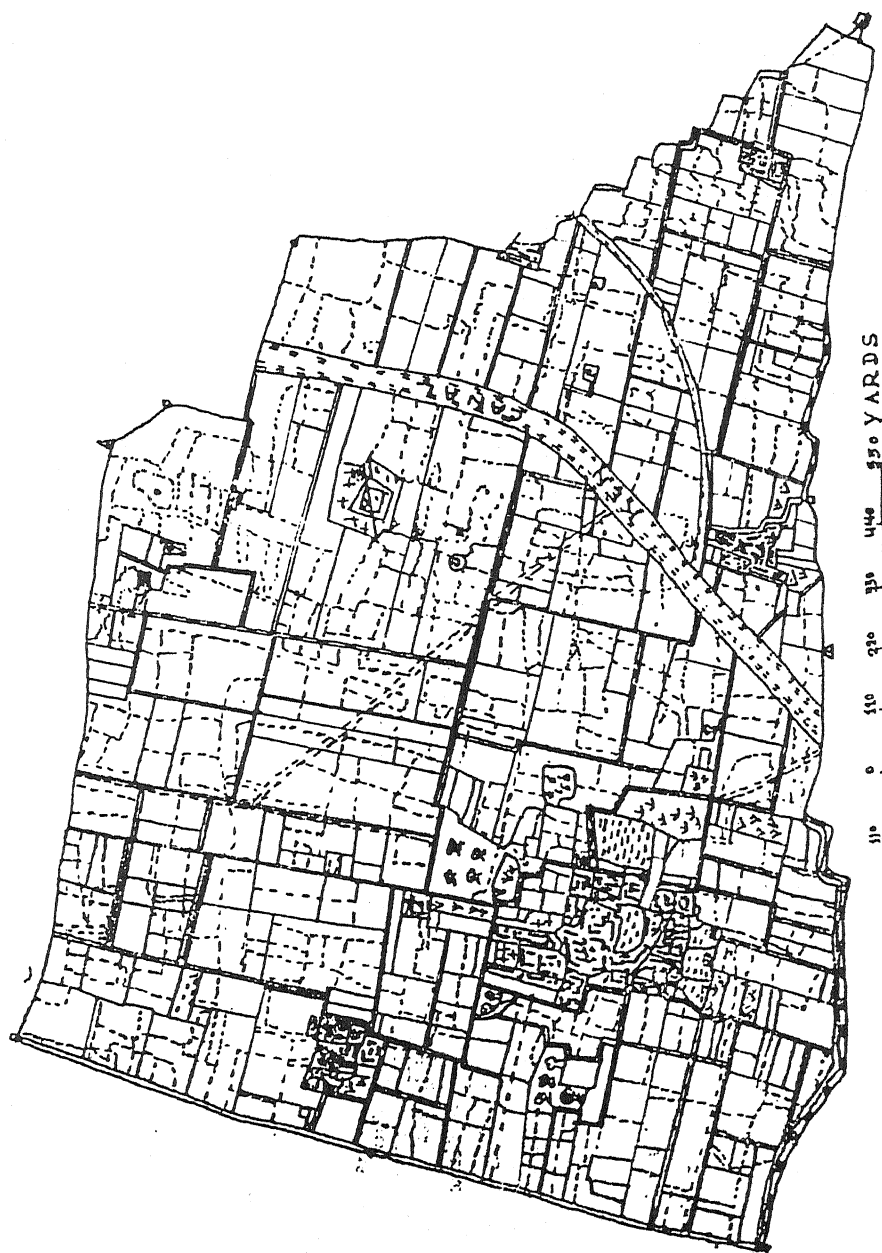
शस्य प्रतिरूप- कृषि उत्पादन में धान की फसल का प्रमुख स्थान है । अन्य उपजें गेहूँ, मसूर, ज्वार, गन्ना, अलसी, लाही, आदि है । जहाँ पर सिंचाई की व्यवस्था है, वहाँ दो फसलें उगाई जाती है । इस गांव का शस्य प्रतिरूप निम्नवत् है (तालिका संख्या- 5.9) ।

तालिका संख्या- 5.9

शस्य प्रतिरूप, 1997

फसल	सिंचित क्षेत्र	असिंचित क्षेत्र	योग
खरीफ	435	12	447
रवी	168	311	479
जायद	–	–	–
योग	603	323	926

स्रोत : तहसील अतर्रा के माल अभिलेख (1997) के आधार पर ।

तालिका संख्या 5.9 के परीक्षण से स्पष्ट है कि रबी की फसल सर्वाधिक क्षेत्रफल में बोयी जाती हैं । इसके अन्तर्गत अधिकांश क्षेत्र असिंचित है। गेहूँ, रबी का प्रमुख स्थान है । सिंचित क्षेत्र में खरीफ शस्य का प्रमुख स्थान है। इसके अन्तर्गत धान की खेती सर्वाधिक होती है ।

References

1. Ahmad, E. (1949) : Rural Settlements in the United Provinces of Agra and Outh, Ph. D. Thesis, London University.
2. Chisholm, M. (1968) : Rural Settlement and Landuse, Hutchinson University Press London, P. 45.
3. Cox, R.R. (1972) : Man, Location and Behaviour; An Introduction to Human Geography, John Willey, New York, P. 120.
4. Christaller, W. (1966) : Central Places in Southern Germany, Translated by Baskim, C.W. Englewood Cliffs, Prentice Hall, New Jersey.
5. Demongeon, A. (1939) : Une Casle de. 1. Habitat, Annals de Geographie. 42, PP. 225-252.
6. Dickinson, R.E. (1967) : The Socpe and Status of Urban Geography, P.12, in Mayer H.M. and Cohn, C.F. : Readings in Urban Geography, Allahabad.
7. Doxiadis, C.A. (1968) : Ekistics, An Introduction to the Science of Human Settlements (New York : Oxford Uni. Press), P. 222.

8. Finch, V.C. and Trewartha, G.T. (1946) : Elements of Geography : Physical and Cultural (New York, Mc Graw Hill), P. 553.

9. Haggett, P. (1965) : Locational Analysis in Human Geography, Adward Arnold, London, PP. 50-52.

10. Haggett. P. (1972) : Geography, A Mordern Synthisis (New York & London: Harper and Row Publication), P. 314.

11. Hall, R.B. (1931) : Some Rural Settlement Forms in Japan : Geographical Review 21(1), PP. 93-123.

12. Hudson, J.C. and Fowler, P.M. (1972) : The Concept of Pattern in Geography, in P.W. English et. al. (eds.) : Man, Space and Environment, Oxford University Press, New York, P. 546.

13. Losch, A. (1954) : The Economics of Location, New Haven.

14. Meitzen, A. (1895) : Siedlung und Agrarwesen und Ostgermanen, Barlin; W. Hertz der Keltan, Romer, Finnen und Slawen.

15. Miller, V.C. (1953) : A Quantitative Geomorphic Study of Drainage Basin Characteristics in the Clinch Mountain Area, Vergenia and Tennessee, New York, Columbia University, Department of Geology.

16. मिश्र, कृष्ण कुमार (1994) : अधिवास भूगोल, कुसुम प्रकाशन, अतर्रा, पृष्ठ-100-121।

17. Mukerjee, A.B. (1976) : Rural Settlement in Chandigarh Siwalik Hills (India), A Morphogenetic Analysis, Geografisha Annaler 58B, PP. 95-115.

18. Perpillou, A. V. (1977) : Human Geography, Longman Group Ltd. P. 437.

19. Singh, R.L. (1955) : Evolution of Settlement in the Middle Ganga Valley, N.G.J.I., 1, PP. 69-114.

20. Singh, K.N. (1972) : An Approch to the Study of the Morphology of the Indian Village, P. 203.

21. Thompson, D'Arey. (1917) : On Growth and Form, Cambridge Univ. Press, Revised in 1942.

अध्याय ६

ग्रामीण निवास स्थल

(RURAL DWELLINGS)

ग्रामीण निवास स्थल
(RURAL DWELLINGS)

पंचम अध्याय में गावों की आन्तरिक एवं बाह्य संरचना, आकृति विश्लेषण एवं आकारिकी के विभिन्न घटकों की विवेचना की गयी है जो सन्तुलित ग्रामीण विकास नियोजन के लिए अति उपयोगी है । इस अध्याय में निवास स्थल (घर) जोकि सांस्कृतिक भूदृश्यावली का एक महत्वपूर्ण प्राथमिक तत्व हैं, के विभिन्न पक्षों का परीक्षणात्मक अध्ययन किया गया है । किसी क्षेत्र के घरों को देखकर वातावरण एवं मानव के सहसम्बन्धों के सहज रूप को जाना जा सकता है । एक भौगोलिक तत्व के रूप में गृह के अन्तर्गत न केवल मानव वास, जिसमें साधारण झोपड़े से विशालकाय भवन तक शामिल हैं, को शामिल किया जाता है वरन् सभी मानवीय संरचनाओं को भी शामिल किया जाता है, जिसमें विद्यालय, कारखाने, अन्नागार, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर व भण्डारगृह आदि हैं (फिंच तथा ट्रीवार्था, 1946) । गृह मुख्यतः एक ऐसा तत्व होता है जो कि प्रदेश की भौतिक दशाओं और उसके निवासियों की संरक्षीयता को प्रगट करता है (हसटन, 1953) । आश्रय मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है और यह गृह आश्रय स्थल होते हैं । इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु मानव सांस्कृतिक वातावरण के सहारे भौतिक वातावरण के विभिन्न तत्वों, उपलब्ध पदार्थो का प्रयोग देशकाल परिस्थिति के अनरूप करता है, तथा अपनी रचनात्मक प्रतिभा से राजमहल, मन्दिर, मस्जिद, सरकारी भवन तथा अनेक प्रकार की भवन निर्माण कला को विकसित किया (करील एवं करील, 1972) । अतः यह आश्रय भूतकालिक सांस्कृतिक धरोहर और परम्परा का उत्तर जीवित अवशेष है (डिकिंसन, 1963) । इस प्रकार प्रत्येक आने वाली विकसित कला कुछ समय पश्चात् भूतकालिक ज्ञान परम्परा से जुड़कर पुनः भविष्य में भौतिक वातावरण के बन्धनों को शिथिल करती हुयी प्रतीत होती है । यह पैत्रिक धरोहर, प्रचलित रीति, कर्यात्मक आवश्यकता, असांस्कृतिक वातावरण एवं भूतकालिक सांस्कृतिक धरोहर के धनात्मक और ऋणात्मक पक्ष को परावर्तित करते है (निफेन, 1965)। इनकी ऐतिहासिक समीक्षा से प्रकट होता है कि यह ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान के प्राथमिक अभिलेख हैं (अमोस रेपोपोर्ट, 1969) । अधिवास भूगोल के सार्वभौमिक एवं प्राथमिक तत्व के रूप में गृह भूदृश्यावली के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को प्रतिबिम्बित करता हैं ।

आवास संकल्पना (Concept of Dwellings)

आदिम मानव गृहों से 20वीं सदी तक के मानव गृहों का विकास एक क्रमिक रूप से विभिन्न अवस्थाओं में हुआ है । किसी स्थान विशेष में यह क्रम एक क्रमान्तर से हुआ । विभिन्न स्थानों में या दो स्थान विशेष में इस विभिन्नता का कारण सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवास्था रही है । मानव अपने ज्ञान विवेक द्वारा प्राकृतिक सीमाओं में रहते हुए इनके बन्धनों को ढीला करने का प्रयास सदा ही करता रहा हैं । कहीं-कहीं पर यह सांस्कृतिक वातावरण के अन्य तत्व यथा- आर्थिक तत्व ने इस बन्धन को कड़ा कर दिया है, लेकिन इस प्रयास में मानव सदा विजयी रहा है, जिसका परिणाम है 20वीं सदी के अधिवास ।

गृहों का विकास ज्ञान व विवेक का विकास है, इसको विभिन्न अवस्थाओं में रखा जा सकता है ।

1. **प्रथम या आदिम अवस्था-** जब मानव भी एक जानवर सदृश था । बुद्धि का विकास नहीं हुआ था । उस समय मानव कन्दराओं, गुफाओं में निवास करता था । सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं सोच सका था । कभी-कभी जंगली जानवरों से भयभीत होकर पेड़ों में भी चढ़ जाता था । जहाँ पर दिन व रात बिता देता था। सरलता से डालों पर बैठने के लिए उसने उसी वृक्ष की डालों को काटकर एक मचान बनाया, जिसके निर्माण का दिशा निर्देश पक्षियों के घोसलों से मिला ।

2. **द्वितीय या प्राकृतिक अवस्था-** कुछ समय बाद मानव के मचान गृह जमीन पर उतर आये और जीवकोपार्जन के साधनों के पास ही यह बनते बिगड़ते रहे । यह अस्थायी बस्तियां घर, नदियों की घाटियों में जंगली क्षेत्रों को साफ करके बनाई जाती थी, फिर भी घर या बस्ती के पास के पेड़ों को नहीं काटा जाता था। आपसी लडाइयाँ होने लगी थी, अतः शत्रुओं से भय के कारण नदी के पास सघन पेड़ों के झुरमुटों के पास गृह बनाये जाते थे । इन्हें इनके दुश्मन रात में नहीं खोज पाते थे । ये गृह जमीन पर लकड़ियाँ गाड़कर बनाए जाते थे तथा उनकी छत पर घास-फूस डाल देते थे । इनकी ऊचाई 4 फीट तक ही होती थी । इनके चारो तरफ कटीली झाड़ियों की बाढ़ होती थी ।

3. **तृतीय या प्रथम सामाजिक अवस्था-** इस समय स्थान विशेष व कालावधि को देखकर गृहों में स्थिरता आने लगी थी । किसी भी निश्चित क्षेत्रफल में वृत का परिमाप सबसे कम होता है, अतः प्रथमतः गृह गोलाकार ही बने। किसी स्थान को घेरने का यह ही एक सहज व सुगम तरीका होता है ।

चूंकि जंगली जानवर, कीड़े-मकोड़े प्रारम्भिक गृहों की बाड़ों को फाड़कर या बीच से निकल आने लगे। अतः मानव ने दीवार को स्थानीय तत्वों यथा- मिट्टी या पत्थर के टुकड़ों को चारो तरफ से रखकर उसमे मिट्टी का लेप करके बनाने लगा । कभी-कभी उन झाड़ या लकड़ी की बाड़ों में ही मिट्टी लगा दी जाती थी जो सुखने पर बाड़ के सभी छेदों को बन्द कर देती थी । इस प्रकार धीरे-धीरे जन्तु गम्यता खत्म हो गयी, लेकिन छत घास की ही रहती थी ।

4. **चतुर्थ या द्वितीय सामाजिक अवस्था-** सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्थानिक तत्वों की विशेषता के अनुसार मानव ने गृहों की दीवारों व उसके आकार को व्यवस्थित रूप से बनाने लगा । सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों व बन्धनों तथा मान्यताओं के अनुसार गृह आकार में विकास अवश्यम्भावी हो गया था । पति-पत्नी सम्बन्ध, पिता-पुत्र सम्बन्ध, पर्दा प्रथा, सुरक्षा आदि के कारण वृत्ताकार गृह, दीर्घ वृत्ताकार या दीर्घ अण्डाकार स्वरूप में गृह बनने लगे, लेकिन छत निर्माण में परेशानी आने लगी, इसलिये इनके बीच-बीच पुनः दीवारे बनने लगीं । जिससे गृह का बाहरी आकार तो अण्डाकार या लम्बाकार रहा लेकिन आन्तरिक खण्ड या कमरे आयताकार होने लगे । वृहद् परिवार, दाम्पत्य एकता व दाम्पत्य सम्बन्धों में पर्दा होने के कारण इनका आकार बड़ा होता गया । इस समय तक मानव पशुपालक व कृषक बन चुका था । अतः भण्डार गृहों, पशुशालाओं की व्यवस्था भी इन्हीं गृहों में करने लगा । छतें अब मजबूत लकड़ी व वनस्पति तत्वों के सहयोग के अलावा खपरैल से भी निर्मित होने लगी थी ।

5. **पंचम या तृतीय सामाजिक अवस्था-** कार्यकलापों में स्थिरता आने के कारण गृहों के स्वरूप में भी स्थिरता आने लगी । अब मानव मिट्टी व पत्थर से मोटी व मजबूत दीवार बनाने लगा । घर में प्रकाश, हवा आदि की व्यवस्था व अधिक कब्जा हेतु आंगन का स्वरूप बढ़ने लगा तथा जानवरों व मनुष्यों के लिए सामर्थ्यानुसार अलग-अलग गृहों की व्यवस्था की जाने लगी । आर्थिक विभिन्नता अत्यधिक बढ़ने लगी जिससे आर्थिक संसाधनों से कमजोर व्यक्ति इन्हीं कच्चे मकानों को अपनाये रहा जबकि आर्थिक संसाधनों से धनी व्यक्ति तकनीक व ज्ञान के सहयोग से विभिन्न प्रकार के भवनों का निर्माण करवाया ।

ग्रामीण निवास स्थल को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Rural Dwellings)

मकानों की स्थिति, दिशा, आकार, प्रकार, विन्यास, आयोजन, इत्यादि पर सांस्कृतिक एवं भौतिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इनमें जलवायु (वर्षा, बाढ़,

पवनों की गति व दिशा, सूर्य का पथ), निर्माण सामग्री (मिट्टी, पत्थर, लकड़ी व अन्य वानस्पतिक तत्व), धरातलीय स्वरूप, सुरक्षा, संस्कार, धर्म, लोकरीतियां एवं परम्पराएँ प्रदेश के घरों को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं जबकि स्थान विशेष पर गृहों को सांस्कृतिक तत्व, जिसमें आर्थिक स्थिति प्रमुख होती है, अत्यधिक प्रभावित करती है । प्राकृतिक कारक सांस्कृतिकता से शिथिल पड़ते हैं जिस स्थान पर व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति कमजोर होती है, प्राकृतिक कारकों से मकान का स्वरूप नियन्त्रित होता है, जबकि सामाजिक-आर्थिक स्थिति के मजबूत एवं सुदृढ़ होने पर इन प्राकृतिक कारकों का बन्धन शिथिल हो जाता है और मानव अपनी आर्थिक-सामाजिक सम्भावनाओं को चुनने हेतु स्वतन्त्र होता है। इन्हीं आर्थिक विभिन्नताओं के कारण स्थान विशेष पर अट्टालिकायें एवं झोपड़ी पास-पास दिखाई पड़ती हैं। गृहों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं ।

1. जलवायु- गृह आकार-प्रकार जलवायु का प्रत्यक्ष दर्पण होता है जिसमें वह अपनी क्षमता व चातुर्य से आवश्यक संशोधन तो कर सकता है लेकिन उसको नकारने की शक्ति नहीं है । यह जलवायु की सीमायें कहीं-कहीं पर परम्परायें व मान्यतायें बन गई हैं जैसे अत्यधिक गर्मी और उमस से बचने के लिये बन्द पटउहा की व्यवस्था ।

सूर्यप्रकाश व तापक्रम का प्रभाव- मकानों की रूपरेखा पर सूर्यप्रकाश व तापक्रम का व्यापक प्रभाव पड़ता है । अत्यधिक धूप व गर्मी से बचने के लिये घर के पिछले हिस्से व अन्य हिस्सों में एक खण्ड ऊपर और बनाया जाता है, जो बन्द होता है । ऊपर की तपन एक खण्ड ऊपर होने के कारण नहीं आ पाती व इसी तरह जाड़ें में यह भाग ठंडी से बचाकर मानव को गर्मी प्रदान करते हैं । ग्रामवासी गर्मी में दिन को तथा सर्दी में रातों को इन पटउहा में लेटते हैं । इसके अतिरिक्त दक्षिण को प्रमुख दरवाजा बनाना अशुभ माना जाता है क्योंकि दक्षिण दरवाजे वाले मकान में सूर्य की किरणे कभी नहीं पहुच पाती । मकान में पूरब का दरवाजा सबसे शुभ माना जाता है ।

वर्षा- वर्षा एवं उसकी मात्रा भी मकानों के निर्माण, प्रक्रिया, आकार, प्रकार, को व्यापक रूप से प्रभावित करती है । अधिक वर्षा वाले भागों में मकान की छतें अधिक ढालू होती हैं, जबकि कम वर्षा वाले भागों में छतें लगभग सपाट होती हैं । अध्ययन क्षेत्र में वर्षा के कारण खपरैल अधिक ढालू तथा दो पलानीदार बनाये जाते हैं क्योंकि एक पलानी में अधिक वर्षा का जल खपरैल से बाहर नहीं बह पाता तथा खपरैल से अधिक होने पर घर के अन्दर रिसने लगता है ।

बाढ़ के क्षेत्रों में नीवें पूर्णतया पत्थर, कंकड़ आदि की मजबूत बनाई जाती हैं तथा दीवार अधिकतर पत्थर की या पक्की बनायी जाती है जिससे गृहों के डूब जाने पर भी गिरने की सम्भावना कम होती है । वर्षा का जल दीवारों के बगल में न बह पाये तथा उन्हें नुकसान न पहुँचा पाये, इसके लिये दीवार के साथ एक फुट मोटी पजेवों की राख या मिट्टी के ढेले रखे जाते हैं ।

पवनों की दिशा व वेग- अध्ययन क्षेत्र में साल के अधिकतम समय में पछुवा हवायें चलने के कारण पश्चिम की तरफ मुख्य दरवाजा होने वाले मकानों में अन्दर जाने पर मुख्य दरवाजा के बिल्कुल सामने दरवाजा नहीं होता वरन् दीवार होती है, जिससे हवा तेजी से अन्दर न पहुँच सके और धूल न भर सके । साथ-साथ छप्पर उलटने के भय से खप्पर भारी बनाया जाता है जो लकड़ी के ठांठ को दबाये रख सकें ।

मिट्टी का प्रभाव- गुण के आधार पर मिट्टियों का दीवारों में प्रयोग होता है, पीली मिट्टी, जो कि अत्यधिक घुलनशील होती है, दीवारें नहीं बनायी जाती हैं। मिट्टी के गुण के आधार पर दीवारों की मोटाई निर्भर करती है । कुछ स्थानों पर मिट्टियाँ बहुत भारी एवं बहुत कम घुलनशील हैं । ऐसे स्थानों में छप्परों की जगह लकड़ी बिछाकर ऊपर से लगभग 10इन्च मोटी मिट्टी बिछा दी जाती है तथा आवश्यकता पड़ने पर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी और डाल दी जाती है । ऐसी छते सपाट होती हैं ।

2. **निर्माण सामग्री एवं तकनीक-** विश्व के हर भाग में मानव हर समय राविन्सन क्रूसों की भाँति अपने आस-पास के सर्व सुलभ पदार्थो का उपयोग सबसे अधिक करता है (ब्रून्श, 1922)। गृह निर्माण हेतु मानव जिन पदार्थो का प्रयोग करता है, उनमे मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, घास-फूस प्रमुख हैं । यह समस्त भौतिक पदार्थ मानव अपने समीप ही प्राप्त करता है । इतना अवश्य है कि अपने ज्ञान व विवेक से वह इन पदार्थो का रूप परिवर्तन करके इन्हें अधिक उपयोगी व सुन्दर बना दे जैसे- केवल मिट्टी की दीवार बनाई जाये तो देखने में भद्दी लगेगी और यदि कच्ची ईट पहले बना ली जावें, बाद में दीवार बने- इससे दीवार सपाट बनेगी लेकिन मजबूत अधिक नहीं होगी । यदि कच्ची ईटों को पका करके उससे गृह बनाये जाय तो ऐसे गृह सुन्दर व मजबूत दोनों होते हैं ।

अध्ययन क्षेत्र में कच्चे, पक्के, कच्चे-पक्के व झोपड़ीयुक्त गृह पाये जाते हैं । कच्चे मकान अधिकतर मैदानी भागों में, जिनमें मिट्टी का ही दीवारों में प्रयोग होता है । इनकी निर्माण सामग्री मिट्टी-तालाब, पोखरों या उसी स्थान से

प्राप्त की जाती है । पक्के मकान भी इन्हीं मैदानी भागों में देखने को मिलते हैं। इन गृहों का मालिक आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ होता है । ऐसे मकानों के लिये ग्राम सीमा में ही मिट्टी प्राप्त करके उसकी कच्ची ईट बनवाकर पजेवा (ईट पकाने का ढंग) लगवाया जाता है । ऐसे मकानों मे प्रयुक्त सीमेन्ट व लोहा पड़ोस के बाजारों से खरीदा जाता है । कच्चे-पक्के मकान मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के पास होते हैं जिनमे दीवारें तो पक्की ईट की होती हैं लेकिन छतें खपरैल की ही होती हैं। पथरीले, कंकरीले भागों में पत्थरों के मकान बनाये जाते हैं । जिनकी छतें घास-फूस या खपरैल की होती हैं या पत्थरों की पट्टियों से इन्हें पाट दिया जाता है । ये पट्टियाँ इतनी लम्बी होती है कि एक दीवार से दूसरी दीवार पर रखी जा सकती हैं । इनकी लम्बाई लगभग 8 से 10 फीट तक व चौड़ाई 1 से 2 फीट तक एवं ऊचाई लगभग 5 इंच होती है । ऐसे मकान पक्के या कच्चे-पक्के मिश्रित नहीं कहलाते है बल्कि ये मकान पत्थर के कहलाते हैं क्योंकि यह भौतिक पदार्थ पत्थर बिना किसी विशेष तकनीक के एक पर एक रखे जाते हैं और जो कुछ साधारण तकनीक का प्रयोग होता है वह ऐतिहासिक विकास के कारण है । मानिकपुर विकासखण्ड के जंगली भागों में आदिवासी व्यक्तियों की झोपड़ियाँ मिलती हैं जिनमें लकड़ियाँ गाड़ कर उनके ऊपर चारों तरफ मोटी लकड़ियाँ रखी जाती है, फिर घास-फूस या लताओं से ढक दिया जाता है । इनकी ऊचाई लगभग 1 मीटर से 1.5 मीटर तक होती है जो पूर्णतया वनस्पति तत्व से निर्मित होती हैं । इसके अतिरिक्त इसी क्षेत्र में तीन से चार फीट ऊची मिट्टी की दीवारों वाले घर भी मिलते हैं लेकिन इनकी छत वनस्पति तत्व से ही निर्मित होती है ।

3. सुरक्षा- सभी प्रकार के गृह निर्माण को (सामूहिक एवं व्यक्तिगत) सुरक्षा की भावना ने प्रभावित किया है । इसमें प्रथम महत्व मानवीय सुरक्षा को तथा द्वितीय महत्व अन्य भौतिक सुरक्षा (सामान या माल की सुरक्षा) को दिया जाता है । पहला महत्व हर परिस्थिति में अस्थिर रहता है लेकिन देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार द्वितीय के सुरक्षा तत्वों में अन्तर होता है । यह विभिन्नता पदार्थो को इकट्ठा करने वाली बस्तियों में पदार्थो की महत्ता, पशुचारक या पशु सम्पत्ति प्रधान समुदायों में पशु की महत्ता व कृषित समुदायों में कृषि उत्पादों की महत्ता के स्वरूप में देखा जा सकता है । समुदायों में सुरक्षा की प्रवृत्ति की मात्रा में अन्तर नहीं होता, भले ही उपरोक्त परिस्थितियों के अनुसार स्वरूप में अन्तर हो । मानव अपने हर स्वामित्व व सामान की हिफाजत का ख्याल रखता है । कोई भी वस्तु बेकार या तुक्ष नहीं होती, यह सोचकर अपनी सामर्थ्य व शक्ति से प्रत्येक वस्तु की सुरक्षा हेतु जाग्रत रहता है । अध्ययन क्षेत्र में मैदानी क्षेत्रों के निवासी जो प्रमुखतः कृषक

हैं । पशुपालन एक अतिरिक्त व्यवसाय है । अपने मानवीय आवासों में वह कृषि उत्पाद रखने की व्यवस्था करता है तथा पास ही अन्य गृह जानवरों के लिये अलग से बनाता है । जंगली एवं अर्द्धकृषित क्षेत्र (पाठा क्षेत्र) कुछ समुदायों में पशुपालन प्रमुख व्यवसाय है । यहाँ पर जानवरों के रहने के लिये बड़े-बड़े बाड़ें बनाये जाते हैं जिनमे ही आगे या पीछे के भाग में मानव भी साथ-साथ निवास करता है । ये घर खुले हुये लम्बे-चौड़े व बड़े होते हैं । पहाड़ी, मानिकपुर, रैपुरा, रामनगर, विकासखण्डों में पत्थर तोड़ने वाले समुदाय अपने कार्यस्थल के पास ही रहते थे जिनमें बड़े-बड़े मैदानों के किनारे उनका एक छोटा आवास (गृह) होता था । सामने मैदान में सम्बन्धित उत्पाद रखा रहता था जिसके चारो तरफ झाड़ियों की बाड़ या पत्थरों की पट्टियाँ गाड़कर सुरक्षा प्रदान की जाती थी । पत्थरों को प्राकृतिक सम्पत्ति घोषित करके जबसे पहाड़ियों-टीलों व पत्थरों की खानों का ठेका होने लगा, ये समुदाय मालिक से केवल श्रमिक बन गये । अब ये उत्पाद ठेकेदार के बाड़ों में रखा जाता है तथा इन श्रमिक जातियों के आवास छोटे-छोटे पैत्रिक स्थानों के कोनों पर बने दिखाई पड़ते हैं । बन्दरों से सुरक्षा हेतु चित्रकूट विकासखण्ड के दक्षिणी ग्रामों में खपरैल के ऊपर कटीली झाड़ियाँ रखी जाती हैं ।

आर्थिक स्तर- वास्तव में गृह निर्माण प्रक्रिया, आकार, प्रकार, विन्यास को इस तत्व ने सबसे अधिक प्रभावित किया है । इसके फलस्वरूप एक ही स्थान पर एक तरफ पक्की बहुमंजलीय इमारत दिखाई देती है तथा दूसरी तरफ घास की झोपड़ी। आर्थिक विपन्नता पर प्राकृतिक कारकों का गृह निर्माण पर भरपूर प्रभाव पड़ता हैं जबकि आर्थिक सभ्यता पर इनका प्रभाव आंशिक ही होता है । मजबूत आर्थिक स्तर वाले व्यक्तियों के मानवीय व पशु आवास तथा भण्डारण के स्थान अलग-अलग होते हैं जबकि गरीब व्यक्ति एक ही गृह में निवास, भंडारण व पशु-पालन सभी कार्य सम्पादित करता है । अतः गृह अजायबघर सा प्रतीत होता है। धनी व्यक्तियों के मकान बड़े व साफ सुथरे होते हैं । अध्ययन क्षेत्र में मकानों की दशा पर आर्थिक प्रभाव साफ-साफ परिलक्षित होता है । जिसमें उत्तर व दक्षिण, पूरब से दक्षिण-पश्चिम की तरफ जाने पर विशाल पक्के-पक्के, कच्चे भवनों के साथ कच्चे वृहद् मकान प्रारम्भ में और अन्त में दक्षिणी भाग में छोटी-छोटी झोपड़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

धर्म- अध्ययन क्षेत्र में गृहों के प्रत्येक भाग में धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। उसकी नींव डालने से लेकर, आकार-प्रकार सभी धर्म द्वारा निर्धारित संशोधित किये जाते हैं । गृहों के मध्य भाग या आंगन में एक मिट्टी का ऊंचा भाग चतूबरे के

रूप में बनाया जाता हैं । इस पर तुलसी का एक पेड़ लगाया जाता है तथा कुछ मूर्तियाँ रख दी जाती हैं । जिन मकानों में यह विश्वास किया जाता है कि पारलौकिक जीव भी यहाँ रहते है, उन्हें निकालने एवं गृह शुद्धिकरण हेतु दरवाजे में लोहे को चारों तरफ लगाया जाता है व ड्योढ़ी ऊंची बनवाई जाती है, ऐसे भवनों में निम्न जातियां प्रवेश नहीं कर सकती हैं ।

सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व- गृह मूलतः एक सांस्कृतिक भूदृश्यावली है । इसका विकास भी मानवीय क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के विकास के साथ-साथ होता है। मकान के आकार-प्रकार आयोजन आदि किसी एक कारक द्वारा निर्धारित न होकर बहुधा सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का सम्मिलित परिणाम होता है । घर के अगले हिस्से में बैठका (अतिथि गणों का विश्राम स्थल) अवश्य बनाया जाता है जिसमे चौपाल साथ-साथ या सामने होती है या खुला स्थान सदृश होता है, जहाँ पर खाली समय में ग्रामवासी बैठकर आपसी कृषि सम्बन्धी बातें या मनोविनोद किया करते हैं। घर के सामने ही कउड़ा (अलाव) लगाया जाता है, यह वह स्थान है, जहाँ जाड़े में आग जलाकर सर्दी दूर की जाती है । इस आग के चारो तरफ बैठकर धूम्रपान किया जाता है तथा आपसी बाते की जाती हैं । औरतों के पर्दा प्रथा हेतु घर का पिछला हिस्सा या अन्य भाग सुविधानुसार अगल-बगल निश्चित होता है जहाँ पर साधारणतया बाहरी व्यक्ति नहीं जाते हैं । घर के पिछले हिस्से या बगल में एक छोटा दरवाजा लगाया जाता है जहाँ से औरतें कुओं, तालाबों, शौचालयों आदि स्थानों पर जाती हैं ।

ग्रामीण निवास स्थलों का वितरण- (Distribution of Rural Dwellings)

क्षेत्र मे कुल 1207 ग्रामों मे समस्त गृहों की संख्या वर्ष 1997 में 2,80,192 है । सामान्य घनत्व 38 गृह प्रति वर्ग किलोमीटर पाया जाता है (चित्र संख्या-6.1) में अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीण गृहों के वितरण को न्याय पंचायत स्तर पर प्रदर्शित किया गया है । विकासखण्ड स्तर पर सर्वाधिक गृहों का घनत्व बिसण्डा (63 गृह) विकासखण्ड में पाया जाता है । इसके पश्चात् महुवा (62 गृह) विकासखण्ड है । जिसका कारण उर्वर भूमि, यातायात व संचार की सुविधाएँ तथा सेवा केन्द्रों की स्थिति है । मध्यम घनत्व नरैनी (45 गृह), बड़ोखर खुर्द (40गृह), चित्रकूट (39 गृह), बबेरू (37 गृह), पहाड़ी (36 गृह) विकासखण्ड में पाया गया है । यहाँ गृहों का घनत्व 35 गृह से 50 गृह तक है । इस क्षेत्र में उबड़-खाबड़ पथरीला भाग आता है । न्यून घनत्व के क्षेत्र (जहाँ 30 गृह प्रति वर्ग किलोमीटर से कम है ।) मानिकपुर (19 गृह), रामनगर (30 गृह), मऊ (31 गृह), जसपुरा (32 गृह), बबेरू (34 गृह)

DISTRICT - BANDA
Density of Rural Houses, 1997
Below 32 Houses
32 to 50
Above 50
5 0 5 10 15 20
Km
Fig.No. 6.1
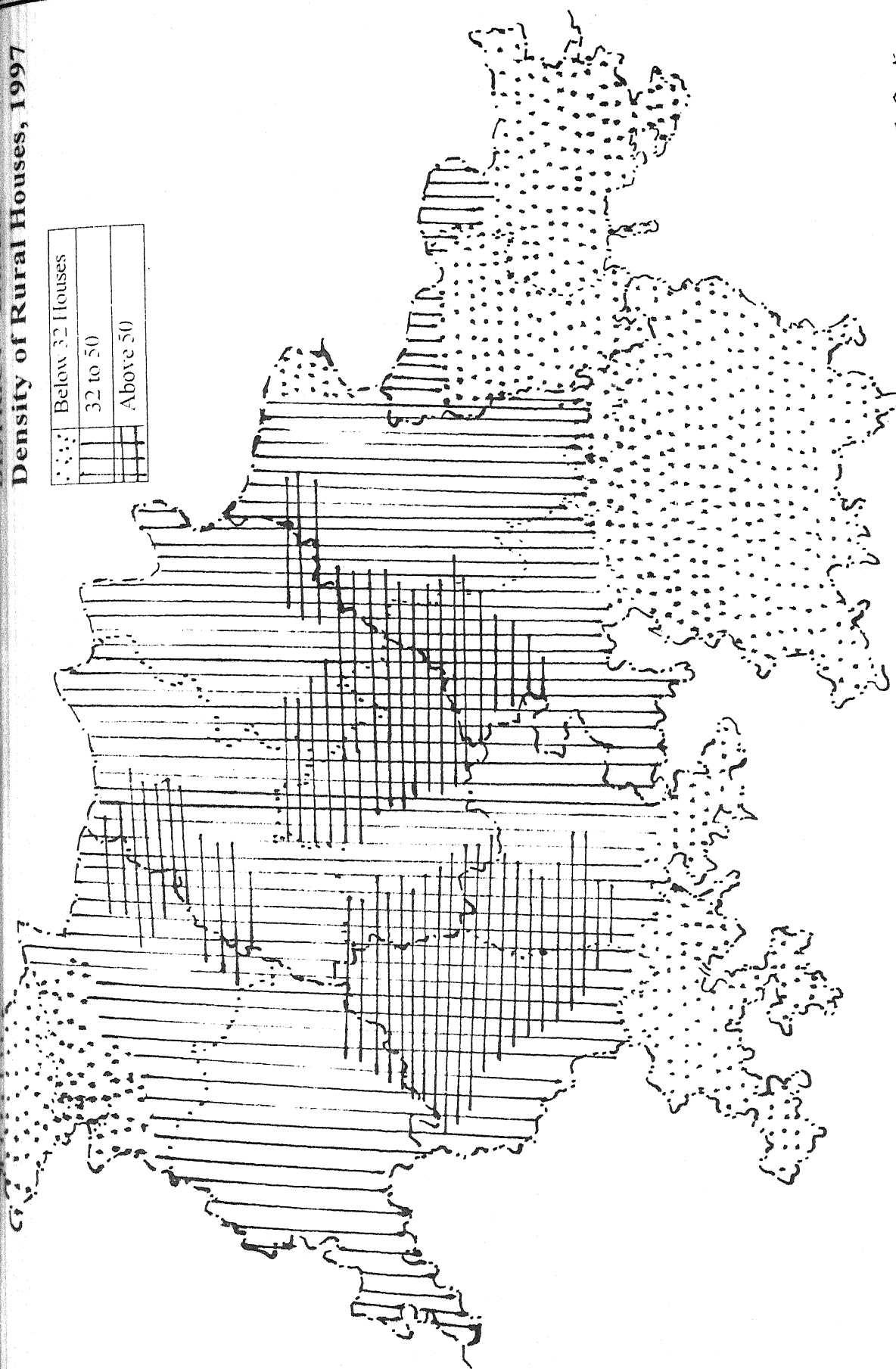
विकासखण्डों अन्तर्गत है । यह क्षेत्र आधुनिक विकास में पिछड़े हुए है तथा सेवा केन्द्रों व परिवहन के साधनों की इन क्षेत्रों में कमी है ।

गृह प्रकार एवं उनका वितरण (House Types and Their Distribution)

गृहों के आकार, कार्य और संरचना मुख्य रूप से एक तरफ निवासियों की सामाजिक-आर्थिक अवस्था से नियन्त्रित होते हैं दूसरी तरफ प्राकृतिक वातावरण से निर्देशित होते हैं (सिंह, 1977) । गृह एक विशिष्ट संरचना है जिस पर उपलब्ध निर्माण सामग्री और उसके प्रति मानव की अनुक्रिया का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है । गृह को एक या एक से अधिक परिवारों के आवास क्षेत्र के रूप में भी अभिकल्पित किया जा सकता है । भवन निर्माण सामग्री एवं वास्तुकलात्मक विन्यास प्राकृतिक तत्वों से भूमि विन्यास मुख्यतः जाति व्यवसाय, और रहने के स्तर से सम्बन्धित होता है । प्रादेशिक स्तर पर मकान एवं उनके प्रकारों के अध्ययन में उनकी भौतिक, सामाजिक स्थापना वास घनत्व, आकार-प्रकार, स्वच्छता, अध्यासन दर और निर्माण पदार्थो को शामिल किया जाता है । अतः मकान के प्रकारों का अध्ययन निम्नलिखित आधारों पर किया जा सकता है ।

1. आमाप और आकार;
2. निर्माण सामग्री;
3. लोक परम्परा;
4. सामाजिक-स्थानिक एवं आर्थिक गुण;
5. वास्तुकलात्मक शैली;
6. आवासन की पर्याप्तता ।

प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताएं एवं आर्थिक अवस्थाएं ग्रामीण मकानों के आमाप और आकार निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । जिसमें जाति विन्यास का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । ग्राम्य मकानों का आमाप झोपड़ों से लेकर बड़े-बड़े आलीशान भवनों तक हो सकता है । मकान में कमरे को एक सबसे छोटी इकाई मानकर सर्वेक्षण करने से प्रतीत होता है कि एक या दो कमरे वाले घर गरीब व्यक्तियों के, तीन या चार कमरे वाले घर साधारणतया लघु एवं सीमान्त कृषकों के, पाँच या छः कमरों वाले मकान मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के, तथा सात या इससे अधिक कमरों वाले मकान उच्च वर्ग या उच्च-मध्य वर्ग से सम्बन्धित है ।

तालिका संख्या 6.1 से स्पष्ट है कि एक या दो कमरे वाले मकान सर्वाधिक (38.13 प्रतिशत) हैं जो 28.04 प्रतिशत जनसंख्या को शरण देते हैं । तीन या चार कमरों वाले मकान 33.95प्रतिशत है जिनमें 36.25 प्रतिशत जनसंख्या

निवास करती है । पाँच या छः कमरों वाले मकान 22.38 प्रतिशत है जो 27.85 प्रतिशत ग्रामीण के शरण स्थल हैं तथा सात कमरों से अधिक वाले मकान 05.54 प्रतिशत हैं जो 7.86 प्रतिशत निवासियों के निवास स्थल हैं ।

अध्ययन क्षेत्र के विश्लेषणात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि एक व दो कमरें के मकान अधिकाशतः रैखिक आकार के होते है, जबकि तीन कमरे के मकान 'एल' या 'यू' आकार में पाये जाते हैं । चार कमरे वाले मकान वर्गाकार या आयताकार रूप में मिलते हैं । वर्गाकार या आयताकार योजनायुक्त पाँच या अधिक कमरों वाले मकान विशेषतः विभिन्न प्राकृतिक संरचना व परिमाप के होते है । कमरों की संख्या के आधार पर उक्त मकानों में विभिन्नताएं पायी जाती हैं। विभिन्न आकार-प्रकार के यह मकान निवासियों के आर्थिक स्तर के द्योतक होते हैं । अधिकतर जनसंख्या 'यू' आकार युक्त या वर्गाकार-आयताकार घरों में आवासित है । बांदा जनपद की अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या अधिकतर तीन कमरों युक्त मकानों में निवास करती है जिनका आकार 'यू' आकार का होता है ।

तालिका संख्या- 6.1

कमरों की संख्या एवं आवासीय व्यक्तियों की संख्या के अनुसार मकानों का आकार, 1997

गृह प्रकार	कुल घरों की संख्या का प्रतिशत	कुल आवासीय जनसंख्या का प्रतिशत
एक कमरे वाले घर	13.11	5.11
दो कमरे वाले घर	25.02	22.93
तीन कमरे वाले घर	24.23	22.98
चार कमरे वाले घर	9.72	13.27
पांच कमरे वाले घर	15.27	19.71
छः कमरे वाले घर	7.11	8.14
सात कमरे वाले घर	3.03	4.67
आठ या इससे अधिक कमरे वाले घर	2.51	3.19

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण के आधार पर ।

तालिका संख्या 6.1 आवासीय गृहों से सम्बन्धित है । अधिपत्य के आधार पर आवासित गृहों एवं कुल गृहों का सम्बन्ध इससे पूर्णतया भिन्न है क्योंकि एक, दो या तीन कमरे वाले मकान आवासीय व पशुशाला दोनों प्रकार के है जिनमें गरीब मजदूर या खेतिहर मजदूर निवास करते हैं । इसके अलावा एक, दो, तीन

कमरों वाले मकान पशुशाला भी हैं । ये धनी व्यक्ति से सम्बन्धित हैं । अतः इस कोटि का प्रत्येक मकान एक व्यक्ति या परिवार से सम्बन्धित है । इससे यह विदित होता है कि एक कमरे वाले 13.11 प्रतिशत मकान में 5.11 प्रतिशत जनसंख्या रहती है या आवास की सुविधा प्रदान करते है । इसके अलावा पशुशालायुक्त भी काफी मकान हैं जो इस वर्ग से सम्बन्धित नहीं हैं । धनी व्यक्तियों का अपने आवासीय मकानों से तो सम्बन्ध केवल रहने से होता है । जबकि इनके द्वारा साफ-साफ पशुशालायें भी एक या दो या तीन कमरों वाले बनवायें जाते हैं ।

तालिका संख्या- 6.2

कार्यों का मकानों के कमरों से सम्बन्ध, 1997

कमरो की संख्या	आवासीय मकानों का प्रतिशत	पशुशालाओं/कार्यशालाओं का प्रतिशत	सार्वजनिक स्थल मन्दिर, मस्जिद, पंचायतघर
1	38.9	61.1	--
2	89.6	10.4	--
3	96.3	3.2	0.50
4	99.8	--	0.20
5	100.00	--	--
6	100.00	--	--
7	100.00	--	--
8 या इससे अधिक	100.00	--	--

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित ।

तालिका संख्या 6.2 पर गौर से ध्यान देने पर पता चलता है कि एक व दो कमरे वाले मकान निवास स्थल व पशुशाला दोनों ही कोटि के हैं। जबकि तीन कमरे वाले मकान रिहायसी, पशुशाला एवं सार्वजनिक स्थल के अन्तर्गत आते हैं । चार कमरे वाले मकान आवासीय होने के साथ-साथ सार्वजनिक स्थल के अन्तर्गत भी आते है । यद्यपि मात्र 0.20 प्रतिशत भाग ही इसमें समाहित हैं । पांच या इससे अधिक कमरे वाले मकान पूर्णतया आवासीय हैं ।

मकान की योजना व आकार व्यक्ति की आवश्यकता और मांग पर निर्भर करता है । साधारणतया धनी व्यक्ति एक बड़ा मकान व दो या तीन अन्य मकानों को विभिन्न आवश्यकताओं यथा- निवास, पशुशाला, भण्डारण, कंडे पाथना आदि हेतु रखता है । बड़े मकानों में भी विभिन्न क्रियाकलापों यथा- खाना पकाना,

सोना, सामान रखना, मेहमान कक्ष, औरतों हेतु बन्द कमरों तथा प्रत्येक बालिग व्यक्ति के लिये अलग कमरे की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बनाया जाता है जबकि गरीब व्यक्ति छोटे मकान के एक या दो कमरों में ही अपनी सभी आवश्यकताएं पूरी करता है ।

तालिका संख्या- 6.3

विभिन्न कार्यो का मकान के कमरों से सम्बन्ध, 1997

कमरों की संख्या	कार्यकलाप
1	निवास स्थल(आवास तथा पशुशाला) या पशुशाला
2	आवास व पशुशाला, पशुशाला (भूसा भण्डार-पशु निवास)
3	आवासीय(स्टोर रूम, किचेन)व पशुशाला (पशु निवास व भूसा भण्डार)
4	आवासीय- स्टोर रूम, किचेन, बेडरूम, बैठका व आंगन
5	आवासीय- स्टोर रूम, किचेन, बेडरूम, बैठका, अन्नभण्डार व आंगन
6	आवासीय- स्टोर रूम, किचेन, बेडरूम-2, बैठका, अन्नभंडार-2, आंगन
7	आवासीय- स्टोर रूम, किचेन, बेडरूम-2, बैठका, अन्नभंडार-2, आंगन
8	आवासीय- स्टोर रूम-2, किचेन, बेडरूम-2, बैठका, अन्नभंडार-2, आंगन
9	आवासीय- स्टोर रूम-2, किचेन, बेडरूम-3, बैठका, अन्नभंडार-2, आंगन

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित ।

कमरों की संख्या के अतिरिक्त भूविन्यास तथा छत की बनावट के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के मकानों को तीन प्रकार से बाँटा जा सकता है ।

1. **आयताकार या वर्गाकार भूविन्यास तथा सपाट छत वाले मकान-** इस प्रकार के मकान जिनमें दीवारें पत्थर की होती है । छत भी पत्थर की बड़ी-बड़ी पटियों से बनायी जाती है, जिसके ऊपर मिट्टी डाल दी जाती है । इस प्रकार के संरचनायुक्त मकान नरैनी विकासखण्ड के पथरीले क्षेत्र व पहाड़ी विकासखण्ड के अन्तर्गत हैं। कमरे की लम्बाई 5मीटर से 10मीटर तक तथा चौड़ाई 6फुट तक होती है ।

2. **आयताकार या वर्गाकार भूविन्यास तथा ढालयुक्त छत वाले मकान-**इस प्रकार के मकान अध्ययन क्षेत्र के अधिकतर भाग में विस्तृत हैं । इनमें दीवारें मिट्टी, ईट आदि से निर्मित होती है तथा छत पर लकड़ी व अन्य जैसे अरहर, बांस, आदि रखकर बनायी जाती है । इसके ऊपर भारी खपरैल रखा जाता हैं । ऐसे मकानों की छतों का ढाल 25^0 से 35^0 तक पाया जाता है ।

3. **गोलाकार भूविन्यास व गोलाकार छत वाले मकान-** ऐसे मकान मानिकपुर क्षेत्र में मिलते हैं । जहाँ पर लकड़ियाँ गाड़कर व बांस तथा लकड़ी की टटियों

से दीवारें बनाई जाती हैं । उनके ऊपर लकड़ी के लट्ठे या बांसों के ढाँचे पर घास आदि मढ़ दिया जाता है । यह मुख्यत: कोल जाति के आश्रय स्थल हैं ।

निर्माण सामग्री के आधार पर मकानों के प्रकार

स्थानीय निर्माण सामग्री की उपलब्धता के आधार पर मकान कई प्रकार के होते है (तालिका संख्या- 6.4)। निर्माण सामग्री का गृह स्वरूप पर एक निश्चित प्रभाव है। इसके अलावा यह सामग्री निर्माता के हाथों व मस्तिष्क द्वारा भी प्रभावित होती है। अत: इस कोटि के अन्तर्गत मकानों के प्रकार निर्धारण में दो तत्वों का योगदान होता है ।

1. उपलब्ध निर्माण सामग्री;
2. सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्तर ।

मकानों की निर्माण सामग्री भूगर्भ, मिट्टी तथा वनस्पति के सूक्ष्म क्षेत्रीय विशेषताओं को साफ-साफ इंगित करती है । मकानों का आकार, ऊंचाई तथा आयातित सामग्री का प्रयोग क्षेत्र की आर्थिक दशा की ओर संकेत करते हैं । दो या तीन खण्डों वाले मकान निवासियों की अपेक्षाकृत सुदृढ़ अर्थव्यवस्था को सूचित करते हैं ।

मिट्टी एक महत्वपूर्ण व सार्वभौमिक निर्माण सामग्री है जिसके द्वारा मनुष्य बिना किसी चतुरतापूर्ण कारीगरी से मकान का निर्माण कर सकता है । क्षेत्र में अधिकतर गृहों की दीवारें इसी मिट्टी तत्व से निर्मित हैं जिसको पास ही तालाब या ऊचे स्थान से प्राप्त किया जाता है । इन दीवारों की मोटाई साधारणतया 50से0मी0 से 1मीटर तक मिलती है । जिसमें ऊचाई के आधार पर अन्तर आता-जाता हैं । इनकी ऊचाई 3मीटर से 6मीटर तक मिलती है । 6मीटर ऊची दीवारों में एक ऊपर अटारी होती है । दीवार के निर्माण के लिये पहले मिट्टी को गीली व चिपचिपी बनाकर उसको 1 फिट मोटे स्तर में रखते है । यह मिट्टी गोंदों (गीली मिट्टी का टुकड़ा) के रूप में लाकर दीवार पर दबाकर रखी जाती है इससे पर्ते खत्म हो जाती हैं। इसके अलावा कंकड़-पत्थर के टुकड़ों, ईटों के टुकड़ो व खपरैल के टुकड़ों को भी दीवार में मिलाकर रखते जाते हैं जिससे दीवार अधिक मजबूत बन जाती है। बिसण्डा व बबेरू विकासखण्ड में गीली मिट्टी के साथ पुवाल भी मिलाया जाता है । इस तरह 1 फिट मोटे स्तर की एक बार दीवार बनाते हैं तथा इसके सूख जाने पर पुन: इसके ऊपर इसी प्रकार का दूसरा स्तर रखते हैं तथा यह प्रक्रिया तब तक चालू रहती है, जब तक दीवार की अभीष्ट ऊँचाई तैयार नहीं हो जाती है । इन मकानों की नींव दो फिट से तीन फिट तक गहरी होती हैं । दीवार तैयार हो जाने पर उस पर विशेष प्रकार से तैयार मिट्टी से छपाई होती है

तत्पश्चात् सूख जाने पर पुताई की जाती है । यह पुताई भी मिट्टी से ही होती है । जिन क्षेत्रों में मिट्टी की जगह पत्थर प्राप्त होते हैं वहाँ पर पत्थर के टुकड़ों को एक के ऊपर एक रखकर दीवार बनायी जाती है । वे दीवारे मिट्टी के विकल्प में पत्थर से पूर्णतया निर्मित होती है । पत्थर विभिन्न कोणीय होते हैं जिनको काट-छाट कर लगभग चौकोर या आयताकार बनाया जाता है । पक्की एवं पत्थर की छतों को छोड़कर सभी प्रकार की छतों के निर्माण में मजबूत लम्बे लट्ठों, बासों व पतली मजबूत लकड़ी का प्रयोग किया जाता है । यह लकड़ियाँ प्रमुखतया महुवा, आम, नीम, जामुन, या अन्य वृक्षों की होती हैं । केवल बबूल की लकड़ी का प्रयोग छत निर्माण में नहीं होता है । लोग बबूल को कुकाष्ठ की संज्ञा देते हैं । इसके पश्चात् अरहर के पौधों (खड़िया) का प्रयोग किया जाता है, जो खपरैल को आधार प्रदान करता है तथा ढाल को ठीक करता है । छत की निर्माण पद्धति स्थानीय सामग्री की उपलब्धता एवं वर्षा की मात्रा पर अधिकांशतया निर्भर होती है। अध्ययन क्षेत्र में निम्न प्रकार की छतें देखने को मिलती हैं ।

1. शंक्वाकार खपरैल की दो तरफा छतों तथा खपरैल की एक तरफा छतों वाले मकान;
2. समतल पत्थर की छतों वाले मकान;
3. समतल ईटों की छतों वाले मकान;
4. घास-फूस की छतों वाले मकान ।

शंक्वाकार खपरैल की छतों वाले मकान- खपरैल छत वाले मकानों में छत का ढाँचा पहले स्थानीय उपलब्ध वनस्पतियों यथा- महुवा, आम, नीम, जामुन, तेन्दू आदि की शाखाओं से निर्मित होता है । इनसे कुछ मोटी लकड़ी होती है जो एक दीवार से दूसरी दीवार में रखी होती है, जो टेढी होती है, इसे 'धन्नी' या 'मयारी' कहते हैं । इस एक मयारी से दूसरी मयारी पर एक सीधी मोटी लकड़ी रखी होती है जिसे 'मलगा' कहा जाता है । तत्पश्चात् मलगा से दीवार में अन्य लकड़ी रखी जाती है । इस प्रकार दो तरफा छत का निर्माण होता है । एक तरफ छत में सीधी धन्नी या मयारियों का प्रयोग होता है, जो एक दीवार से दूसरी दीवार में रखी जाती है । फिर पतली शाखाओं को उनके ऊपर रखकर घने जाल प्रतिरूप का निर्माण होता है । ऐसे मकानों में एक दीवार औसतन अधिक ऊची होती है । छत का ढ़ाल ऊची दीवार से नीची दीवार की तरफ होता है । जब कई घर सामानान्तर बने होते है तो उनमें कुछ अटारीयुक्त भी होते हैं, तब बीच का मकान दो पलानीयुक्त व इधर-उधर के मकान एक पलानी या एक तरफ ढाल वाले होते हैं।

इन लकड़ियों के जाल प्रतिरूप के ऊपर अरहर के पौधों का तना या डण्ठल बिछाये जाते हैं जो खपरैल को आधार व ढाल को सही रखने में सहायक होते हैं । खपरा मिट्‌टी से निर्मित होता है, जिसे आग में पकाकर पक्का या मजबूत तथा अघुलनशील बनाया जाता है । इसका निर्माण जून माह में ग्रामीण स्वयं किया करते हैं । ये खपरे दो प्रकार के होते हैं । एक तो अर्द्ध बेलनाकार या मुडे हुए खपरे, तथा दूसरे समतल दो तरफ रीढ़युक्त एक तरफ संकरे तथा दूसरी तरफ चौड़े होते हैं । ये दोनों प्रकार के खपरे आधार निर्माण के पश्चात् क्रम से नीचे से ऊपर की तरफ रखे जाते हैं । द्वितीय प्रकार के खपरे नालियों का निर्माण करते है तथा प्रथम प्रकार के खपरे एक नाली को दूसरी नाली से जोड़ने के लिए प्रयुक्त किये जाते है । कहीं-कहीं पर एक ही प्रकार के खपरों से दोनो कार्य लिये जाते हैं । छत दीवार से एक फिट बाहर की तरफ तक बनायी जाती है जिससे वर्षा का जल दीवार पर न पड़ सके । इन छतों की छवाई (मरम्मत) प्रत्येक वर्ष करनी पड़ती है । मिट्‌टी की दीवारें तथा खपरैल की छतें 85 प्रतिशत मकानों में मिलती हैं । यह अध्ययन क्षेत्र के प्रतिनिधि मकान हैं । दो मंजिला मकान जिनकी सबसे ऊपरी छत खपरैल की होती है, बीच की छत में सीधी मयारियों को रखकर उसके ऊपर बांस या लकड़ी के पटले या टुकड़े रखे जाते हैं, तत्पश्चात् मिट्‌टी डाली जाती है। इसमे मिट्‌टी की मोटाई 4 इंच से 6 इंच तक मिलती है ।

समतल पत्थर की छतों वाले मकान- इस प्रकार के छतों वाले मकान उन क्षेत्रों में देखने को मिलते हैं जहाँ पर पत्थर तोड़ने व पत्थर की पट्टियाँ बनाने का व्यवसाय होता है । चारों तरफ पत्थर सहज प्राप्त हैं । मिट्‌टी कंकरीली बलुई है। यहाँ पर पत्थर के टुकड़ों से निर्मित दीवार पर इतनी बड़ी-बड़ी पट्टियाँ रखी जाती हैं जो सहज एक दीवार से दूसरी दीवार तक पहुच जाती है । इनकी लम्बाई सामान्यत: 8 फिट तक होती है । इसमें अन्य निर्माण सामग्री को आधार बनाने की आवश्यकता नहीं होती । दो पट्टियों के जोड़ों को बन्द करने के लिये इनके ऊपर जोड़ों में पतले पत्थर की पट्टियों को पुन: रखकर मिट्‌टी डाल दी जाती है । यह समतल छतें अन्य छतों की तुलना में सहज ही निर्मित हो जाती है तथा निर्माण की कीमत भी नगण्य आती है । ये पत्थर के चीपे (पट्टियाँ) स्थायी होते है जो एक बार निर्मित व स्थायी कर देने पर तब तक नहीं निकाली जाती जब तक वह फूट नहीं जाती । इनके द्वारा एक या दो खण्ड तक छतें निर्मित की जाती हैं । इन छतों में ढ़ाल 5^0 से 10^0 के बीच में ही होता है । जिससे पानी सहज बह जाता है ।

पत्थर की पटियाँ तीन प्रकार की होती हैं -

1. लम्बी पटियाँ- 8 फिट लम्बी; 2. चौकोर पटियाँ- 2×2 फिट; 3. आयताकार पटियाँ- 1.5×5 फिट या 1×3 फिट ।

गरीब व्यक्तियों के मकान लम्बी पटियों से निर्मित होते है लेकिन धनी व्यक्ति मकानों में चौकोर लकड़ी के लट्ठे या गाटर डलवाते हैं । इसके ऊपर अन्य दो प्रकार की पटियाँ डलवाते हैं । ये पटियां प्रथम प्रकार की पटियो से अधिक टिकाऊ होती है क्योंकि इनके लिये आधार या सहारा लट्ठे प्रदान करते है जबकि लम्बी पटियों में कोई आधार नहीं होता । इन लम्बी पटियों को बरामदे के खम्भों की तरह भी प्रयोग करते हैं । इनको खम्भों के स्थान पर गाड़ दिया जाता है फिर उनके ऊपर एक दूसरे पर फिर पटिया रखी जाती हैं, जो दरवाजा का कार्य करता है । तत्पश्चात् पिछली दीवार से इनके ऊपर पुनः पटिया रखकर बरामदा बना लिया जाता है । ऐसी छतें नरैनी, पहाड़ी व चित्रकूट विकासखण्ड में मिलती हैं ।

समतल ईंटों की छतों वाले मकान- पक्के मकान सांस्कृतिक विकास के फलस्वरूप दिन प्रतिदिन बन रहें है जो कि आधुनिकीकरण एवं नई कला के द्योतक हैं । आजकल पक्के मकान सामाजिक प्रतिष्ठा के सूचक माने जाने लगें हैं । प्रतिष्ठा के अलावा इससे अन्य लाभ यथा- सफाई, जगह का अधिकतम उपयोग, अधिक मजबूत व सुदृढ़ तथा अधिक सुरक्षात्मक भी है । पक्के मकान में कमरे की सभी चारों दीवारें पक्की ईटों से निर्मित होती हैं एवं छतें पक्की ईट, चूना, सीमेन्ट तथा लोहा से निर्मित की जाती है । इस प्रकार के मकान अधिकांशतः ग्रामीण सेवाकेन्द्रों में देखने को मिलते हैं । गीली मिट्टी से कच्ची ईंटें बनायी जाती हैं जिन्हें सूख जाने पर पजेवा में पकाया जाता है । ऐसी छतें व मकान धनी वर्ग से सम्बन्धित होते हैं । इस प्रकार के मकान बनाने की क्षमता उन्हीं व्यक्तियों के पास होती है जो गृह निर्माण हेतु अन्य निर्माण सामग्री बाहर से मंगा सकते हैं । ऐसे मकान एक मंजिला, दो मंजिला व बहुमंजिला हो सकते हैं । पंचायतघर, प्राइमरी पाठशालाएं, हरिजन बस्तियां आदि सरकार की तरफ से बनवायें जाने के कारण इन्हीं सामग्रियों से बनती हैं । ऐसे मकान क्षेत्र में बिखरे हुए मिलते हैं ।

घास-फूस की छतों वाले मकान- घास-फूस की छतों वाले मकानों में दीवारें घास-फूस व बाँस की टटियों से निर्मित होती है जिन्हें गड़ी हुई लकड़ियों के सहारे खड़ा किया जाता है । चारों किनारों पर चार मोटी लकड़ियाँ गड़ी होती हैं ।

आवश्यकता पड़ने पर दरवाजे के पास एक या दो लकड़ियाँ और गाड़ दी जाती है । इनके ऊपर एक लकड़ी से दूसरी लकड़ी पर एक लट्ठा रखा जाता है । इस तरह छत का आधार इन लट्ठों पर टिका होता है । इनके ऊपर स्थानीय वनस्पति तत्वों जैसे- बांस, मूंज, घास, सरई, आदि से छत का निर्माण होता है। इनमें छतों की मोटाई 4 इंच से 8 इंच तक होती हैं । इनका प्रतिरूप इस तरह होता है कि वर्षा का जल इन्हें फाड़कर नीचे न आ सके । यह विशेषता सरई, मूंज, कांस, पतावर आदि घासों में होती है । ऐसे मकान छोटे-छोटे व नीचे होते हैं। कहीं-कहीं पर दीवार की टटियों में मिट्टी लगा दी जाती है, जिससे दृष्टिगोचरता खत्म हो जाती है तथा जंगली कीड़े-मकोड़े अपेक्षाकृत कम प्रवेश कर पाते है । ऐसे मकान एक स्थान पर एक परिवार से ही सम्बन्धित होते हैं । अलग-अलग परिवार के मकान थोडी-थोडी दूर पर बनाये जाते हैं । इस प्रकार की बस्तियां अधिकतर मानिकपुर विकासखण्ड में कोल आदिवासी जातियों से सम्बन्धित हैं या फिर चित्रकूट में सन्त-महात्माओं की हैं । उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण गृह, स्थानिक क्षेत्र में उपलब्ध सस्ते पदार्थों द्वारा निर्मित हैं।

तालिका संख्या- 6.4

निर्माण सामग्री के आधार पर जनपद में विभिन्न प्रकार के मकान (प्रतिशत में), 1997

विकासखण्ड	खपरैल	पक्की ईट	पत्थर	घास-फूस
जसपुरा	92	8	-	-
तिन्दवारी	89	11	-	-
बड़ोखर खुर्द	87	13	-	-
बबेरू	90	10	-	-
कमासिन	91	9	-	-
बिसण्डा	94	6	-	-
महुवा	90	8	-	2
नरैनी	63	5	21	11
पहाड़ी	75	3	19	3
चित्रकूट	79	6	10	5
मानिकपुर	72	2	7	19
मऊ	85	3	8	4
रामनगर	85	3	9	3
सम्पूर्ण जनपद	84.01	6.69	5.69	3.61

स्रोत- प्रतिदर्श क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर प्रत्येक विकासखण्ड के 5 प्रतिशत ग्रामों का सर्वेक्षण करके उपरोक्त तालिका तैयार की गयी है ।

लोक परम्परा के आधार पर मकानों को चार भागों में बांटा जा सकता है ।

1. आवासीय गृह;
2. शाही गृह;
3. देव स्थान;
4. सार्वजनिक स्थल ।

आवासीय गृह निर्माण हेतु, शाही गृह यादगार व जमीदारों की सन्तानों द्वारा निवास हेतु प्रयोग किये जाते है । देव स्थान तथा सार्वजनिक स्थल ऐसे स्थल है जहाँ पर पूजा, पंचायत, शिक्षा आदि कार्यकलाप होते हैं ।

सामाजिक-आर्थिक एवं स्थानिक गुणों के आधार पर उच्च स्तर के मकान या धनी व्यक्तियों के मकान, मध्यम व्यक्तियों के मकान व गरीब व्यक्तियों के मकान में बांटा जा सकता है । आर्थिक गुण व सामाजिक प्रगति का विवेचन प्रथमतः दोनों आधारों में किया जा चुका है ।

वास्तुकलात्मक शैली के आधार पर मकानों को दो भागों में बांटा जा सकता है । एक वे मकान जिनमें उपलब्ध पदार्थो का प्रत्यक्षतः उपयोग किया जाता है । इनमें कुशलता व विशेषीकृत का कोई महत्व नहीं होता । द्वितीय कोटि में वह मकान आते हैं जिनमे उपलब्ध पदार्थो को तकनीकी दक्षता व शिल्पकला के आधार पर निर्मित किया जाता है । आवास की पर्याप्तता के आधार पर मकानों को इनमें निवासित व्यक्तियों की संख्या से जोड़कर तीन कोटियों में रखा जा सकता है । कुछ परिवार ऐसे होते है जिनके पास पर्याप्त रिहायसी, पशुशाला, बैठका व अतिरिक्त मकान होते हैं । कुछ व्यक्तियों के पास अपने कार्यकलापों को सम्पादित करने हेतु पर्याप्त मकान होते हैं तथा कुछ ऐसे भी परिवार होते है जिनमें समस्त कार्यकलाप एक ही मकान में सम्पादित होते हैं । इन मकानों में भोजन, भण्डारण, पशुशाला व अन्य सामाजिक तथा निजी कार्य होते हैं । यह अपर्याप्त मकान की कोटि में आते हैं जो सामान्यतः निर्धन वर्ग के व्यक्तियों के होते हैं ।

वस्तुतः उपरोक्त आधार एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा एक ही आधार पर अन्य आधारों से निरपेक्ष होकर इनका स्पष्ट वर्गीकरण सम्भव नहीं है (सिंह, 1972) । गृह निर्माण की सामग्री, मंजिलों की संख्या, प्रत्येक मकान में कमरों की संख्या, आंगन का निर्माण तथा प्रति आंगन परिवारों की संख्या के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के ग्राम्य गृहों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

1. **कच्ची मिट्टी या पत्थर के एक कमरे वाले मकान-** एक कमरे वाला मकान अत्यन्त सामान्य स्तर का जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों के हैं। इनकी आकृति आयताकार लगभग 1×4 के अनुपात में होती है । एक कमरे वाले मकान वर्गाकार झोपड़ियों के अलावा देखने को नहीं मिलते है । ऐसे मकानों में रसोईघर गर्मियों में बाहर तथा जाड़ों एवं वर्षा ऋतु में कमरे के एक किनारे पर होता है। घर के अन्दर, लकड़ियाँ, खाद्यान्न, भूसा, औजार, प्रतिदिन की प्रायोगिक वस्तुएं- चारपाई, कपड़े आदि अनियोजित रूप से रखे रहते है । इसके अलावा भण्डारण, विश्राम गृह, अतिथि गृह, रसोई घर आदि विभिन्न उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हेतु इन घरों का प्रयोग किया जाता है । यहाँ तक कि जाड़ों में इनके साथ-साथ पशु भी अन्दर रखे जाते हैं ।

बिना दीवारों से घिरा खुला हुआ आंगन सामूहिक लोगों द्वारा प्रयोग किया जाता है जिसका प्रयोग अधिकतर जानवरों को बांधने, उन्हें चारा-भूसा खिलाने, चरही निर्माण व बैलगाड़ियां आदि खड़ी करने हेतु किया जाता है, इसे 'ग्वौड़ा' कहते है । इस प्रकार के मकान अधिकतर अन्तर्सम्बन्धित होते हैं । यह अधिकतर पिछड़े क्षेत्रों यथा- नरैनी विकासखण्ड के दक्षिणी भाग में बहुतायत से देखने को मिलते हैं। इसके अलावा अन्य विकासखण्डों में यह दृश्यावली पुरवों में देखने को मिलती है जहाँ पर एक जाति या समुदाय के परिवार चारों ओर अपने घर बनाकर बीच के स्थान को खुला छोड़ देते है । यह जाड़ें में आग जलाने, जानवरों का चारा इकट्ठा करने व उसे गड़ासें से काटने, बाहर आराम करने, दूध दुहने व मनोरंजन हेतु प्रयोग किया जाता है । यह खुला हुआ आंगन या 'ग्वौड़ा' सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से उचित नहीं होता क्योंकि जब भी परिवार के सभी सदस्य खेतों में या अन्य स्थानों में जाते हैं तो बाहर रखा हुआ सभी सामान अन्दर रखना पड़ता है ।

चारो ओर दीवारों से घिरे हुए आंगनयुक्त मकानों के निवासियों को खुले हुए आंगन के निवासियों की तरह ज्यादा सतर्कता की आवशकता नहीं होती । इस प्रकार के मकान वाले निवासियों के पास सुरक्षात्मक स्थान के कारण सामानों में वृद्धि या अधिकता देखने को मिलती है । इन मकानों में खाना अन्दर आंगन में बनाया जाता है जिसके ऊपर कहीं-कहीं पर घास का छप्पर होता है । इन आवासियों के पास अपना निजी कोई जल स्रोत या कुआं, हैण्डपम्प नहीं होता । अत: सामूहिक कुआं या नलों से पानी प्राप्त करते है ।

2. एक से अधिक कमरों वाले मिट्टी या पत्थर के कच्चे मकान- एक कमरे के मकान से अधिक कमरों वाले मकान विभिन्न कार्यो के वितरण से प्रभावित होकर बदलता है । इनमे विश्राम गृह, भोजनालय, जानवरों के रहने व चारा भण्डार अलग-अलग होते हैं । तीन या चार कमरे वाले मकानों में भी विश्राम गृह व खाद्यान्न गोदाम एक ही कमरे होने से विश्राम गृह की संख्या में सामान्यतः कोई वृद्धि नहीं होती है । तीन कमरे वाला मकान भी एक विश्राम गृह की तरह होता है । दोनो प्रकार के मकानों में विभिन्नता केवल प्रवेश में मिलती है । खुला आंगन वाले मकानों का प्रवेश मैदान से होता है जबकि बन्द आंगन वाले मकान में अधिकतर कमरों में प्रवेश आंगन से होता है । मकान आंगन के पिछले हिस्से में अधिकतर बनाये जाते हैं । कुछ मकानों में आगे की तरफ कमरा बनाया जाता हैं। इसके पश्चात् आंगन होता है, फिर पीछे अन्य कमरे होते हैं । आंगन दोनों भागों के बीच में होता है जिसमें अगला भाग प्रवेश गृह तथा पिछला विश्राम घर, स्टोर रूम व किचन से सम्बन्धित होता है । आंगन में एक गड्ढा सार्वभौमिक मिलता है जिसमें झूठे बर्तन डाल देते हैं । यह पानी से भरा रहता है । कभी-कभी इसके पानी को बाहर भी फेक दिया जाता है । दो भागों में बने कमरों में हवा व प्रकाश की व्यवस्था अच्छी होती है जबकि एक भाग में बने कमरों में अगला विश्राम गृह तथा पीछे का भाग स्टोर रूम होता है । यह स्टोर रूम पूर्णतः अन्धकारमय रहता है । अपना गुप्त सामान व पैसा इनके कोनों में रखा जाता हैं । खुले हुए आंगन बड़े-बड़े तथा बन्द आंगन आकार में छोटे होते हैं । बन्द आंगन अधिकतर वर्गाकार या आयताकार होते हैं । आंगन का क्षेत्रफल सामान्यतयः सम्पूर्ण कमरों के क्षेत्रफल के बराबर होता है यदि आंगन चारों तरफ से कमरों से घिरा हुआ होता है तो एक तरफ भोजनालय, दूसरी तरफ विश्राम गृह, तीसरी तरफ जानवरों का आवास व सबसे पीछे स्टोर गृह होता हैं । अधिकतर स्टोर गृह के आगे भोजनालय होता है और तब एक तरफ केवल दीवार होती है । खुले आंगन वाले मकान बिसण्डा, नरैनी, पहाड़ी विकासखण्डों में तथा बन्द आंगन तिन्दवारी, जसपुरा, बबेरू, कमासिन विकासखण्डों में बहुतायतः से देखे जा सकते है । ऐसे मकान ग्राम आवासीय क्षेत्र में बाहर की तरफ बने होते हैं इन दोनों प्रकार के आंगनों में जानवर बांधे जाते हैं तथा पास ही या तो कटिया काटने की मशीन लगी रहती है या गड़ास से कटिया काटने के लिये लकड़ी दबी रहती है । इन आंगनों में जलाऊ लकड़ी, घास इत्यादि रखी रहती है । खुले आंगनों में बैलगाडियां खड़ी रहती है या फिर अन्य कार्य

सम्पादित होते हैं । दोनों प्रकार के घरों की मालियत तथा उनके निवासियों की आमदनी लगभग समान होती है । जानवरों की संख्या भी लगभग बराबर ही होती है । इन घरों में रहने वालों के पास निजी कुएं नहीं होते लेकिन 20 प्रतिशत व्यक्तियों के पास निजी हैण्डपम्प हैं । इनमें बन्द आंगन वालों के पास 16 प्रतिशत व खुले आंगन वालों के पास 4 प्रतिशत हैण्डपम्प की सुविधाएं हैं । ऐसे मकानों की संख्या ग्राम स्तर, विकासखण्ड स्तर व जिले स्तर पर सर्वोच्च है ।

3. **एक आंगन युक्त दो या अधिक परिवारों हेतु कच्चे मकान-** इस तरह के मकानों में चारों तरफ इकहरे या दोहरे कमरे होते हैं । बीच में आंगन होता है । ऐसे मकान जिनमें दो परिवार आमने-सामने के कमरों में या अलग-अलग कमरों में रहते हैं, प्रति परिवार कमरों की संख्या औसतन 4 होती है जबकि 3 या अधिक कमरों वाले मकान में अगला कमरा भोजनालय व बैठने के लिये तथा पिछला कमरा स्टोर रूम व विश्राम गृह के लिए होते हैं । प्रति परिवार कमरों की संख्या औसतन 2 हैं । इनमें मजदूर वर्ग निवास करता है जबकि तीन कमरों या इससे अधिक कमरों की सुविधा वाले मकानों में खेतिहर कृषक निवास करते हैं। इन मकानों में निवासियों का घनत्व अधिक होने से परेशानियों का सामना करना पड़ता है । इनके निवासी सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर होते हैं जिनके पास जगह की कमी होती हैं । इसीलिये खेतिहर कृषक इन मकानों को छोड़कर बाहर खेतों में घर बना लेते हैं । ऐसे मकान गन्दे व विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के अजायबघर की तरह होते हैं । जानवरों के रखने व भूसा भण्डार हेतु इन मकानों में कोई निश्चित स्थान नहीं होता । सामान्यतया जानवर गलियों व रास्तों में बांध दिये जाते हैं । जाड़े की रातें व बरसात के समय जानवर मनुष्यों के साथ ही रहते हैं ।

4. **दो मंजिला कच्चा या एक मंजिला छोटा पक्का मकान-** दोनो प्रकारों के मकानों का भू प्रतिरूप सामान्यत: वर्गाकार होता है । दो खण्डों के मिट्टी के मकान में साधारणतया एक तरफ ही दो खण्ड होते है जो लगभग पीछे वाले कमरे के ऊपर बने होते हैं । इनके नीचे वाला भाग स्टोर रूम होता है तथा इस तरह का 'पटउहा' गर्मी में शीत गृह का काम करता है । एक, दो, तीन या चारों तरफ दो मंजिला वाले मकान अध्ययन क्षेत्र में 50:20, 22: 8 के अनुपात में पाए जाते हैं । ऊपरी मंजिल में भूसा, कण्डे व साधारण स्टोर गृह होते हैं । एक परिवार हेतु दो मंजिला मकान जिसमें बीच में आंगन हो, आठ कमरे सामान्यतय: होते हैं

जिसमें तीन कमरे आमने-सामने तथा दो कमरे बगल में होते हैं । यदि बीच में आंगन नहीं होता तब भू विन्यास योजना में 6 या 4 कमरे तथा रास्ता मध्य में होता है । इन दोनों दशाओं में दो कमरे बीच में होते हैं । प्रथम दशा में (6 कमरे दो लाइनों में) और आंगन कृषि प्रयोजन हेतु प्रयोग किया जाता है । सामने का मध्य कमरा केवल निकलने या बैठने के लिये प्रयोग किया जाता है । इस कमरें से प्रत्येक कमरे में पहुंचा जा सकता है जिसमें आंगन कमरों के बीच बना होता है । जहाँ बीच में कमरे या रास्ते से ही पहुंचते हैं इनके ऊपरी मंजिल को विश्राम गृह या औरतों के विश्राम हेतु प्रयोग किया जाता हैं । कभी-कभी इनमें उप परिवार भी निवास करते हुए मिलते हैं ।

अध्ययन क्षेत्र के मैदानी व खेतिहर भाग में सात प्रकार के मकानों की प्रचुरता है और यह क्षेत्र के प्रतिनिधि मकान कहें जा सकते हैं । इनकी अधिकतर संख्या जसपुरा, तिन्दवारी, बड़ोखर खुर्द, महुवा, कमासिन, बबेरू विकासखण्डों में हैं। बड़े गाँवों व सेवा केन्द्रों में इस प्रकार के मकान देखने को मिलते हैं । इस कोटि के आवासियों के पास मवेशियों हेतु एक अलग मकान भी होता हैं, जहाँ पर जानवर बांधे जाते हैं तथा लकड़ियाँ, ईधन, कृषि यंत्र आदि रखे जाते हैं । अध्ययन क्षेत्र के आन्तरिक भागों में ऐसे मकान देखने को मिलते है । जिनका अगला भाग बरामदा या चहुपार कहलाता है । इस चहुपार के सामने अधिकतर खुला हुआ आंगन या ग्वॉड़ा होता है ।

5. **पक्के मकान**- एक या दो कमरे के पक्के मकान एक परिवार हेतु होते हैं जबकि बड़े या पक्के मकान दो या दो से अधिक परिवारों द्वारा प्रयोग होते हैं। इन सभी में आंगन होता है । इनमें विभिन्न अनुपात (खेतों की मात्रा व गुणवत्ता के आध ाार पर) वाले खेतिहर कृषक निवास करते हैं । छोटे कृषक जिनके पास 30 बीघा असिंचित व 20 बीघा सिंचित भूमि से कम है, एक या दो कमरों वाले पक्के मकान में रहते हैं । इनका भू प्रतिरूप कच्चे मकानों से मिश्रित होकर बनता है जो विभिन्न आकार-प्रकार वाला हो सकता है । गृह संरचना सामान्यत: वर्गाकार होती है । मध यम श्रेणी के कृषक जिनके पास 30 से 60 बीघा असिंचित व 15 से 30 बीघा तक सिंचित भूमि होती है, 3 से अधिक कमरों वाले पक्के मकान में रहते हैं । इनमें रोशनदान, खिड़कियाँ व दरवाजों की उचित व्यवस्था होती है। उच्च श्रेणी के कृषक जिनके पास 60 बीघा असिंचित या 30 बीघा सिंचित भूमि से अधिक होती है । वे बड़े पक्के मकानों में निवास करते हैं । इनका मकान बड़ा होता है जो पूरा पक्का

भी हो सकता है । कमरों की संख्या लगभग 6 होती है । कमरे बड़े-बड़े होते है, जिसमें दो ईट से ढ़ाई ईट मोटी दीवारे होती है, आंगन बड़ा होता है, जिसके चारो तरफ बरामदा होता है । इनका प्रतिरूप भी वर्गाकार होता है । इसके अतिरिक्त 'यू' आकार या आयताकार भी होते हैं । इन मकानों की कीमत कच्चे मकानों की कीमत से लगभग आठ गुनी अधिक होती है । इन मकानों में यदि ग्राम में विद्युत लाइन है तो बिजली की फिटिंग भी होती है । अगले कमरे अतिथि गृह, पिछले कमरे स्टोर रूम व भोजनालय बाई तरफ या दाई तरफ विश्राम गृह तथा शेष तरफ अन्नभण्डार होते हैं । ये गृह सम्पन्न परिवार के द्योतक है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर जनपद के मकानों में विभिन्न क्रम में सामाजिक संरचना मिलती हैं । जिसको तालिका संख्या 6.4 में दर्शाया गया है।

1. **कृषि व खेतिहर मजदूर तथा लघु श्रेणी के कृषक तथा बटाईदार कृषक-** ये लोग छोटे या कच्चे मकानों में निवास करते है जिनकी निर्माण लागत लगभग 2500/- रूपये होती है । इस श्रेणी में हरिजन व पिछड़ी जातियों के लोग शामिल है, जो मजदूरी, बटाईदारी, पट्टे पर प्राप्त भूमि पर कृषि व कारीगरी (बर्तन बनाना, लकड़ी का सामान बनाना) तथा अन्य सेवा जातियाँ जैसे- नाई, भरभूंजा, डोमार, आदि निवास करती हैं । इनकी मासिक आमदनी 200/- रूपया तक होती है ।

2. **छोटे व मध्यम श्रेणी के कृषक, कारीगर, कृषक मजदूर व अन्य**-कारीगर, कृषक, मजदूर तथा कृषक मजदूर व कारीगर (खटिक) कच्चे व छोटे मकानों में निवास करते है जबकि बन्द आंगनयुक्त एक मंजिला कच्चे मकानों में खेतिहर कृषक व लघु कृषक निवास करते हैं । परिवार वृद्धि, बटवारा तथा पैतृक घर के हिस्से हो जाने से इनके घर छोटे हो जाते हैं । इसी श्रेणी के लोगों की मासिक आमदनी 2500/- रूपया है ।

3. **छोटे व मध्यम श्रेणी के कृषक-** दो मंजिला कच्चे मकानों में रहने वाले ग्रामीण परिवार पैतृक और कुछ बटाई की भूमि पर खेती करते हैं । साथ-साथ पशुपालन कार्य भी करते है जबकि एक मंजिला पक्के मकानों में छोटे व अपनी पैतृक कृषित भूमि पर कृषि कार्य करने वाले कृषक निवास करते है । इनकी मासिक आमदनी 3000/- रूपया के लगभग होती है ।

4. **मध्यम व बड़े कृषक-** ये लोग वृहद कच्चे मकानों व पक्के मकानों में निवास करते हैं । इनकी मासिक आय 5000/- रूपया से 12000/- रूपया या इससे अधिक होती है ।

वर्तमान गृह स्वरूप- बाँदा जनपद के वर्तमान गृह, भूतकाल की सांस्कृतिक धरोहर एवं परम्परात्मक जागृति के द्योतक हैं । मकानों की निर्माण शैली, भूविन्यास योजना, आकार व स्वरूप, क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक तथा अन्य सांस्कृतिक तत्वों से निर्धारित होती है । इसे गृह दृश्यावली के विच्छेदन से भलीभाँति जाना जा सकता है । यद्यपि ग्राम गृहों की कुछ सामान्य दृश्यावलियाँ, क्षेत्र के भौगोलिक व्यक्तित्व को व्यक्त करती हैं ।

अध्ययन क्षेत्र मे मकानों की सामान्य दृश्यावलियाँ- (Some Common Features of the Dwellings in the Study Area)

भारतीय गृहों की परम्परा में आंगन का घर की अपेक्षा अत्यधिक केन्द्रीय महत्व है। अध्ययन क्षेत्र में बन्द आंगन को बखरी तथा खुले आंगन को ग्वाड़ा कहते हैं ।

बखरी (आंगन) चारों तरफ से दीवारों से घिरा हुआ भाग होता है, जिसके एक, दो, तीन या चारों तरफ कमरे या बरामदे हो सकते है । इसका प्रतिरूप आयताकार या वर्गाकार होता है । इसके चारो तरफ के दरवाजे या मोहार (बिना दरवाजे वाले) होते हैं जो कमरों को जोड़ते है यदि चारों तरफ कमरे हैं ।

एक या दोनों तरफ कमरे वाले मकानों में शेष तरफ केवल दीवारें होती हैं जो घर में गुप्तता व सुरक्षा प्रदान करती हैं । इसी प्रकार के लक्षण अन्य क्षेत्रों में भी देखने को मिलते हैं । इनमें बच्चों की देखभाल, सेवा व परिवार की गुप्तता को कायम रखा जाता है । इसके अलावा बड़े व धनी परिवारों में पर्दा नसीन औरतें यहाँ खुले वातावरण में काम करती व रहती है । इसके एक किनारे पर स्नान करने का स्थान होता है तथा पास ही एक गड्डा नांद गाड़कर या पक्का बनवाया जाता है, जिसमें पानी भरा रहता है । इसमें जूठे बर्तन डाल दिये जाते हैं व इसी के पास बर्तन मले जाते हैं । दूसरे कोने में दूध पकाया जाता है व खुले मौसम में खाना भी बना लिया जाता है । ये आंगन रात में (गर्मियों में) सोने के लिये भी प्रयोग किये जाते हैं । खुला स्थान होने के कारण सूर्य की रोशनी से सारा घर प्रकाशित रहता है व औरतें जाड़े में धूप लेती हैं । गरीब व्यक्ति इन आंगनों में अपने कृषिगत औजार, चारा रखने व पशुओं को बांधने के लिये भी प्रयोग करते हैं । इन्हीं आंगनों (बखरी) मे सभी प्रकार के धार्मिक (पूजा कथा आदि) व सांस्कृतिक (विवाह, मुण्डन आदि) क्रियाकलाप सम्पादित किये जाते है ।

गृह दृश्यावली का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण आन्तरिक व बाह्य बरामदा होता है । आन्तरिक बरामदा कमरे के आगे आंगन की लम्बाई या चौड़ाई या चारो

तरफ होता है । इसमें स्त्रियां विभिन्न कार्यकलापों को सम्पादित करती हैं । स्थायी भोजनालय इसी बरामदे में बनाया जाता है जो सामान्यतया पीछे वाले कमरे के सामने होते है । बाहरी बरामदा मध्य में रास्ते के कारण दो भागों में बट जाता है जिसको बैठका कहते है । इसमें मेहमानों, रिश्तेदारों व अतिथियों को बैठाया जाता है व इसमें कुछ चारपाइयाँ पड़ी होती हैं जिसमें विश्राम किया जाता है । सुरक्षा व गुप्तता के कारण अब इन बरामदों में दरवाजें भी लगवाये जाने लगे हैं । घर का मुखिया इन्हीं बरामदों में विश्राम करता व सोता है । लोहार, सोनार, बढ़ई, चमार व कुम्हार आदि कारीगर जातियाँ इन बरामदों को व्यावसायिक कार्यो हेतु प्रयोग करती हैं । गरीब व्यक्ति इन बरामदों के एक भाग को चारा रखने व बनाने तथा दूसरे भाग को जानवरों को बांधने हेतु प्रयोग करते हैं । इन बरामदों के सामने चबूतरा होता है जिसमें पुरूष गर्मियों के समय रात्रि में सोते हैं ।

अन्य महत्वपूर्ण दृश्यावली पटउहा (घर का पिछला कमरा) होता है। यह घर के सबसे पीछे होता है । यह एक स्टोर रूम का कार्य करता है जहाँ पर दाल, आटा, गुड़, नमक आदि आवश्यक वस्तुओं के अलावा खाद्यान्न उत्पादन को भी रखा जाता है । साधारणतया इसके ऊपर अटारी देखने को मिलती है । ये पटउहा ग्रीष्म ऋतु के शीत गृह होते हैं जहाँ पर भीषण गर्मी से राहत मिलती है । अटारी में साधारणतया भूसा भरा जाता है । घर के सामने एक चबूतरा आकार में छोटा या बड़ा बना होता है जहाँ सुबह-शाम घर के बुजुर्ग व्यक्ति बैठते है। जानवरों के भूसा को सानने का कार्य इन्हीं चबूतरों में किया जाता है । ये चबूतरे वर्षा ऋतु में दीवारों की सुरक्षा भी करते हैं । इनका चबूतरा रास्तें की तरफ बढ़ता रहता है । जो कभी-कभी आवागमन को भी अवरूद्ध कर देता है तथा रास्ता, गली (पतला रास्ता या कुलिया) में परिवर्तित होने लगता है ।

मकान की फर्श सामान्यत: कच्ची होती है । जिसको घर की महिलाएं गोबर से लिपाई करके शुद्ध कर देती हैं । दीवारें मिट्टी की या कच्ची ईंटों की या पक्की ईंटों से निर्मित होती हैं । पक्के मकानों को छोड़कर सभी दीवारें मोटी होती है जिन पर मिट्टी का लेप होता है । मिट्टी की दीवार ग्रामीण स्वयं निर्माण कर लेते हैं । जिसमें मिट्टी को पहले तैयार किया जाता है फिर उसके लोंदे बनाकर एक के ऊपर दूसरा जोड़ते हुए दीवार बनाते हैं । घरों पर खप्पर छायें जाते है जो लकड़ी के लट्ठों व अन्य वनस्पतियों से बने हुए ठांठ पर रखे होते हैं । इनमें क्रमिक ढ़ाल होता है जिससे पानी तुरन्त बहकर नीचे आ जाता है।

गृहों की सामान्य आकारिकी (General Marphology of the Dwellings)

ग्रामीण घरों की आधारभूत इकाई 'मकान' आयताकार होता है जो ग्राम्य स्थापना से वर्तमान समय तक ग्रामीण गरीब परिवारों का निवास स्थल है। एक कमरे के निवास स्थल के सामने एक ऊँचा चबूतरा होता है। कभी-कभी इसमें एक बरामदा जिसकी लम्बाई 5 से 7 मीटर तथा चौड़ाई 2 से 3 मीटर तक कमरे के अनुसार होती है। एक कमरे वाला निवास स्थल आवास की बढ़ती हुई आवश्यकता या जानवरों की संख्या में वृद्धि से दो कमरे वाले निवास स्थल में बदल जाता है। इस तरह के मकान रैखिक आकारिकी वाले होते हैं जिनकी शक्ल 1 की तरह होती है जबकि तीन कमरों वाले निवास स्थल की आकृति 'एल' आकार वाली होती है जिसमें तीसरा मकान पुरूषों द्वारा बैठने, विश्राम करने व सोने हेतु प्रयोग किया जाता है। तीन कमरों वाले मकान की आकृति 'यू' आकार की भी देखी जाती है। चार कमरे वाला मकान 'यू' आकार वाला या वर्गाकार व आयताकार होता है। 'यू' आकार वाले तीन तरफ कमरे व निकास की तरफ केवल दीवार होती है जिससे आंगन की गुप्तता कायम रखी जाती है। वर्गाकार-आयताकार मकानों में चारों कमरे चारों तरफ होते हैं। बरामदा या छपरा एक ओर से लगाकर चारो तरफ हो सकता है लेकिन चार कमरे वाले मकान में यह बरामदा अधिकतर दो तरफ से मिलता है जिसके बनाने का प्रमुख कारण बरसात में दीवार पर पानी न पड़ने देना है। पाँच कमरे वाला मकान आयताकार-वर्गाकार होता है जिसमें आंगन पूर्णतया बन्द होता है। गृहों की सामान्य आकारिकी को दर्शाने हेतु ग्राम बसरेही का चयन किया गया है।

बसरेही (Basrehi)

ग्राम बसरेही में ब्राह्मण, यादव, कायस्थ, बढ़ई, कहार, कुम्हार, नाई, जमादार तथा मुस्लिम जातियाँ निवास करती हैं (चित्र संख्या- 6.2)। यह जातियाँ विभिन्न सामाजिक-आर्थिक क्रियाओं में संलग्न हैं। यह जातियाँ 155 गृहों में निवास करती हैं। ग्राम में चमारों की संख्या सर्वाधिक है जो 62.0 प्रतिशत ग्राम्य गृहों में निवास करते हैं। गृहीय संरचना के अध्ययन से स्पष्ट है कि सभी गृह अनियोजित ढंग से बने हुए हैं। गृहीय क्षेत्रफल असमान है। स्वच्छता एवं सफाई का पूर्णत: अभाव है। रास्ते व गलियों की चौड़ाई असमान है। यह मुख्यत: प्राकृतिक रास्ते हैं जिनमे इधर-उधर जल भरा रहता है (मिश्र, 1986)। गृहीय संरचना के अनुसार 78.85 प्रतिशत कच्चे मकान जिनकी दीवारें मिट्टी तथा छतें

VILLAGE BASRAHI, 1998
RACIAL STRUCTURE
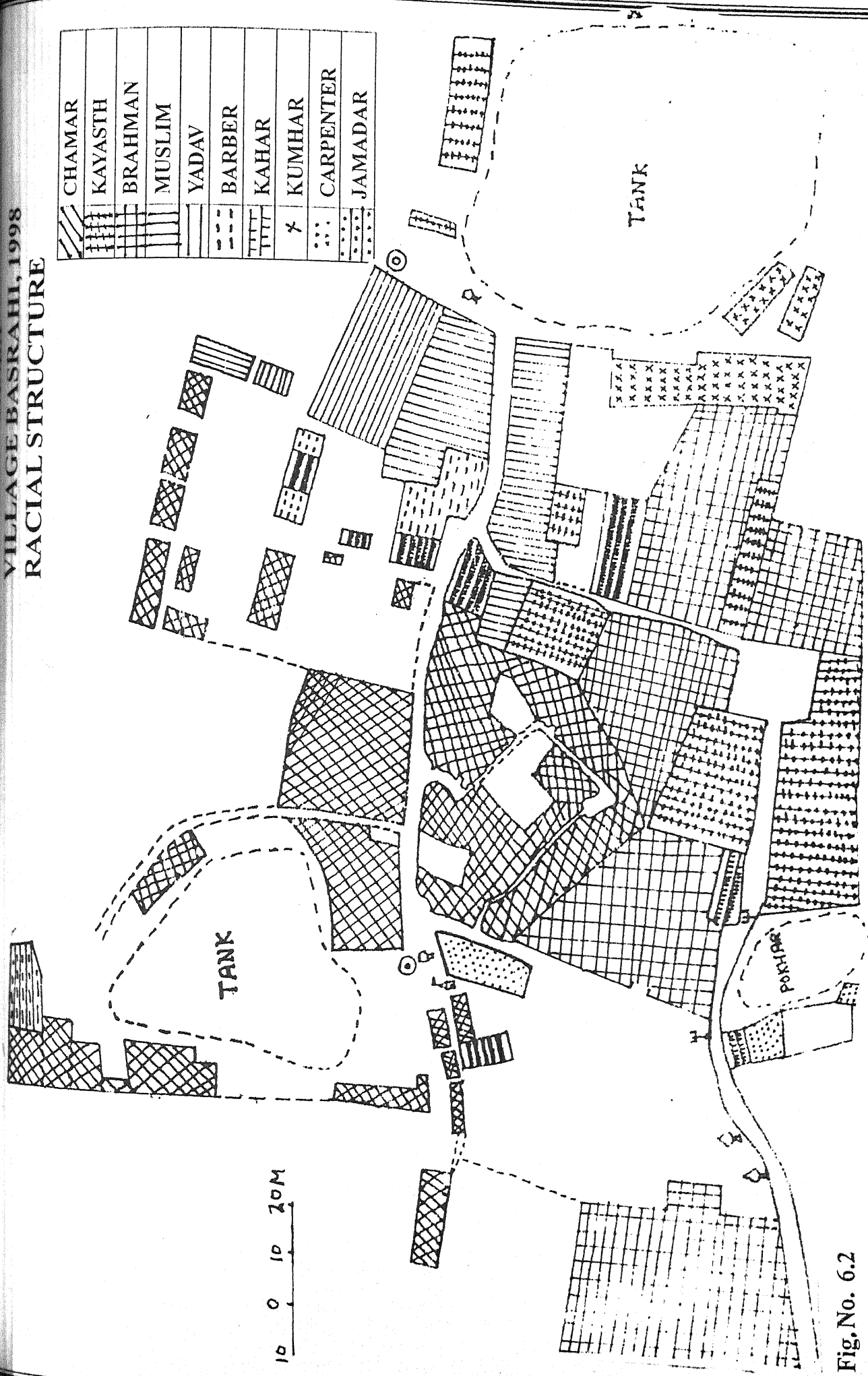
Fig.No. 6.2

खपरैल से निर्मित हैं । 9.75 प्रतिशत मकान पक्के व 11.40 प्रतिशत मकान कच्चे-पक्के मिश्रित हैं (चित्र संख्या- 6.3) । कृषि अर्थव्यवस्था की प्रधानता के कारण इस गांव की कार्यात्मक संरचना विशेष जटिल नहीं है । यहाँ के 60 प्रतिशत से अधिक गृहों का उपयोग मिश्रित कार्यों (रिहायसी, पशुशाला, भण्डारण आदि) में किया जाता है (चित्र संख्या- 6.4) । गांव के 69.0 प्रतिशत गृहों का वातावरण दूषित है जिनमें सफाई का अभाव है । यहाँ पर दो या तीन कमरों की रिहायसी सुविधा वाले मकानों की अधिकता है । प्रति गृह औसत 6 मनुष्य निवास करते हैं।

References

1. Brunhes, J. (1922) : Human Geography, London, P. 128.
2. Dicken, S.N. and Pills, F.R. (1963) : Introduction to Human Geography, New York, PP. 539-577.
3. Finch, V.C. and Trewartha, G.T. (1946) : Elements of Geography : Physical and Cultural, New York, P. 553.
4. Kariel, H.G. and Kariel, P.E. (1972) : Exploration in Social Geography, London, P. 8.
5. Kniffen, F.B. (1965) : Folk Housing : Key to Deffusion, Annals, A.A.G.55, P. 549.
6. मिश्र, कृष्ण कुमार (1986) : बाँदा जनपद के बसरेही ग्राम का भौगोलिक अध्ययन, विकासशील भूगोल पत्रिका, पृष्ठ-39-42 ।
7. Rapaport, A. (1969) : House Forms and Culture, Prentice Hall, P. 69.
8. Singh, R.L. (1972) : Rural Settlement in Monsoon Asia N.G.S.I. Varanasi.

VILLAGE BASRAHI, 1998
FUNCTIONAL STRUCTURE
BARA (for Cattle)
GHAR (for Man)
GHAR+BARA
SHOPS
TEMPLE
SCHOOL
TANK
TANK
M.
0
10
20M.

Fig.No. 6.3

DISTRICT - BANDA
VILLAGE BASRAHI, 1998
HOUSE STRUCTURE
KACHCHA HOUSE
PACCA HOUSE
PACCA+KACHCHA
TANK
TANK
POKHARI
M 10 0 10 20 M.

Fig No. 6.4
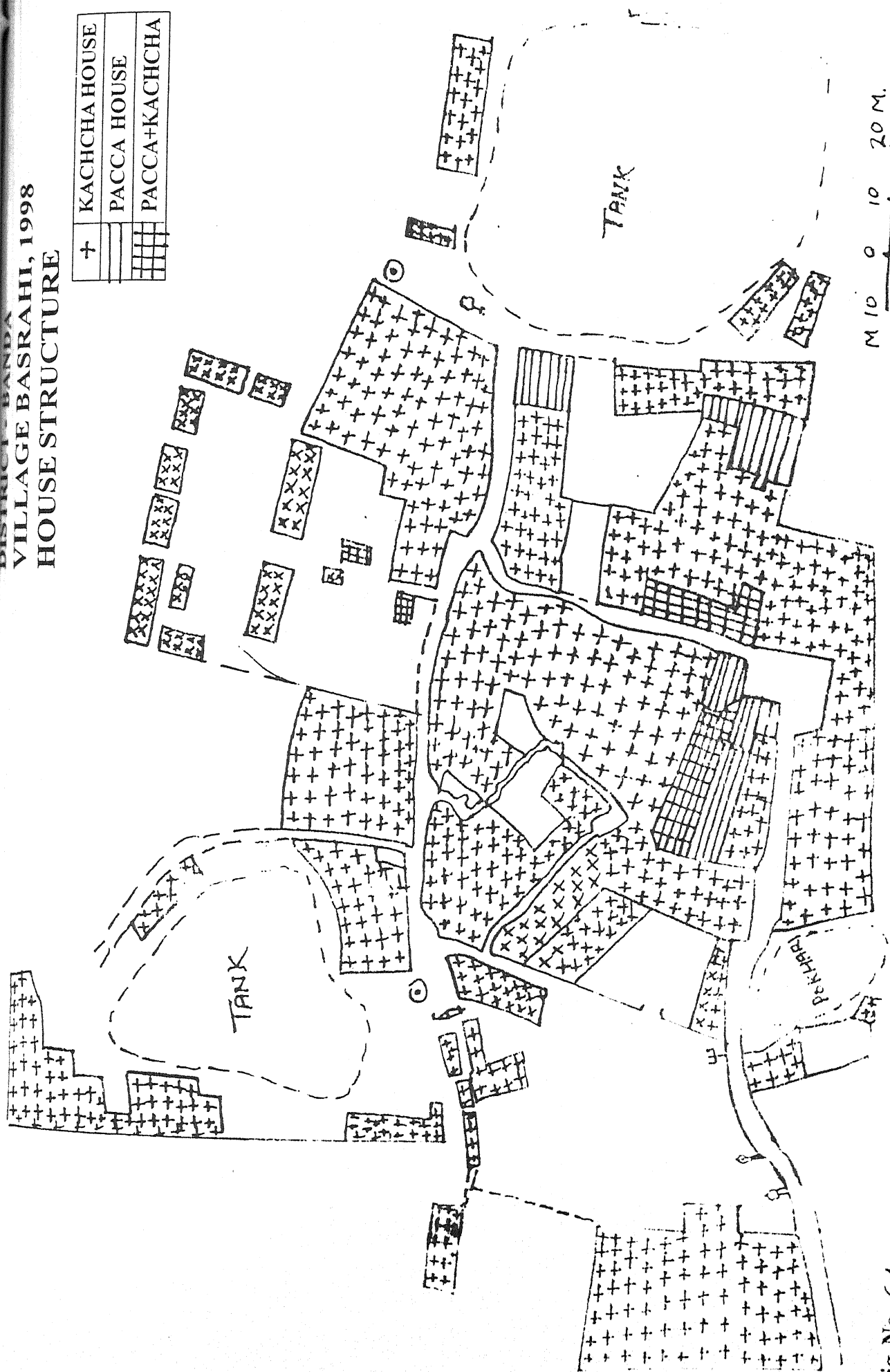
अध्याय 7
ग्रामीण सेवा केन्द्र
(RURAL SERVICE CENTRES)

ग्रामीण सेवा केन्द्र
(RURAL SERVICE CENTRES)

पूर्ववर्ती अध्याय में ग्रामीण निवास स्थल जोकि सांस्कृतिक भूदृश्यावली के महत्वपूर्ण प्राथमिक तत्व है, के विभिन्न पक्षों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । इस अध्याय में ग्राम्य जनों की विविध सुविधाएँ प्रदान करने वाले ग्रामीण सेवा केन्द्रों की व्याख्या की गई है । इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण सेवा केन्द्रों की प्रमुख विशेषताओं, उद्भव एवं विकास, कार्य एवं कार्यात्मक पदानुक्रम, स्थानिक सम्बन्ध या सेवा क्षेत्र आदि के सम्बन्ध में अध्ययन करना है । यह केन्द्र गांवों के विकास में अहम् भूमिका निभाते हैं जिनसे चारों ओर विकासात्मक लहरें उद्वेलित होती रहती हैं । नीचे से ऊपर एवं ऊपर से नीचे उपागमों के मध्य उत्पन्न विचार-विमर्श से यह आवश्यक हो गया है कि कृषि प्रधान ग्रामीण क्षेत्र के लिए एक ऐसी वैज्ञानिक रणनीति का विकास किया जाय जिसका गांवों से नजदीकी सम्बन्ध हो तथा ग्रामीणों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो (उर्स एवं मिश्र, 1979) । इस दृष्टि से सेवा केन्द्र को एक वैकल्पिक रणनीति के रूप में समझा जाता है । विकासशील अर्थव्यवस्था में ग्रामीण बाजार तथा कस्बे सेवा केन्द्रों का कार्य करते हैं तथा व्यापारिक क्रिया को सम्पन्न करने हेतु स्थानिक, क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक कार्यों के विश्लेषण में सेवा केन्द्रों के वंशानुगत अंग बन गए हैं । अस्तु इन्हें आवर्ती केन्द्र स्थल भी कहा जा सकता है । ग्रामीण सेवा केन्द्र वह बस्ती है जो अपने विभिन्न सेवा कार्यो के माध्यम से समीपवर्ती क्षेत्र को विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करती है (मिश्र, 1981) ।

वस्तुतः सेवा केन्द्र अपने समीपवर्ती चारों तरफ घिरे हुए क्षेत्र में कार्यो या सेवाओं की कोटियों के आधार पर निर्मित होते हैं । ये सेवा केन्द्र अपने समीपस्थ क्षेत्र के निवासियों को उनकी आवश्यकतानुसार भौतिक-सांस्कृतिक-सामाजिक भूदृश्यावली के अनुरूप सेवा प्रदान करते व विकसित होते हैं । सेवा केन्द्र केन्द्रियता के अनुसार विभिन्न आकार वाले होते हैं । वह स्थायी अधिवास, जो निश्चित केन्द्रीय कार्यों व सेवाओं के द्वारा चारो तरफ घिरे हुए क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तथा एक ओर निम्न ग्रामीण उपभोक्ताओं तथा दूसरी ओर उच्च कोटि के सेवा केन्द्रों से सम्बन्धित होते हैं, वर्तमान उद्देश्य की पूर्ति हेतु ग्रामीण सेवा केन्द्र माने जा सकते हैं । ग्रामीण सेवा केन्द्र- गाँवों तथा नगरों के मध्य कड़ी

का कार्य करते हैं । स्थानिक स्तर पर नवाचारों के विसरण एवं कार्यो के क्षैतिजीय विसरण में इनकी अहम् भूमिका होती है । वास्तव में यह केन्द्र विकास एवं आधुनिकीकरण के एजेन्ट के रूप में विकास नीति व कार्यों को सम्पादित करते हैं, इस दृष्टि से इन ग्रामीण सेवा केन्द्रों का सर्वोच्च महत्व है ।

केन्द्रीय स्थान का तात्पर्य क्षेत्र को सेवा प्रदान करने वाले केन्द्र से है इसके लिये आवश्यक नहीं है कि यह क्षेत्र के केन्द्र में हों लेकिन इनकी स्थिति केन्द्रीय महत्व की होनी चाहिए और चारों ओर के नियन्त्रित क्षेत्रों के निवासियों के लिये यह कुछ निश्चित प्रकार्य सम्पन्न करते हों । ऐसे केन्द्रीय स्थल स्थायी मानव प्रतिष्ठान के रूप में परिभाषित किये जा सकते हैं, जहाँ पर वस्तुओं/सेवाओं तथा सामाजिक प्रकृति की आवश्यकताओं का विनिमय होता है (सिंह, 1971) । यह स्थल न केवल अपनी जनसंख्या बल्कि अपने प्रदेश के निवासियों के लिये भी अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं ।

संकल्पना तथा पूर्ववर्ती योगदान (Concept and Previous Contribution)

सर्वप्रथम जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान वानथ्यूनेन (1826) ने स्थिति सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए सेवा केन्द्रों की व्याख्या की । यद्यपि इनका सिद्धान्त कृषि के स्थानीयकरण की विशद ब्याख्या करता है फिर भी इससे सेवा केन्द्रों की स्थिति, उद्भव व विकास तथा पदानुक्रम पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । इसमें सेवा केन्द्रों की परिकल्पना उत्पादक क्षेत्र के मध्य में की गयी है जिसका सेवा क्षेत्र केन्द्र के चतुर्दिक विस्तृत है और वह बाजार का कार्य करता है । इनके पश्चात् कोल (1841), कूले (1894) ने अधिवास अध्ययन में इसका अनुकरण किया । गालपिन (1915) ने संयुक्त राज्य अमेरिका के ग्रागर अथवा सेवा केन्द्रों की भूमिका तथा स्तर पर पर्याप्त प्रकाश डाला । इन्होंने कई केन्द्रीय कार्यो पर विचार किया जो सेवा केन्द्रों के अस्तित्व के लिये बहुमूल्य हैं । सेवा केन्द्रों के व्यवस्थित अध्ययन की शुरूआत 1933 में क्रिस्टालर के कार्यो के पश्चात् हुई । इन्होंने नगरों को केन्द्रीय स्थल के रूप में पहचाना जो अपने चतुर्दिक फैले हुए क्षेत्र को सेवाएं प्रदान करते थे तथा जिसके लिये यह सेवा केन्द्र विभिन्न प्रकार के सामान व सेवा कार्यो की व्यवस्था करते थे । इन्होंने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला कि छोटे सेवा केन्द्रों की तुलना में बड़े सेवा केन्द्रों का व्यापार क्षेत्र बड़ा होता है । इन व्यापार क्षेत्रों की आकृति की कल्पना इन्होंने षटकोण के आधार पर की है । क्रिस्टालर ने केन्द्रीय स्थल मण्डलों के निर्धारण हेतु बाजार सिद्धान्त, यातायात सिद्धान्त तथा प्रशासनिक

सिद्धान्त के पदानुक्रमीय व्यवस्था प्रदान की । इन उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों पर विकसित केन्द्र-स्थल मण्डलों में निम्नतम् स्थल के सेवा केन्द्रो की व्यवस्था तथा समावेश की व्यवस्थाएं भिन्न-भिन्न होती है (बेरी एवं प्रेड, 1961) । इसके पश्चात् आगस्ट लॉश (1954) ने क्रिस्टालर के केन्द्र स्थलों का एक संक्षिप्त मॉडल प्रस्तुत किया हैं । इनके अनुसार किसी मैदानी प्रदेश में जहाँ चारो ओर गम्यता समान हो, वहाँ सेवा केन्द्रों की त्रिभुजाकार व्यवस्था तथा व्यापार क्षेत्र षटभुजीय रूप में मिलता है । बेरी तथा गैरिसन (1959) ने असमान अभिकल्पनाओं के अन्तर्गत सेवा केन्द्रों की संकल्पना का पुनः सूत्रीकरण किया । इससे सम्बन्धित कुछ अन्य कार्य ब्रश (1953), गुनावार्डेना (1964), गिलवर्ट (1970), मेफील्ड (1960) और फोक (1968) इत्यादि द्वारा किये गये । इन विद्वानों ने अपने अध्ययनों द्वारा सेवा केन्द्रों के विविध पक्षों यथा- कार्यो, कार्यात्मक पदानुक्रम तथा जनसंख्या आकार के बीच स्थित सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । इन अध्ययनों के अलावा अनेको शोध कार्य और भी किये गये हैं जिनमें कुछ अन्य महत्वपूर्ण विचारधाराओं का समावेश है । ये नवीनतम मत उपभोक्ताओं के व्यवहार प्रतिरूप से सम्बन्धित हैं। बेरी बरनम और टीनेन्ट (1962), मुर्डे (1965) तथा रस्टन (1969) आदि नवीन संकल्पनाओं के प्रमुख शिल्पी हैं । पेराक्स (1955) का मत है कि क्षेत्रीय विकास सम्बन्धी कार्य वृद्धि ध्रुव प्रणाली के माध्यम से सम्पन्न होते हैं जिसे आगे चलकर अन्य विद्वानों ने परिवर्तित करके प्रस्तुत किया । इस दृष्टि से बाडविले (1966) द्वारा किया गया अध्ययन अति महत्वपूर्ण है । विकासात्मक संचार संकल्पना का प्रतिपादन मीरडाल (1957) तथा हार्षमैन (1969) द्वारा किया गया । हेगरस्ट्रैन्ड (1957) द्वारा प्रस्तुत नवाचारों के भौगोलिक विसरण का सिद्धान्त सेवा केन्द्रो की पुरानी संकल्पना में क्रान्ति ला दी है । फ्रीडमैन (1975)द्वारा प्रस्तुत ग्राम समूहन उपागम तथा मिश्र (1974, 1981) का बृद्धि केन्द्र विकास उपागम सेवा केन्द्र की संकल्पना में कुछ नवीनतम योगदान के रूप में माने जाते हैं ।

सेवा केन्द्र के सम्बन्ध में अधिकांश भारतीय विद्वानों की भूमिका किसी सैद्धान्तिक आधार की तुलना में वर्णनात्मक अधिक रही है । यह कहा जाता है कि पदानुक्रम के निम्न स्तर को भारतीय भूगोलवेत्ताओं द्वारा कम महत्व दिया गया है (सिंह, 1973) । यह सेवा केन्द्रों के संकल्पनात्मक साहित्य की कमी को दर्शाता है । विद्वानों के एक वर्ग ने सेवा केन्द्रों का अध्ययन विशेषत: उनकी विपणन प्रणाली के सन्दर्भ में किया है । इस क्षेत्र में कृष्णन (1932), देशपाण्डेय (1941),

पटनायक (1953), पटेल (1963), तामस्कर (1960), मेंहदी रजा (1971), सिंह (1962), मुखर्जी (1968), जेना (1975), दीक्षित (1988), इसीहारा (1991), बनमाली (1981) तथा मिश्र (1997) आदि द्वारा किये गये कार्य महत्वपूर्ण हैं ।

द्वितीय वर्ग के विद्वानों ने अलग-अलग व्यक्तिगत सेवा केन्द्रों को अध ययन हेतु लिया है जिसमें जायसवाल (1962), नील (1965), लाल (1968), सिंह (1961), आदि प्रमुख हैं । इस प्रकार के अध्ययनों में मुख्यतः व्यक्तिगत सेवा केन्द्रों की सामान्य विशेषताओं की व्याख्या की गयी है । कुछ भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने सेवा केन्द्रों के स्थानिक प्रतिरूप के सम्बन्ध में अध्ययन किया है । इनमें सिंह (1966), मुखर्जी (1969), कृष्णन (1978), मिश्र (1980), मिश्र (1990) का उल्लेख करना अति आवश्यक है । यह भी महत्वपूर्ण है कि सेवा केन्द्रों की स्थानीय दूरी तथा विसरण का अध्ययन क्षेत्र में सेवा केन्द्रों की रिक्तता एवं अतिव्याप्तता के परीक्षण के लिये आवश्यक है किन्तु इस दिशा में अभी तक पर्याप्त अध्ययन नहीं हो सके हैं ।

कार्यात्मक पदानुक्रम और कार्यो तथा कार्यात्मक इकाइयों व जनसंख्या आकार के मध्य सम्बन्ध ज्ञात करना वर्तमान समय के शोधकार्य में लोकप्रिय विषय है । अस्तु इस सम्बन्ध में कई अध्ययन किये गये हैं । यथा- प्रकाशराव (1964), वनमाली (1970), मिश्र (1976), मिश्र (1986, 1987), पटेल (1993) तथा खान (1993, 1995) आदि मुख्य हैं ।

रॉय तथा पाटिल (1977), भट्ट (1976), मिश्र (1972), सिंह (1973), सुन्दरम् (1979), तथा मिश्र (1987) ने सेवा केन्द्रों को पहचानने तथा प्रादेशिक विकास योजना के लिये बहु वृत्तखडीय उपागम की समस्याओं का अलग-अलग अध्ययन किया है । सेन (1971), वनमाली (1972), सिंह (1973), मिश्र (1981, 1987, 1992), खान (1987) तथा गुप्त (1993) ने सेवा केन्द्रों के निश्चित क्षैतिज सम्पर्को और लोगों के एक विशेष केन्द्र को आने जाने में स्थान सम्बन्धी व्यवहार को क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत किया है । एक कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था वाले ग्रामीण समुदाय के लाभ के लिये सेवा केन्द्र विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यो को सम्पादित करते हैं, उनमें से एक कार्य नवाचारों का विसरण भी है । मिश्र (1971) इस क्षेत्र में पुनः अग्रगामी अन्वेषक साबित हुए है । जिन्होंने इस क्षेत्र में अनेकों श्रेष्ठ शोध पत्र व पुस्तकें लिखी हैं । बाद मे शिवागंनम (1976), मनोरमा सिन्हा (1982), मिश्र (1995) आदि द्वारा इस दिशा में प्रस्तुत कार्य सराहनीय हैं ।

ग्रामीण सेवा केन्द्रों की पहचान- वस्तुतः सेवा केन्द्रों की पहचान से तात्पर्य उन अधिवासों के चयन से है जो अपने आस-पास स्थित क्षेत्र को विभिन्न प्रकार की

सेवाएं प्रदान करते हैं । क्षेत्र में स्थित विभिन्न अधिवासों में सम्पन्न होने वाले महत्वपूर्ण कार्यो के विस्तृत विश्लेषण द्वारा सेवा केन्द्रों को पहचाना जा सकता है। ग्रामीण सेवा केन्द्रों के निर्धारण के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग किया है लेकिन अभी तक सर्वमान्य विधि प्राप्त नहीं हो सकी है । केन्द्रीयता का मापन सभी केन्द्रों मे समान नहीं होता क्योंकि प्रत्येक केन्द्र में सम्पादित होने वाले कार्यो में अत्याधिक विभिन्नता पायी जाती है । क्रिस्टालर (1933) ने पश्चिमी जर्मनी के केन्द्रीय स्थानों की पहचान व पदानुक्रम, हेतु टेलीफोन सेवाओं का प्रयोग किया है । इस हेतु इन्होंने निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया।

$$Z_z = T_z \left(E_z \frac{Tg}{Eg}\right)$$

जहाँ, Z_z = केन्द्रीय सूचकांक;

T_z = केन्द्रीय स्थानों में टेलीफोनों की संख्या;

E_z = केन्द्रीय स्थानों की जनसंख्या;

T_g = क्षेत्र में टेलीफोनों की संख्या;

E_g = क्षेत्रीय निवासियों की संख्या ।

कुछ विद्वानों ने सेवा केन्द्रों के निर्धारण के लिये जनसंख्या को मानक के रूप में माना है । प्रदीप्त रॉय एवं पाटिल (1977) ने 1000 की जनसंख्या की सीमा को किसी बस्ती के लिये सेवा केन्द्र होने के लिये रखा, वशर्ते वह अन्य कार्यों को पूरा करने की योग्यता भी रखती हो । मिश्र एवं सुन्दरम् (1976) ने सेवा केन्द्रों के लिये 5000 हजार जनसंख्या की सीमा को रखा है । गुरूभाग सिंह(1973) ने पंजाब के अम्बाला जिले में सेवा केन्द्रों के निर्धारण के लिये स्वास्थ्य संचार, विपणन, यातायात तथा अन्य कार्यो के साथ-साथ प्राथमिक पाठशाला को भी निर्धारण में सम्मिलित किया है जो कि सब जगह पहले उपलब्ध नहीं थी । वर्तमान में यह सेवा कार्य लगभग सब जगह उपलब्ध है । मिश्र (1981) ने हमीरपुर जनपद के सेवा केन्द्रों के निर्धारण में कार्यो को महत्प प्रदान किया है । इनके अनुसार यदि किसी केन्द्र में शिक्षा, चिकित्सा, संचार, विपणन में कोई दो केन्द्रीय कार्य पायें जाते हों तो उसे सेवा केन्द्र माना जा सकता हैं ।

ग्रामीण सेवा केन्द्रों के अभिज्ञान हेतु उपर्युक्त विद्वानों अपनाई गई विधियों को ध्यान में रखते हुए अध्ययन क्षेत्र में सेवा केन्द्रों के निर्धारण हेतु सबसे पहले 1991 की जनगणना के आधार पर सभी गांवों में सम्पन्न होने वाले कार्यों को सूचीबद्ध किया गया । तत्पश्चात् कार्यो को पांच समूहों शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन एवं संचार, व्यापार एवं वाणिज्य तथा प्रशासन एवं पुलिस सेवाओं के

अन्तर्गत विभक्त किया गया । इन पांच समूहों के अन्तर्गत 24 सेवाओं को सेवा केन्द्रों के निर्धारण हेतु शोध में सम्मिलित किया गया जिसे सारणी संख्या- 7.1 में दर्शाया गया है और उन अधिवासों को ग्रामीण सेवा केन्द्रों की श्रेणी में रखा गया है जो निम्नलिखित मानक की पूर्ति करते हों -

1. वह एक स्थायी अधिवास हो;
2. पांच कार्य समूहों में सम्पन्न होने वाले समस्त 24 कार्यों में से 6 कार्य उस बस्ती में सम्पन्न होते हों ।

तालिका संख्या- 7.1

केन्द्रीय सेवाओं एवं सेवा समूहों की सूची

श्रेणी	सेवा-समूह	सेवा कार्य
1	शिक्षा	1. जूनियर हाई स्कूल
		2. हाई स्कूल
		3. इण्टर कालेज
2	चिकित्सा	4. दवा विक्रेता/दवाखाना
		5. पशु चिकित्सालय/पशु सेवा केन्द्र
		6. चिकित्सालय
		7. जच्चा-बच्चा केन्द्र
		8. परिवार नियोजन केन्द्र
		9. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र
3	परिवहन एवं संचार	10. बस स्टाप
		11. रेलवे स्टेशन
		12. शाखा डाक घर
		13. उप डाक घर
		14. टेलीफोन इक्स्चेन्ज कार्यालय
		15. टेलीग्राफ आफिस
4	व्यापार एवं वाणिज्य	16. बाजार
		17. गल्ला विपणन केन्द्र
		18. समिति
		19. सहकारी या ग्रामीण बैंक
		20 राष्ट्रीयकृत बैंक
5	प्रशासन एवं पुलिस सुविधाएँ	21. न्याय पंचायत
		22. विकासखण्ड
		23. पुलिस चौकी
		24. पुलिस स्टेशन

इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में 97 ग्रामीण सेवा केन्द्रों की पहचान की गयी है जिसे सारणी संख्या 7.4 में प्रदर्शित किया गया है । जनसंख्या की दृष्टि से क्षेत्र का सबसे छोटा सेवा केन्द्र करहुली (1155) तथा सबसे बड़ा सेवा केन्द्र कमासिन (8184) है।

वर्तमान अध्ययन में ग्रामीण सेवा केन्द्रों, उनका पदानुक्रम तथा वर्ग-तन्त्र का निर्धारण उनमें सम्पादित होने वाले सेवा कार्यों के आधार पर किया गया। सम्पूर्ण क्षेत्र में पाँच सेवा कार्य समूहों के अन्तर्गत सम्पन्न होने वाले 24 सेवा कार्यों को ग्रामीण सेवा केन्द्रों के निर्धारण के लिए चुना गया । उपर्युक्त आधार पर क्षेत्र में कुल 97 सेवा केन्द्र अस्तित्व में आए । तालिका संख्या 7.2 विभिन्न विकासखण्डों में सेवा कार्य समूहों के अन्तर्गत ग्रामीण सेवा केन्द्रों के वितरण प्रतिशत को दर्शाती है । कुल ग्रामीण सेवा केन्द्रों में 63.92 प्रतिशत केन्द्रों में तीन कार्य समूहों से छः सेवाएँ सम्पन्न होती हैं । इन्हे न्यून श्रेणी के सेवा केन्द्र कहा जा सकता है । 21.65 प्रतिशत सेवा केन्द्रों में चार सेवा समूहों के अन्तर्गत बारह कार्य सम्पन्न होते हैं, इन्हे मध्यम श्रेणी के सेवा केन्द्रों के अन्तर्गत रखा जा सकता है । 14.43 प्रतिशत सेवा केन्द्र प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं जिनमें सभी सेवा समूहों के अन्तर्गत सम्पन्न होने वाले लगभग सभी कार्य सम्पादित होते हैं ।

ग्रामीण सेवा केन्द्रो का वितरण- **(Distribution of Rural Service Centres)**

जनपद में उपरोक्त योग्यताधारी सेवा केन्द्रों की संख्या 97 है जोकि सम्पूर्ण ग्रामों का 8.04 प्रतिशत होता है । विकासखण्ड स्तर पर सबसे अधिक सेवा केन्द्र बड़ोखर खुर्द में (12.99 प्रतिशत) है । तथा सबसे कम सेवा केन्द्र मऊ (5.15 प्रतिशत) विकासखण्ड में हैं । बड़ोखर खुर्द के पश्चात् बिसण्डा (12.88 प्रतिशत), जसपुरा (11.11 प्रतिशत) व बबेरू (10.00 प्रतिशत) का स्थान है । सेवा केन्द्रों का मध्यम घनत्व तिन्दवारी (8.75प्रतिशत) व महुवा (7.56 प्रतिशत) अन्तर्गत है जबकि शेष विकासखण्ड- कमासिन (6.66 प्रतिशत), नरैनी (6.94प्रतिशत), चित्रकूट (6.99प्रतिशत), पहाड़ी (6.50प्रतिशत), मानिकपुर (7.20प्रतिशत),रामनगर (8.57प्रतिशत), मऊ (5.15प्रतिशत) विकासखण्ड में स्थित हैं (तालिका संख्या 7.2) । महत्वपूर्ण यह है कि इन सेवा केन्द्रों का जनपद में वितरण बहुत ही असमतानतापूर्ण है (चित्र संख्या 7.1) । यह सत्य है कि सेवा केन्द्रों के इस वितरण के लिये बहुत से भौगोलिक कारक उत्तरदायी हैं । इसके अलावा सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कारको का भी अपना एक महत्वपूर्ण योगदान

Distribution Of Rural Service Centres
First Order
Second Order
Third Order
Forth Order
5 0 5 10 15 20
Km
Fig. No. 7.1
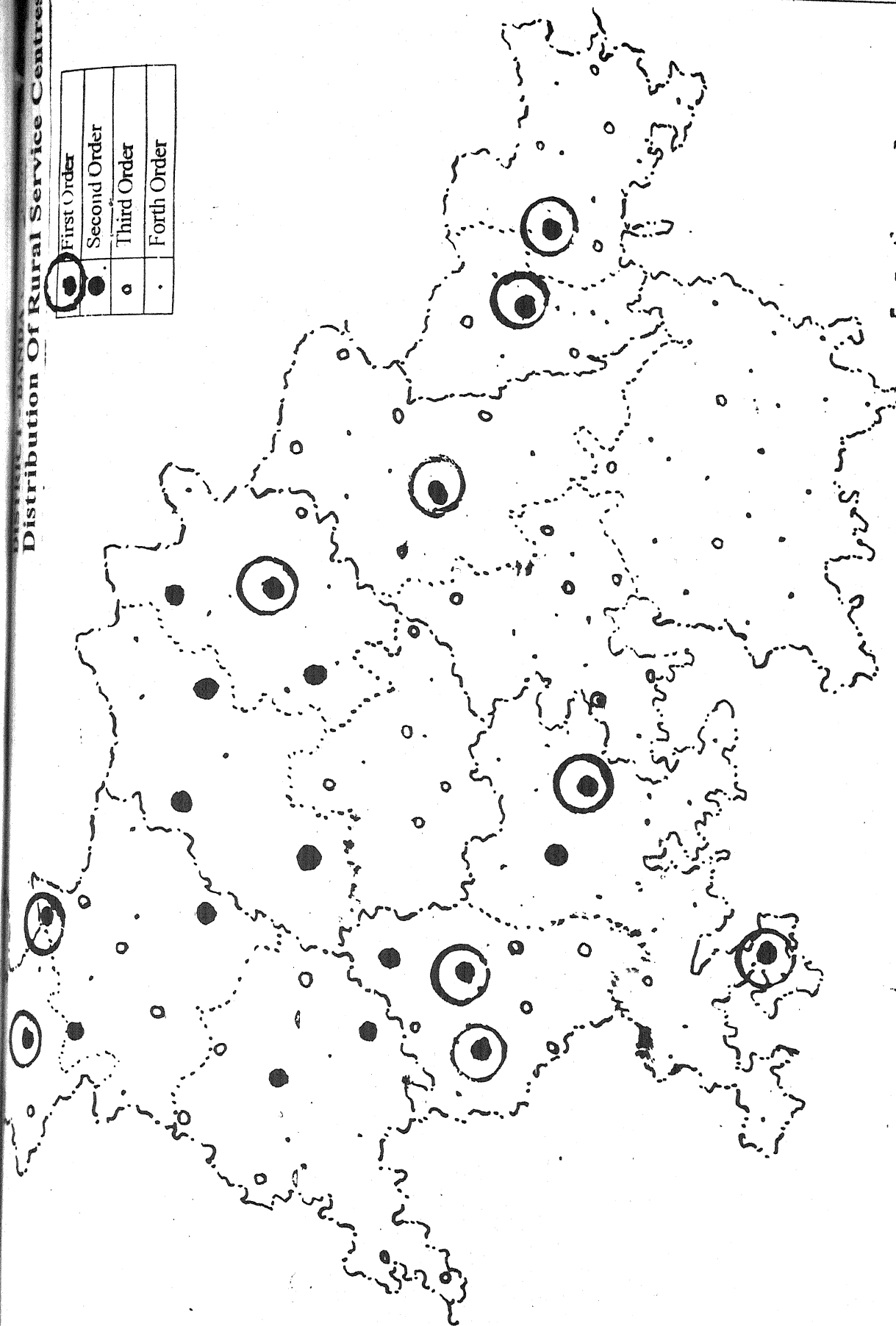
तालिका संख्या- 7.2

विकासखण्ड के आधार पर जनपद के ग्रामीण सेवा केन्द्रों की संख्या व प्रतिशत

विकासखण्ड	कुल ग्रामों की संख्या	कुल ग्रामीण सेवा केन्द्र	विकासखण्ड में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का %	कार्य समूहों की संख्या के आधार पर विकासखण्ड के कुल सेवा केन्द्रों में ग्रामीण सेवा केन्द्रों का प्रतिशत		
				कार्य समूह		
				3	4	5
जसपुरा	45	5	11.11	60.00	20.00	20.00
तिन्दवारी	80	7	08.75	57.11	28.58	14.29
बड़ोखर खुर्द	77	10	12.99	60.00	30.00	10.00
बबेरू	80	8	10.00	62.50	12.50	25.00
बिसण्डा	57	7	12.28	85.71	14.29	-
कमासिन	75	5	06.66	60.00	20.00	20.00
नरैनी	144	10	06.94	70.00	20.00	10.00
महुवा	119	9	07.56	55.56	22.22	22.22
चित्रकूट	129	9	06.99	66.67	22.22	11.11
पहाड़ी	123	8	06.50	62.50	25.00	12.50
मानिकपुर	111	8	07.20	50.00	31.50	12.50
मऊ	97	5	05.15	80.00	-	20.00
रामनगर	70	6	08.57	66.68	16.66	16.66
सम्पूर्ण जनपद	1207	97	07.95	63.92	21.65	14.43

स्रोत : ग्रामीण सेवा केन्द्रों के सम्बन्ध प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह पता चलता है कि उपजाऊ, बांगर समतल भूभाग में, जहाँ पर परिवहन के साधन विकसित हैं, राजनैतिक व आर्थिक जागरूकता है तथा शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ है- वहाँ पर सेवा केन्द्र अधिक संख्या में है जबकि दूसरी ओर कंकरीले, पथरीले जंगली भू भाग में परिवहन के साधनों की कमी, निर्धनता व राजनैतिक उदासीनता के कारण जनसंख्या की कमी तथा ग्रामों का आकार छोटा है । ऐसे भागों में सेवा केन्द्रों का अभाव सा है तथा सेवा केन्द्र निम्न स्तर के और दूर-दूर हैं । केन-यमुना खादर भू भाग में अस्थायी बस्तियां तथा उपरोक्त कारणों से सेवा केन्द्रों का अपेक्षित विकास नहीं हो सका है । जनपद में नगरीय केन्द्रों की संख्या 11 है जिनमें बांदा, अतर्रा, कर्वी (चित्रकूट) बड़े स्तर के नगरीय केन्द्र तथा मटौंध, तिन्दवारी, राजापुर, नरैनी, बबेरू, ओरन, बिसण्डा, मानिकपुर व मऊ छोटे स्तर के नगरीय केन्द्र हैं ।

केन्द्रीयता (Centrality)

वस्तुत: अधिवास तन्त्र पदानुक्रम के निर्धारण में केन्द्रीयता की विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान है । अधिवासों का पदानुक्रम केन्द्रीयता पर निर्भर करता है क्योंकि इसके सहयोग से किसी भी सेवा केन्द्र का सापेक्षिक महत्व मालूम

किया जा सकता है । इसी सेवा केन्द्र के पदानुक्रम में विशिष्ट स्थान प्रदान करने के लिए केन्द्रीयता की गणना अति आवश्यक है । भट्ट (1976) के अनुसार गतिशीलता को ध्यान में रखते हुए किसी अधिवास में वर्तमान समय में स्थित सेवाओं अथवा प्रकार्यों के महत्व पर ही नहीं वरन् उनकी सम्भावनाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए । खान (1977) का मत है कि केन्द्रीयता किसी क्षेत्र की जनसंख्या के उपभोक्ता व्यवहार का प्रदर्शन मात्र है, जिसके आधार पर केन्द्रीय स्थान के आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है । काफी हद तक केन्द्र की केन्द्रीयता का आभास उसकी जनसंख्या से भी हो सकता है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जनसंख्या की दृष्टि से बड़े केन्द्रों की केन्द्रीयता अधिक हो । केन्द्रीयता का निर्धारण भिन्न-भिन्न ढंगों से हो सकता है । विभिन्न विद्वानों यथा- ब्रश एवं ब्रेसी (1976), बनमाली (1972), खान एवं त्रिपाठी (1976), मिश्र (1981) आदि ने केन्द्रीयता ज्ञात करने हेतु अनेक विधियों का प्रयोग किया है लेकिन अभी तक कोई एक मानक विधि प्राप्त नहीं की जा सकी है ।

सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम (Hierarchy of Rural Service Centres)

वस्तुतः प्रादेशिक अध्ययन में पदानुक्रम की संकल्पना का विशिष्ट महत्व है । इसके माध्यम से सम्पूर्ण क्षेत्र को वर्गों में विभक्त कर यथार्थ ज्ञान हांसिल किया जा सकता है तथा क्षेत्र के आदर्श कार्यात्मक समाकलन के सम्बन्ध में नियोजित रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है । पदानुक्रम से अर्थ अधिवासों को उनकी आकृति तथा गुणों यथा- उनमें सम्पन्न होने वाले विविध प्रकार के कार्यों व सुविधाओं के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजन से है । स्पष्टतया अधिवास भूगोल में पदानुक्रम की विचारधारा क्रिस्टालर (1966) ने चिर सम्मत केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त से प्रकाश में आयी । इनके अनुसार ऐसा स्थान जो आसपास के क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों को एक या एक से अधिक सुविधाएँ प्रदान करता है, उसे केन्द्रीय स्थान कहा जा सकता है । बड़े आकार के ग्रामीण सेवा केन्द्र उच्च्व श्रेणी की सुविधाओं को अधिक मात्रा में प्रदान कराता है । यह उच्च्व श्रेणी की सुविधाएँ निम्न स्तर की उन सुविधाओं के अलावा होती हैं जो लघु आकार के सेवा केन्द्रों की भाँति यहाँ भी उपलब्ध रहती हैं । इस प्रकार लघु आकार के सेवा केन्द्रों का सेवा क्षेत्र, बड़े आकार के सेवा केन्द्र के सेवा क्षेत्र के अन्दर ही व्यवस्थित रहता है । इनके अनुसार पदानुक्रम का वितरण प्रतिरूप केन्द्रीय स्थानों के तीन प्रमुख वितरण सिद्धान्तों यथा- बाजारीय सिद्धान्त, यातायात सिद्धान्त तथा प्रशासनिक सिद्धान्त पर आधारित होता है ।

बाद में अनेक विद्वानों ने इस सम्बन्ध में कार्य किए हैं जिनमें लॉस (1954), गैरीसन (1958), मण्डल (1975), मिश्र (1976), मिश्र (1986) आदि प्रमुख हैं ।

वर्तमान कार्य में प्रयुक्त विधियाँ (Use of Methods in Present Work)

जैसा कि उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सेवा केन्द्रों का महत्वांकन उनमे सम्पन्न होने वाले विभिन्न किस्म के कार्यों पर आधारित है । सेवा केन्द्र में सम्पन्न होने वाले सभी कार्यों का महत्व समान नहीं होता जैसे- प्राइमरी

स्कूल, जूनियर हाईस्कूल की अपेक्षा तथा जूनियर हाईस्कूल, हाईस्कूल की अपेक्षा और हाईस्कूल, इण्टर कालेज की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण हैं । इस प्रकार के उदाहरण प्रशासनिक, स्वास्थ्य, परिवहन एवं संचार व्यवस्था सम्बन्धी सेवाओं से भी दिये जा सकते हैं । इस दृष्टि से एक तरफ समरूप कार्यों के पदानुक्रम में अत्याधिक विभिन्नता मिलती है । अतः किसी भी सेवा केन्द्र को कार्यों की संख्या के रूप में नहीं बल्कि पदानुक्रम के रूप में समझा जाना चाहिए । इसलिए कार्य और कार्यात्मक पदानुक्रम का स्तर जितना अधिक होगा, उस स्थान के कार्यों की केन्द्रीयता उतनी ही उच्च स्तर की होगी (नामदेव, 1997) । क्षेत्र के ग्रामीण सेवा केन्द्रों के कार्यों एवं कार्यात्मक इकाइयों, स्थानिक उपभोक्ता पसंदगी हेतु प्राथमिक आंकड़ों का संग्रह क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर प्रश्नावली (परिशिष्ट, अ) के माध्यम से किया गया है । अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत सेवा केन्द्रों की केन्द्रीयता को श्रेणीबद्ध करने के लिए बस्ती सूचकांक विधि को अपनाया गया है (तालिका संख्या, 7.3) ।

तालिका संख्या- 7.3

केन्द्रीय सेवाएं व उनके केन्द्रीय अंक

सेवा		अंक
1.	जच्चा-बच्चा केन्द्र	0.33
2.	ब्रांच पोस्ट आफिस	0.39
3.	जूनियर हाई स्कूल	0.42
4.	दवा विक्रेता/दवाखाना	0.49
5.	टेलीफोन इक्स्चेन्ज कार्यालय	0.75
6.	बस स्टाप	0.77
7.	न्याय पंचायत	0.85
8.	समिति	0.92
9.	सहकारी/ग्रामीण बैंक	1.14
10.	चिकित्सालय	1.43
11.	हाई स्कूल	1.51
12.	इण्टर कालेज	2.63
13.	पुलिस चौकी	2.81
14.	बाजार	4.55
15.	पशु चिकित्सालय/पशु सेवा केन्द्र	4.70
16.	पुलिस स्टेशन	6.25
17.	राष्ट्रीय बैंक	6.25
18.	रेलवे स्टेशन	6.67
19.	परिवार नियोजन केन्द्र	7.14
20.	प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	7.14
21.	उप डाक घर	7.68
22.	विकासखण्ड मुख्यालय	16.61
23.	टेलीग्राफ आफिस	25.00
24.	गल्ला विपणन केन्द्र	25.00

बस्ती सूचकांक विधि (Settlement Index Method)

बांदा जनपद के ग्रामीण सेवा केन्द्रों के पदानुक्रम निर्धारण हेतु बस्ती सूचकांक तकनीक का प्रयोग किया गया है । केन्द्रीयता निर्धारण हेतु यह अधिक शुद्ध विधि है क्योंकि सम्पूर्ण क्षेत्र को ध्यान में रखकर कार्यात्मक मूल्य ज्ञात किया जाता है । अस्तु इस विधि द्वारा ज्ञात पदानुक्रम प्रादेशिक पदानुक्रम को प्रदर्शित करता है । कार्यात्मक मूल्य निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया गया है :

$$F.C.V. = \frac{1 \times 100}{F}$$

जिसमें, F. C. V. = कार्यात्मक केन्द्रीयता मान;

F. = समस्त ग्रामीण सेवा केन्द्रों में एक कार्य की आवृत्तियों का योग।

उपर्युक्त सूत्र के आधार पर प्रत्येक कार्य का केन्द्रीयता मान ज्ञात किया गया है जिसका उल्लेख तालिका संख्या 7.4 में किया है ।

तालिका संख्या- 7.4

सेवा केन्द्र, केन्द्रीयता एवं जनसंख्या आकार

क्र0सं0	सेवा केन्द्र का नाम	केन्द्रीयता सूचकांक अंक	जनसंख्या आकार
1	कमासिन	94	8184
2	जसपुरा	91	5311
3	महुवा	82	3867
4	गिरवाँ	80	3816
5	मर्का	80	9216
6	खुरहण्ड	77	4227
7	शिवरामपुर	76	2464
8	पैलानी	70	4444
9	रामनगर	70	1535
10	चिल्ला	65	2798
11	कालींजर	63	4417
12	पहाड़ी	60	5867
13	मुरवल	55	4928
14	बदौसा	54	3065
15	रैपुरा	51	3878
16	चन्दवारा	49	3062
17	खपटिहा कला	48	6339
18	जौरही	48	2546
19	लामा	44	3096
20	महोखर	41	7606
21	बिलगांव	40	5040
22	बड़ोखर बुजुर्ग	40	4570

क्र0सं0	सेवा केन्द्र का नाम	केन्द्रीयता सूचकांक अंक	जनसंख्या आकार
23	रसिन	40	5702
24	करतल	40	3765
25	छीबों	39	3379
26	खन्डेहा	38	8230
27	मिलाथू	37	2428
28	भभुवा	37	2535
29	कसहाई	37	3363
30	सिंहपुर	36	2454
31	ओरन ग्रामीण	34	4344
32	छिलोलर	34	2590
33	भरतकूप	34	2720
345	खोही	34	2455
35	बछरन	33	2127
36	सरधुवाँ	33	5519
37	भौरी	33	6122
38	ऐचवारा	30	2931
39	अगरहुडा	32	3264
40	तिन्दवारा	31	7975
41	बड़ोखर खुर्द	31	1722
42	सिन्धनकलॉ	31	5440
43	गड़रिया	30	6720
44	रामपुर	30	3862
45	पपरेन्दा	30	5152
46	पलरा	30	2781
47	फतेहगंज	30	3540
48	गोयरा मुगली	30	4216
49	मोहनपुरवा	30	2858
50	जारी	30	5128
51	करबई	30	1609
52	लुकतरा	30	4337
53	इटवा डुडैला	30	3894
54	पनगरा	30	5280
55	बहेरी	30	2727
56	गोखिया	29	3315
57	रौली कल्यानपुर	29	2840
58	गुढ़ा कलॉ	29	6950
59	गौरी कलॉ	28	3264
60	डढ़वामानपुर	27	3391
61	पुकारी	27	2420

क्र0सं0	सेवा केन्द्र का नाम	केन्द्रीयता सूचकांक अंक	जनसंख्या आकार
62	पडमई	27	1840
63	अन्ना बिनैका	26	2399
64	रामपुर	26	2105
65	नांदिन कुरम्यान	26	3168
66	बरगढ़	25	3899
67	गाहुर	25	2910
68	पूरब पताई	24	1783
69	पियायल	24	2315
70	खपटिहा	24	1902
71	हरदौली	23	1991
72	परास	23	1740
73	करहुली	23	1155
74	चौसड़	23	1780
75	कोर्रही	23	6591
76	भदेदू	23	2105
77	चन्द्रायल	23	1880
78	पवईयां	22	1708
79	बीरा	22	1288
80	साड़ा सानी	22	2440
81	सुनहुली	22	2605
82	खोह	22	2192
83	घुरेटनपुर	22	1566
84	परसौंजा	21	3702
85	लोढ़वारा	21	1263
86	कफसेठी	21	1180
87	गौहानी कलॉ	19	1746
88	बरद्वारा	18	2827
89	नाँदी	18	2105
90	कौहारा	17	2991
91	सढ़ा	16	4737
92	केहुनिया	14	2283
93	ऊँचाडीह	13	3699
94	रूकमाखुर्द	11	2299
95	सरैया	10	3537
96	इटखरी	10	1502
97	हनुवां	10	2656

स्रोत : जनगणना पुस्तिका एवं क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों की गणना पर आधारित ।

प्रत्येक सेवा का केन्द्रीय अंक ज्ञात हो जाने के पश्चात् सेवा केन्द्र पर सम्पादित होने वाले विभिन्न कार्यो के अंको के योग के आधार पर अध्ययन क्षेत्र के सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम निश्चित किया गया है (तालिका संख्या 7.4) । तत्पश्चात तालिका संख्या 7.4 को श्रेणीबद्ध करके पदानुक्रम निर्धारित किया गया है (तालिका संख्या 7.5) ।

तालिका संख्या- 7.5

ग्रामीण सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम स्तर

क्र०सं०	पदानुक्रम	श्रेणी	प्रत्येक वर्ग के सेवा केन्द्रों की संख्या
1	प्रथम वर्ग	90 से अधिक	2
2	द्वितीय वर्ग	61 - 90	8
3	तृतीय वर्ग	31 - 60	32
4	चतुर्थ वर्ग	30 से कम	55

प्रथम स्तर के केन्द्र- प्रथम स्तर के सेवा केन्द्रों के अन्तर्गत कमासिन एवं जसपुरा आते हैं । इन ग्रामीण सेवा केन्द्रों का केन्द्रीयता मान 90 से अधिक है। सेवाओं की दृष्टि से यह सेवा केन्द्र उच्च स्तर की सेवाएं यथा- बैंक, विकासखण्ड मुख्यालय, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, इण्टर कालेज/हाई स्कूल, पुलिस स्टेशन आदि की सेवाएं प्रदान करते हैं । इसके अतिरिक्त वे सभी सेवाएँ इन केन्द्रों में सम्पन्न होती है जो मध्यम एवं निम्न श्रेणी के सेवा केन्द्रों में पायी जाती हैं ।

द्वितीय स्तर के केन्द्र- द्वितीय स्तर के सेवा केन्द्रों का केन्द्रीयता मान 61से 90 के मध्य है । इसमें महुआ, गिरवा, खुरहण्ड, शिवरामपुर, पैलानी, रामनगर, चिल्ला एवं कालींजर हैं । यह सेवा केन्द्र प्रमुख सेवाएँ यथा- हाई स्कूल, सहकारी समिति, ग्रामीण बैंक, अस्पताल, न्याय पंचायत, थाना/पुलिस चौकी व पुलिस स्टेशन जैसी सुविधाएँ इन केन्द्रों में सम्पन्न होती हैं ।

तृतीय स्तर के केन्द्र- 32 ग्रामीण सेवा केन्द्र इस श्रेणी में आते हैं । इनका केन्द्रीयतामान 31 से 60 के मध्य है । इन्हें मध्यम श्रेणी के सेवा केन्द्र कहा जा सकता है । इनमें पोस्ट आफिस, जूनियर हाई स्कूल, सहकारी समिति/ ग्रामीण बैंक, न्याय पंचायत, बस स्टाप, आदि सेवाएं सम्पन्न होती हैं । इन्हें ग्रामीण विकास बिन्दु कहा जा सकता है ।

चतुर्थ स्तर के केन्द्र- चतुर्थ श्रेणी के ग्रामीण सेवा केन्द्रों के अन्तर्गत 55 सेवा केन्द्र आते हैं । इनमें निम्न स्तर की सेवाएं सम्पन्न होती हैं । इन्हें ग्रामीण सेवा केन्द्र माना जा सकता है जो निम्न स्तर पर ग्रामीणों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में संलग्न हैं ।

इस प्रकार ग्रामीण सेवा केन्द्रों के पदानुक्रम विश्लेषण से स्पष्ट है कि सेवा केन्द्रों के मध्य कार्यात्मक पदानुक्रम पाया जाता है ।

जनसंख्या आकार और बस्ती सूचकांक का सम्बन्ध- ग्रामीण सेवा केन्दों की जनसंख्या बहुधा आस्थिर प्रतिनिधि के रूप में वर्तमान एवं सम्भावित कार्यो के लिये सेवित होती है । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ सेवाओं एवं कार्यो की मांग के प्रतिशत में भी वृद्धि होती जाती है । यह पाया गया है कि एक सेवा केन्द्र की केन्द्रीयता/बस्ती सूचकांक जनसंख्या आकार से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होती है । बड़े आकार के सेवा केन्द्रों की केन्द्रीयता अधिक होती है तथा छोटे आकार के सेवा केन्द्रों की केन्द्रीयता कम होती है । सूक्ष्म निरीक्षण से यह पता चलता है कि जनसंख्या आकार व केन्द्रीयता में कभी-कभी विपरीत सम्बन्ध भी होता है तथा अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण कोई सेवा केन्द्र, जो कम जनसंख्या वाला है, अधिक सेवाएं प्रदान करते हुए अधिक केन्द्रीयता रखता है तथा अपने से बड़े आकार के अधिवासों को भी सेवाएँ प्रदान करता है । ऐसे अधिवासों की अधिकांश जनसंख्या सेवा कार्यो में ही लगी होती है । यथा- पैलानी डेरा, खुरहण्ड रेलवे स्टेशन, गिरवाँ बस स्टाप आदि । विशिष्ट स्थिति के कारण यह सेवा केन्द्र सड़क परिवहन से सम्बद्ध मुख्य सेवा केन्द्र बन गये हैं । इसके विपरीत कम सेवाएँ होने के कारण अधिक जनसंख्या होने के बावजूद उस सेवा केन्द्र की केन्द्रीयता कम होती है, जैसे- गडरिया, चन्दवारा, छिलोलर, सिकलोढ़ी, मुरवा हुसैनपुर आदि। इन क्षेत्रों मे आधारभूत सुविधाओं का विकास विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक कारको से नहीं हुआ है ।

स्पियरमैन का कोटि क्रम सहसम्बन्ध नियतांक $r = 1 - 6\sum d^2/N^3 - N$ के माध्यम से आकार एवं बस्ती सूचकांक के मध्य सह-सम्बन्ध ज्ञात किया गया है । उपर्युक्त सूत्र पर आधारित सह-सम्बन्ध नियतांक $r = +0.70$ है । यह इस बात का प्रतीक है कि ग्रामीण सेवा केन्द्रो के जनसंख्या आकार एवं बस्ती सूचकांक के मध्य घनिष्ट धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है ।

अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या व केन्द्रीयता के मध्य सम्बन्ध देखने पर स्पष्ट है कि यहाँ सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक कारको ने ग्रामीण सेवा केन्द्रों की उत्पत्ति, विकास तथा स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

स्थानिक उपभोक्ता पसन्द- उपभोक्ताओं का स्थानिक व्यवहार प्रतिरूप अनेक विश्वसनीय एवं तर्क संगत तथ्यों को स्पष्ट करता है जो विस्तृत विकास योजनाओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अध्ययन क्षेत्र में सर्वेक्षण द्वारा तथा क्षेत्रीय पर्यवेक्षण

के आधार पर स्थानिक उपभोक्ताओं की पसन्दगी से सम्बन्धित अधोलिखित परिणाम ज्ञात किये गये है ।

1. क्षेत्रीय अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि स्थिति के लिये उपभोक्ताओं की पसन्द दूरी पर निर्भर करती है । इसलिये दूरी एक सैद्धान्तिक कारक एवं जनता की स्थानिक गति के रूप में सम्बन्धित है ।

2. निम्न श्रेणी की वस्तुओं/सुविधाओं का वितरण क्षेत्र कम होता है क्योंकि निम्न श्रेणी की सुविधाएं अधिकांश सेवा केन्द्रों में पायी जाती हैं ।

3. दो प्रतियोगी सेवा केन्द्रों के मध्य उपभोक्ताओं की पसन्दगी के निर्माण में समय एवं मूल्य का महत्वपूर्ण योगदान है । यदि दो सेवा केन्द्रों पर एक समान सेवाएँ उपलब्ध है तो उपभोक्ता उस केन्द्र को अधिक पसन्द करता है जहाँ कम समय में तथा कम कीमत पर सामान मिल सकता है ।

4. यातायात जाल भी उपभोक्ताओं की वरीयता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5. उच्च श्रेणी की सेवाएँ मुख्यतः बड़े केन्द्रों पर ही प्राप्त की जाती है । इसलिए उपभोक्ताओं को उस सेवा को प्राप्त करने के लिये अधिक दूरी तय करने के लिये विवश होना पड़ता है । क्षेत्र के बालकों विशेषतया बालिकाओं को माध्यमिक विद्यालयों व इण्टर कालेज में शिक्षा प्राप्त करने तथा जनता को बैकिंग सुविधाओं के लिए अधिक दूर जाना पड़ता है ।

6. उपभोक्ता उस स्थान पर जाना अधिक पसन्द करते हैं जहाँ सेवा कार्यों में विविधता होती हैं । यह भी महत्वपूर्ण है कि जनता की गतिशीलता प्रशासनिक केन्द्रों, यथा- विकासखण्ड मुख्यालय या अन्य केन्द्रों पर जहाँ सरकारी कार्यालय स्थित है, अधिक होती है । इस प्रकार स्थानिक उपभोक्ता पसन्दगी के परीक्षणात्मक अध्ययन के आधार पर यह परिकल्पना सत्य प्रतीत होती है कि ग्रामीण निवासियों की स्थानिक पसदंगी क्षेत्र में वर्तमान तत्वों पर निर्भर करती है ।

जसपुरा सेवा केन्द्र : एक विशेष अध्ययन

जसपुरा बाँदा-हमीरपुर राजमार्ग पर बांदा से 43 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है । यह गडरिया, रामपुर, चन्दवारा आदि गांवों से पक्की सड़कों से जुड़ा है तथा सुमरेपुर (हमीरपुर जनपद) से पक्की सड़क के द्वारा सम्बद्ध है । अपनी उत्तम स्थिति तथा राजनैतिक जागरूकता के कारण यह विकासशील सेवा केन्द्र है तथा केन-यमुना दोआब क्षेत्र के लिए एक अच्छा विपणन केन्द्र भी है । इसका पृष्ठ प्रदेश अपनी भौगोलिक व राजनैतिक स्थिति के कारण पंचम् पंचवर्षीय योजना तक

विकास से अछूता रहा है लेकिन तब भी यह पूरे पृष्ठ प्रदेश का एक मात्र विकास केन्द्र था । विगत तीन पंचवर्षीय योजनाओं से इसके पृष्ठ प्रदेश का तीव्र विकास हुआ है ।

इस केन्द्र का मुख्यतया विकास बाँदा-हमीरपुर रोड़ पर ही हुआ है । इसके अतिरिक्त भौगोलिक कारकों के कारण केन्द्र से पश्चिम दिशा व दक्षिण-पश्चिम दिशा में पक्की सड़क व सम्पर्क सड़कों पर ही विकास सम्भव हो सका है । उच्चावच्च विविधता, जनसंख्या वृद्धि, आवासीय भूमि की कमी तथा आवास निर्माण हेतु भूमि की अत्याधिक मांग के कारण यह केन्द्र अत्याधिक घना, संकीर्ण गलियों व गन्दगी से युक्त है । आसपास के केन्द्रों से सुगम्यता के कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् समूचे केन-यमुना दोआब में अग्रणी केन्द्र, प्रशासनिक स्थल व विकास ध्रुव के रूप में विकसित है । इस केन्द्र के चारो तरफ के अधिवास प्रशासनिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, डाक-तार, संचार, परिवहन, पुलिस सेवाओं तथा वित्तीय संस्थानों की सेवाओं के लिये इस पर निर्भर है । इस केन्द्र के सेवा क्षेत्र लगभग 15 वर्ग किलोमीटर में अपने चारो ओर विस्तृत है जिसमें 1,35,000 जनसंख्या लाभान्वित होती है । यहाँ व्यक्ति उस केन्द्र पर विभिन्न सेवाओं यथा- इण्टरमीडिएट कालेज, बस स्टाप, 40 बिस्तरों का प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, टेलीफोन केन्द्र, विद्युत उप केन्द्र, विकासखण्ड कार्यालय, पुलिस स्टेशन, पी0डब्लू0डी0 का भण्डारण केन्द्र, इलाहाबाद बैंक, बीज गोदाम, पशु चिकित्सालय, सहकारी बैंक, इलाहाबाद बैंक, सहकारी समिति आदि के लिए आते हैं ।

कार्यात्मक संरचना- सभी महत्वपूर्ण सेवाएं सड़क के दोनो तरफ केन्द्र के दक्षिण-पश्चिम व पश्चिमी क्षेत्र में विस्तृत है । क्षेत्र के निवासियों की प्रशासनिक व सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यह सेवाएं विस्तृत क्षेत्र में संगठित रूप से देखने को मिलती हैं । प्रशासनिक दृष्टि से जसपुरा का सड़क से संलग्न दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र क्रमबद्ध रूप से विस्तृत है । अधिकतम महत्व की सेवाएं इण्टर कालेज, सहकारी बैंक, इलाहाबाद बैंक, सहकारी समिति, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बीज गोदाम, पेय जल योजना विभाग व कार्यालय, तार-घर, मुख्य सड़क के उत्तरी दिशा में अधिवासीय क्षेत्र से लगा हुआ फैला है तथा विकासखण्ड कार्यालय पशु अस्पताल, विद्युत उप केन्द्र, पी0डब्यू0डी0 स्टोर रूम सड़क के दक्षिण दिशा में स्थित है (चित्र संख्या 7.2) । बस स्टाप के पास भोजनालय, जलपान गृह, चाय की दुकानें, फुटकर किराने की दुकानें, धोबी की दुकानें, डीजल तेल की दुकानें,

VILLAGE JASPURA
FUNCIONAL STRUCTURE
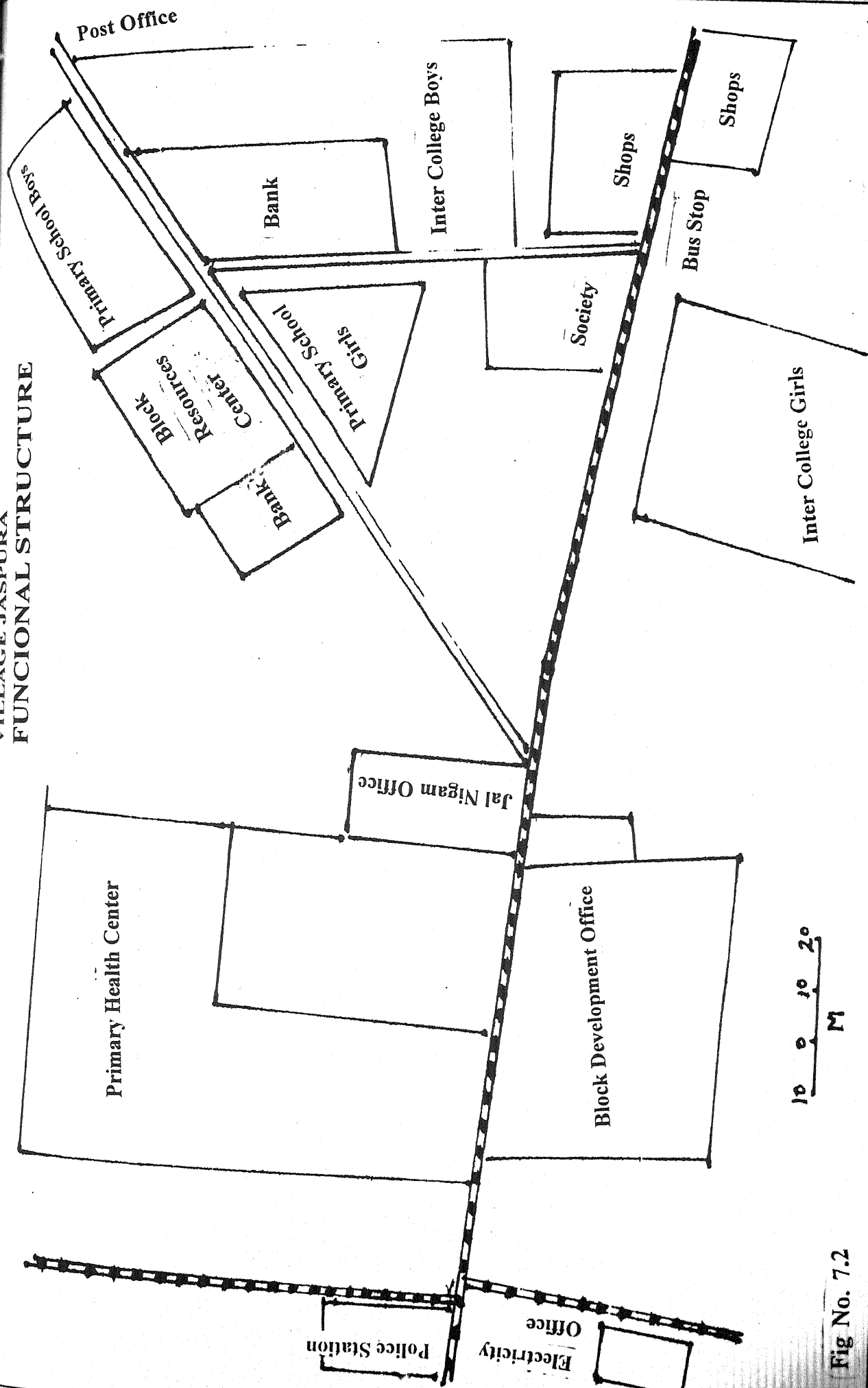
Fig No. 7.2

ट्रैक्टर मरम्मत केन्द्र, साइकिल मरम्मत केन्द्र व नाई की दुकानें आदि हैं । कपडे की दुकाने, जनरल स्टोर, फुटकर किराने की दुकानें, तेल की दुकानें, लोहे की दुकानें, आवासीय क्षेत्र के अन्दर भी स्थित हैं । प्रौढ़ शिक्षा, कन्या जूनियर हाई स्कूल, महिला प्रशिक्षण केन्द्र, दवाखाना, दवा विक्रेता, जूता विक्रेता भी यहाँ पर आवासीय क्षेत्र में बिखरे हुए हैं । पुलिस स्टेशन की इमारत पक्की सड़क के उत्तर में अधिवासीय क्षेत्र से 300मीटर दूर स्थित है । मधुशाला की दुकान बस स्टाप पर है जो केन्द्र के रूप में सम्पूर्ण विकासखण्ड क्षेत्र को सेवा प्रदान करती है ।

ऐसी सम्भावना है कि निकट भविष्य में यह एक प्रमुख नगरीय केन्द्र तथा केन-यमुना दोआब का सबसे बड़ा सेवा केन्द्र बन जायेगा । इस दोआब में अभी तक न तो कोई नगरीय केन्द्र और न ही इस श्रेणी के किसी सेवा केन्द्र का अभ्युदय ही हो पाया है । विगत दशाब्दी में इस केन्द्र का तीव्र विकास इस क्षेत्र के लोगों की रूचि का परिचायक है । बांदा जनपद के अलावा हमीरपुर जनपद के सुमेरपुर विकासखण्ड के लगभग 25 ग्रामों को इस सेवा केन्द्र द्वारा सेवाएं प्रदान की जाती हैं । व्यावसायिक संरचना में भी तीव्र विकास के कारण परिवर्तन आया है । इस केन्द्र की कुल कार्यात्मक जनसंख्या का 35प्रतिशत भाग सरकारी सेवाओं के अन्तर्गत है जिसमें सेना, पुलिस, शिक्षा की सेवाएं प्रमुख हैं । 20 प्रतिशत कार्यात्मक जनसंख्या वाणिज्य एवं निजी सेवाओं के अन्तर्गत आती है । शेष कार्यात्मक जनसंख्या कृषि व्यवसाय में संलग्न है । ईट उद्योग, तेल उद्योग, लकड़ी उद्योग, गल्ला खरीद केन्द्र की ओर लोगों की अभिरूचियां बढ़ रही है तथा लोग इन वृहद व्यवसायों को भी स्थापित कर रहें है ।

References

1. Berry, B.J.L. and Garrison, W.L. (1958) : the Functional Bases of the Central Place Hierarchy, Economic Geography, Vol. 34, PP. 145-154.
2. Berry, B.J.L. and Pred, A. (1961) : A Bibliography of Theory and Applications, Bibliography Series No. 1, Regional Science Research Institute Philadelphia.
3. Bhat, L.S. and Others (1976) : Micro-Level Planning- A Case Study of Karnal Area, Haryana. India, New Delhi.
4. Christaller, W. (1966) : Central places in Southern Germany, Translated by C.W. Baskin, Englewood Cliffs, New Jersey.

5. Cooley Charles, H. (1894) : The Theory of Transportation, Publications of the American Economic Association, 9, PP. 1-148.

6. Deshpande, C.D. (1941) : Market Villages and Periodic Fairs of Bombay, Karnatak, Indian Geographical Journal, Vol. 16, PP. 327-39.

7. Dixit, R.S. (1988) : Spatial Organization of Market Centres, Pointer Publisher, Jaipur, PP. 55-64.

8. Floke, Steen (1968) : Central Place System and Spatial Interaction in Jacobson, N.K. and Johnson, R.N. (Eds.), 21st International Geographical Congress, Collected Papers, P. 57.

9. Friedman, J. and Doughlass, M. (1975) : Agropolitan Development, Towards a New Strategy for Regional Development in Asia, Nagoya, United Nation Centre for Regional Development, Proceedings of the Seminar on Growth Pole Strategy and Regional Development in Asia, PP. 333-387.

10. Galpin, C.J. (1915) : A Social Anatomy of an Agricultural Community, Research Bulletin, Agricultural Experiment Station, University of Wisconsin, Madison, No. 34.

11. Gunawardena, K.A. (1964) : Service Centres in Southern Ceylon, University of Cambridge, Ph. D. Thesis.

12. Gupta, A.K. (1993) : An Analytical Study of Service Centres in Lalitpur District, Unpublished Ph. D. Thesis, Bundelkhand University Jhansi.

13. Hagerstrand, T. (1957) : Innovation of Diffusion as a Spatial Process, Chicago.

14. Hirschman, A.O. (1969) : The Strategy of Economic Development, New Haven, Yale University Press.

15. Ishihara, Hiroshi (1991) : Markets and Marketing in North India, Development of Geography, Faculty of Letters, Nagoya, Japan.

16. Jana, M.M. (1975) : Hierarchy of Markets in the Lower Salabati Basin, Geographical Review of India, Vol. 40, No. 4.

17. Jayaswal, S.N.P. (1962) : Sachendi : A Study of Rural Service Centre, Geographical Review of India, Vol. 24, PP. 46-51.

18. Khan, S.A. (1993) : Functional Classification of Service Centres : A Case Study, The Deccan Geographer, Vol. 31, No. 1, PP. 67-74.

19. Khan, S.A. (1995) : The Role of Settlement Hierarchy in Regional Development, Geographical Review of India, Vol. 57, No. 1, PP. 87-91.

20. Khan, T.A. (1987) : Role of Service Centres in the Spatial Development: A Case Study of Maudaha Tahsil of Hamirpur District in U.P. Unpublished Ph.D. Thesis, Bundelkhand University. Jhansi.

21. Khan, W. and Tripathy, R.N. (1976) : Plan for Integrated Rural Development in Pauri Garhwal, N.I.C.D. Hyderabad.

22. Kohl, J.G. (1841) : Der Verkelr und die Angliedlunges der Manshen in Ihrer Abhangigkeit Vonder Cestalthung der Erdaber Flache, Leipzig, Cited in R.E. Dickinson, City and its Region, Kegan Paul, London, 1964.

23. Krishnan, K.C.R. (1932) : Fairs and Trade Centres of Madras and Ramnad, Madras Geographical Journal, Vol. 7, PP. 229-49.

24. Krishnan, N. (1978) : An Approach to Service Centre Planning: Analysis of Functional Hierarchy and Spatial Interaction Pattern of Rurban Service Centres in Salem District, Unpublished Ph.D. Thesis, University of Madras.

25. Lal, R.S. (1968) : Dighwara : A Rurban Service Centre in Lower Ganga-Ghaghra Doab, The National Geographical Journal of India, Vol.14, PP. 200-213.

26. Losch, A. (1954) : Economics of Location, New Haven, Yale University Press.

27. Mayfield, R.C. (1960) : Analysis of Tertiary Activity and Consumer Movement, Unpublished Ph.D. Dissertation, University of Washington.

28. Misra, B.N. (1980) : Spatial Pattern of Service Centres in Mirzapur District, Unpublished D.Phil. Thesis. University of Allahabad.

29. Misra, G.K. (1972) : A Methodology for Identifying Service Centres in Rural Areas- A Study of Miryalguda Taluk, Behavioural Sciences and Community Development (Special Number R.C.C.), 6(1), PP. 48-63.

30. Misra, H.N. (1976) : Hierarchy of Towns in the Umland of Allahabad, The Deccan Geographer, Vol. 14.

31. Misra, K.K. (1981) : System of Service Centres in Hamirpur District, U.P. (India), Unpublished Ph.D. Thesis, Bundelkhand University, Jhansi.

32. Misra, K.K. (1986) : Identification of Functional Hierarchy of Service Centres in Hamirpur District, The Deccan Geographer, Vol. 24, No.3, PP. 97-144.

33. Misra, K.K. (1987) : Functional System of Service Centres in Backward Economy: A Case Study of Hamirpur District, (U.P.), India, Indian National Geographer, Vol. 2, Nos. 1&2, PP. 57-68.

34. Misra, K.K. (1987) : Service Centre Strategy in the Development Planning of Hamirpur District, U.P., Indian Journal of Regional Science, Vol. 19, No. 1, PP. 88-90.

35. Misra, K.K. and Khan, T.A. (1990) : Spatial System of Towns of Hamirpur District, U.P., The Brahamavart Geographical Journal of India, Vol.2, PP. 19-28.

36. Misra, K.K. (1992) : Service Area Mosaics in a Slow Growing Economy, Geographical Review of India, Vol. 54, PP. 10-25.

37. Misra, R.P. (1971) : Diffusion of Information in the Context of Development Planning, Lund Studies in Geography, Series B, No.37, PP. 119-136.

38. Misra, R.P. (1974) : Regional Development Planning in India, A New Strategy, New Delhi.

39. Misra, R.P. (Edit.), (1981) : Rural Development : National Policies and Experiences, UNCRD, Vol. 4, Maruzen Asia.

40. Misra, R.P. (Edit.), (1981) : Humanizing Development U.N.C.R.D., Vol.2, Maruzen Asia.

41. Misra, R.P. (1995) : Development of Disruption: The Challenge of Cultural National Development Planning in R.P.Misra and M. Honjo (eds.), Changing Perception of Development Problems, Regional Development Series, Vol. 1, Maruzen Asia.

42. Misra, S.K. (1997) : The Location al Distribution and their Characteristics of Rural 'Hats', Kanthi Sub-Division in the District of Midnapur, West Bengal, Indian Journal of Landscape Systems and Ecological Studies, Vol. 20, No. 1, Calcutta, PP. 123-125.

43. Mukerjee, A.B. (1969) : Spacing of Rural Settlements in Andhra Pradesh: A Spatial Interpretation, Geographical Outlook, Vol. 6, PP. 1-18.

44. Mukerjee, S.P. (1968) : Commercial Activity and Market Hierarchy in a Part of Eastern Himalayas Darjeeling, The National Geographical Journal of India, Vol. 14, PP. 186-199.

45. Murdie, R.A. (1965) : Cultural Difference in Consumer Travel, Economic Geography, Vol. 41, PP. 211-233.

46. Myrdal, Gunnar. (1957) : Economic Theory & Underdeveloped Regions, London.

47. Neale, C.W. (1965) : Kurali Market: A Report on The Economic Geography of Marketing in Northern Punjab. Economic Development and Cultural Change, Vol. 13, PP. 129-168.

48. Patanaik, N. (1953) : Study of Weekly Markets in Barpali, Geographical Review of India, Vol. 15, PP. 19-31.

49. Patel, A.M. (1963) : Rural Markets of Rajshahi District, the Oriental Geographer, Vol. 8, PP. 140-150.

50. Patel, V.K. (1993) : Functional Hierarchy and Spatial Distribution Pattern of Service Centres in Bilaspur District (M.P.), Geo-Science Journal, NGSI, Varanasi, Vol. 8, Part 18, PP. 31-39.

51. Perraux, F. (1955) : Economic Space Theory and Application, Quarterly Journal osf Economics, PP. 89-104.

52. Rao, V.L.S.P. (1964) : Towns of Mysore State, Asia Publishing House Bombay, P. 45.

53. Roy, P. And Patil B.R. (1977) : Mannual for Block Level Planning, Delhi, Macmillan.

54. Rushton, G. (1969) : Analysis of Spatial Behaviour by Revealed Space Preference, Annals, A.A.G., Vol. 60, PP. 391-400.

55. Sen, L.K. And Others (1971) : Planning Rural Growth Centres for Integrated Area Development - A Study in Miryalguda Taluk, N.I.C.D., Hyderabad, Micro Level Planning and Rural Growth Centres, N.I.C.D., Hyderabad.

56. Shivagnanam, N. (1976) : Relationships Between Functional Hierarchy of Settlements and Patterns of Informantion Diffusion in Nilgiri District, Ph.D. Thesis Submitted to the University of Madras.

57. Singh, Gurbagh (1973) : Service Centres, their Functions and Hierarchy, Ambala District, Punjab (India), P. 1.

58. Singh, K.N. (1961) : Barhaj : A Study of Changing Patterns of a Market Town, The National Geographical Journal of India, Vol. 7, PP. 21-36.

59. Singh, K.N. (1962) : Rural Markets and Rurban Centres in Eastern U.P., a Geographical Analysis, Unpulished Ph.D. Thesis, Banaras Hindu University, Varanasi.

60. Singh. K.N. (1966) : Spatial Pattern of Central Places in Middle Ganga Valley, the National Geographical Journal of India, Vol.12.

61. Singh, O.P. (1971) : Toward Determining Hierarchy for Centre Place Study; The National Geographical, Journal of India-17, P. 166.

62. Sinha, M. (1982) : Spatial Pattern of Service Centres and their Role in the Diffusion of Agricultural Innovations in Karchana Tahsil oxf Allahabad District, Unpublished D.Phil. Thesis, University of Allahabad.

63. Sunderam, K.V. (1979) : Urban and Regional Planning in India, Vikas, New Delhi.

64. Urs. D.V. And Misra, R.P. (1979) : Rural Development Policies and their Implications for Technological Development in India in Misra, R.P. et.al. (Edit.), Rural Area Development, Sterling, New Delhi, P.54.

65. Von Thunen, J.H. (1926) : Der Isolierte Staat in Begiehung aug Landwirthsaft and Nationale Economic, Rostock, 1826 as Translated by Wartenburgh, C.K., As Von Thunen's Isolated State, London, Oxford University Press. 1966.

66. Wanmali, S. (1970) : Regional Planning for Social Studies, An Examination of Central Place Concepts and their Application, N.I.C.D. Hyderabad.

67. Wanmali, S. (1972) : Central Places and their Tributary Population Some Observations, Behavioural Science and Community Development, Vol. 6, PP. 11-39.

68. Wanmali, S. (1981) : Periodic Markets and Rural Development in India, Concept Publishing House, New Delhi.

अध्याय 8

ग्रामीण अधिवासो का नियोजन एवं युक्तिकरण

(PLANNING AND RATIONALIZATION OF RURAL SETTLEMENTS)

ग्रामीण अधिवासो का नियोजन एवं युक्तिकरण

(PLANNING AND RATIONALIZATION OF RURAL SETTLEMENTS)

अध्ययन क्षेत्र के सम्पूर्ण ग्राम स्वरूपों का विस्तृत अध्ययन अध्याय एक से सात तक किया गया है । प्रथम अध्याय में ग्रामीण अधिवासों की संकल्पनाओं, राष्ट्रीय विकास में ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन का महत्व तथा ग्रामीण अधिवासों के उपागम् व सिद्धान्तों का विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा ग्रामीण अधिवासों की परिभाषा, उद्देश्य, क्षेत्र, मुख्य परिकल्पनाओं तथा अध्ययन मे प्रयुक्त विधियों के माध्यम से संकल्पनात्मक पक्ष का सांगोपांग अध्ययन किया गया है । ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कुछ प्रमुख सुविधाओं पर भी प्रकाश डाला गया है । यह पाया गया है कि अध्ययन क्षेत्र मुख्य रूप से ग्रामीण भूदृश्यावलीयुक्त है तथा आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ अविकसित कृषि क्षेत्र है ।

अध्याय दो में बांदा जनपद की प्रादेशिक संरचना का अध्ययन किया गया है । इस अध्याय को चार उप विभागों- भौतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं परिवहन में विभक्त किया है । बांदा जनपद में कुल पाँच तहसीले व तेरह विकासखण्ड हैं । भूगर्भिक संरचना की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में एक तरफ अति प्राचीन कैम्ब्रियन युगीन चट्टाने है तो दूसरी तरफ नवीनतम् जलोढ़ मिट्टी से निर्मित भूभाग भी है । अपक्षय एवं अपरदन के फलस्वरूप प्राचीनतम् शैलों के भाग वर्तमान समय में मूल रूप में न रहकर स्थान-स्थान पर घिसकर सपाट हो गये है । विन्ध्यनश्रेणी अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भाग में फैली हुयी है । भूमि खादर, बांगर व पथरीली है । अध्ययन क्षेत्र का उत्तरी व उत्तरी पश्चिमी भाग मैदानी तथा दक्षिणी भाग उच्च भूमि है । यहाँ की मुख्य नदियाँ यमुना, केन, चन्द्रावल, बानगंगा, पयस्विनी, बागै, बरदहा, गड़रा, गुन्ता आदि हैं जो दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होती हैं । यमुना नदी अध्ययन क्षेत्र की उत्तरी सीमा बनाती हुई बहती है । यहाँ की जलवायु मानसूनी उष्ण व उपोष्ण कटिबन्धीय स्वास्थ्यवर्धक है । वार्षिक तापान्तर 4^0 सेन्टीग्रेड से 49.5^0 सेन्टीग्रेड तक है । वर्षा मुख्य रूप से जुलाई अगस्त व सितम्बर माह में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से होती है । वन अध्ययन क्षेत्र में बहुत कम (9.8प्रतिशत) रह गये है । उद्यानों के अन्तर्गत मात्र 1.5 प्रतिशत भाग है । अस्तु पर्यावरणीय सन्तुलन बनाये रखने के उद्देश्य से वनों एवं उद्यानों के विस्तार की आवश्यकता है ।कृषि अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय है । 67 प्रतिशत भाग पर शुद्ध कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत आता है । जोताकार भूमि की कमी,

सिंचन सुविधाओं का अभाव, अविकसित अर्थव्यवस्था आदि के कारण कृषि पद्धति में अभी समुचित विकास नहीं हो सका है । वर्ष 1991 के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की कुल जनसंख्या 18,62,139 थी जिसमें 54.30 प्रतिशत पुरूष व 45.70 प्रतिशत महिलाएं हैं । दशांक वृद्धि 21.4 प्रतिशत तथा साक्षरता 35 प्रतिशत है । क्षेत्र में 241 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करता है । अध्ययन क्षेत्र में 23.3 प्रतिशत व्यक्ति अनुसूचित जाति वर्ग में आते हैं । शोध क्षेत्र में 87.14 प्रतिशत व्यक्ति 1207 गांवों व 12.86 प्रतिशत व्यक्ति 11 नगरों में निवास करते हैं । 80.0 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या प्राथमिक क्रियाओं में संलग्न है । इससे स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र ग्रामीण विशेषताओं से युक्त है ।

तृतीय अध्याय ग्रामीण अधिवासों की उत्पत्ति एवं विकास से सम्बन्धित है । क्षेत्र आर्यो के आगमन के पूर्व से ही आवासित जिसके प्रमाण विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । इस क्षेत्र के ग्राम्य अधिवासों का वास्तविक विकास मध्यकाल- चन्देलों के समय से माना जा सकता है । विभिन्न आधारभूत अवस्थापनाओं के विकास के कारण ब्रिटिश काल में गांवों के विकास में पूर्व की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई । स्वतन्त्रता के पश्चात् ग्रामीण अधिवासों में तीव्र गति से वृद्धि हुई, जिसे मॉडलों की सहायता से स्पष्ट किया गया है । गांवों के स्थान नाम के औचित्य को भी खोजा गया तथा पाया गया कि विभिन्न ग्रामीण अधिवासों का नामकरण विभिन्न व्यक्तियों, देवी-देवताओं, वन्य जीवों, वनस्पतियों, जलराशियों व जातियों के नाम के आधार पर हुआ है । इस प्रकार ग्रामीण अधिवासों की विकासात्मक विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका विकास ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं जातीय प्रक्रियाओं का परिणाम हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि बस्तियाँ न्यून, मध्यम व तीव्र गति से परिवर्तित हो रही हैं ।

चतुर्थ अध्याय में ग्रामीण अधिवासों के प्रकार व वितरण का अध्ययन करने पर स्पष्ट हुआ है कि क्षेत्र में चार प्रकार के अधिवास- (संहत, अर्द्ध-संहत, पुरवा ग्राम व बिखरे हुए) पाये जाते हैं जिनका बसाव तन्त्र विभिन्न सामाजिक आर्थिक, भौतिक कारको से प्रभावित हुआ है । विभिन्न भौगोलिक व सुरक्षात्मक परिस्थितियों के कारण गैर आबाद हुए ग्रामों की सूची तैयार की गयी । अध्ययन से बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों, चावल उत्पादक क्षेत्रों में पुरवों का फैलाव अत्याधिक नही है जबकि अन्य क्षेत्रों में पुरवों का फैलाव अत्याधिक है । जनसंख्या के आधार पर विभिन्न प्रकार के ग्रामों

को श्रेणीबद्ध करने पर स्पष्ट हुआ कि 200 से कम जनसंख्या वाले, 200 से 499 जनसंख्या वाले, 500 से 999 जनसंख्या वाले, 1000 से 1999 जनसंख्या वाले, 2000 से 4999 जनसंख्या वाले तथा 5000 से अधिक जनसंख्या वाले ग्रामों का प्रतिशत क्रमशः 12.76, 19.63, 27.61, 22.80, 15.17, 1.16 है ।

पंचम अध्याय में अध्ययन क्षेत्र के ग्रामों की संरचना, आकारिकी संरचना तथा स्थानिक सम्बन्ध का अध्ययन किया गया है । खेत व आवासीय गृहों के बीच की दूरी का आंकलन किया गया । खेतों के आकर व प्रतिरूप का अध्ययन करते हुए पाया गया कि खेतों का आकार बहुत छोटा है जो अनुत्पादक स्तर तक भी पहुंच गया है । यह अधिकतर खादर के क्षेत्रों में देखने को मिला है । ग्राम्य अधिवासों के पास खेत छोटे-छोटे तथा अधिवासों से दूर खेत बड़े आकार वाले पाये जाते है । गुणात्मक व मात्रात्मक उपागम से ग्रामों की आकृति का विश्लेषण किया गया है तथा विभिन्न विकासखण्डों के अन्तर्गत विभिन्न जातियों के निवास स्थलों को भी पहचानने का प्रयास किया गया है । ग्राम्य आकारिकी के व्यवहारिक परीक्षण हेतु गांवों का चयन कर प्रतीक अध्ययन भी किया गया ।

षष्टम् अध्याय में ग्रामीण निवास स्थलों को आवासन संकल्पना के तहत चिन्हित किया गया तथा निवास स्थलों को प्रभावित करने वाले कारको का विश्लेषण करते हुए ग्रामीण बस्तियों के विभिन्न स्वरूपों को पहचाना गया है । परीक्षण से यह पाया गया है कि क्षेत्र में एक कमरे से आठ कमरे तक के मकान पाए जाते हैं । जिनमें दो तथा तीन कमरों वाले मकानों की बहुलता है । मानव आवास, पशुशालायुक्त तथा मानव व पशुशालायुक्त गृहों (संयुक्त) को चिन्हित किया गया तथा कार्यो के आधार पर गृहों व उनकी संख्या की जानकारी प्राप्त की गयी । निर्माण सामग्री के आधार पर गृहों के वितरण व संख्या की जानकारी करने पर ज्ञात हुआ कि मिट्‌टी की दीवारें व खपरैल की छत वाले मकान अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक हैं । पत्थर की छत वालें मकान अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भाग में है क्योंकि वहाँ स्थानीय स्तर पर पत्थर सहज सुलभ है । सर्वेक्षण बताता है कि अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण गृह, स्थानिक क्षेत्र में उपलब्ध सस्ते पदार्थों द्वारा निर्मित हैं। व्यवसाय के आधार पर व्यक्तियों के गृहों का वर्गीकरण भी किया गया है । खेतिहर मजदूरों व छोटे कास्तकारों के मकान छोटे-छोटे है । जिसमें पशुशालाएँ भी आवासीय गृहों के साथ हैं । गृह स्वरूपों के निर्धारण में विभिन्न स्थानीय मान्यताओं व भौतिक तत्वों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है ।

सप्तम् अध्याय में अध्ययन क्षेत्र के समस्त सेवा केन्द्रों व उनकी स्थिति को चिन्हित किया गया है । अध्ययन क्षेत्र में कुल 97 सेवा केन्द्रों की पहचान की गयी है, जो जनपद के विकास हेतु अपर्याप्त है । इनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के सेवा केन्द्रों की संख्या क्रमशः 2, 8, 32, 55 है । परीक्षण से स्पष्ट हुआ है कि यद्यपि ग्रामीण सेवा केन्द्रों के मध्य कार्यात्मक पदानुक्रम पाया जाता है लेकिन समाकलित ग्रामीण विकास की दृष्टि से यह पदानुक्रम पर्याप्त नहीं है । उचित दूरी एवं उपयुक्त स्थानों पर सेवा केन्द्रों के अभाव के कारण यहाँ के ग्रामीण जन विशिष्ट सेवाएं दूर नगरीय क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं । अधिकतर ग्रामीण सेवा केन्द्र यातायात मार्गों पर विकसित हैं जो सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र को सेवा प्रदान करने में असमर्थ हैं। केन्द्रों का जनसंख्या आकार तथा बस्ती सूचकांक में धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता हैं । क्षेत्र के समाकलित विकास के लिए ग्रामीण सेवा केन्द्रों के उचित पदानुक्रम के विकास की महती आवश्यकता है ।

अष्टम् अध्याय में सभी अध्यायों को साररूप में प्रस्तुत करते हुए क्षेत्र में क्रियान्वित विभिन्न ग्राम्य योजनाओं की समीक्षात्मक विवेचना की गयी तथा ग्राम्य क्षेत्र के सन्तुलित विकास के लिए ग्रामीण सेवा केन्द्रों की एक प्रस्तावित रूपरेखा प्रस्तुत की गई तथा ग्राम योजना प्रतिरूप व गृह निर्माण योजना प्रस्तुत की गई ।

क्षेत्र मे उपलब्ध संसाधनो का आधुनिक व वैज्ञानिक तरीके से प्रयोग करते हुए आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त करने की प्रक्रिया को नियोजन कहते हैं । वास्तव में यह एक विशेष उद्देश्य की प्राप्ति हेतु संगठित, विवेकित तथा लगातार प्रयास है (सेन, 1971)। इसलिए यह वास्तविकता तथा भविष्य की आशा के मध्य एक पुल का कार्य करता है । यह एक तरफ आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने तथा दूसरी तरफ क्षेत्र की अन्तर-क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने व विकास की आदर्श स्थिति को प्राप्त करने हेतु एक ऐसा प्रयास है, जिसमे निम्न उद्देश्यो की पूर्ति सम्भव है।

1. सभी निवासियो के जीवन स्तर मे वृद्धि;
2. आत्मसम्मान व सबके प्रति सम्मान मे वृद्धि;
3. प्रत्येक प्रकार की तानाशाही से मुक्ति;
4. सामाजिक जीवन मे सुधार एवं उससे सम्बन्धित वातावरण मे वृद्धि ।

ग्राम अधिवास मानव समाज के प्रमुख प्रतिष्ठान है । यह समस्याओं की आधारभूत इकाई भी है जहाँ से संस्कृति मानव जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र में विस्तृत होती है । इतना ही नहीं बल्कि प्रदेश के विकास वृद्धि एवं उस प्रदेश के सांस्कृतिक

विकास में भी सहायता पहुंचाते है । ग्राम्य अधिवासों का नियोजन प्रादेशिक-आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण अंग है । ठोस व स्वस्थ विकास के लिये यह आवश्यक है कि ग्रामीण जनता की समस्याओं व आर्थिक स्थिति से नियोजक भलीभाँति परिचित हो । अध्ययन क्षेत्र जहाँ अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है तथा कृषि व्यवसाय यहाँ के निवासियों की आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । वहाँ ग्रामीण नियोजन ही समस्त विकासात्मक योजनाओं का मेरूदण्ड है । राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का विचार था कि ''ग्रामों का विकास ही भारत का विकास है'' तथा उन्होंने भारत के ग्रामीण विकास पर सर्वप्रथम विचार व्यक्त किया था। सन् 1931 में गाँधी जी ने आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, ग्रामीण कुटीर उद्योगों के उत्थान तथा अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु ग्रामीण विकास योजना का सुझाव दिया था (माथुर 1977) । इसे स्वतन्त्रता के पश्चात् 1952 में सामुदायिक विकास योजना के रूप में देश ने स्वीकार किया । दुर्भाग्य से यह योजना सहयोग में कमी, लोगों की सहभागिता में कमी के कारण अपने उद्‌देश्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो सका । सन् 1969 में योजना आयोग ने महसूस किया कि देश के स्थानिक विकास की समानता के आदर्श को प्राप्त करना आवश्यक है । छठी पंचवर्षीय योजना से योजना कर्ताओं ने ग्रामीण क्षेत्र के विकास की ओर ध्यान दिया तथा बहुत सी कल्याणकारी योजनाओं का शुभारम्भ ग्रामीण गरीबों विशेष रूप से छोटे व सीमान्त कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने, भूमिहीन श्रमिकों, अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों के जीवनस्तर में वृद्धि हेतु किया । इन योजनाओं का मुख्य उद्‌देश्य सम्पूर्ण क्षेत्रों में विकास तथा निवासियों के जीवन में गुणात्मक सुधार करना था ।

भारत का आर्थिक नियोजन वृहद स्तरीय व सेक्टर उपागम पर आधारित है जो दूरवर्ती व ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु सर्वथा अनुपयुक्त है । इसलिये इस समय एक ऐसे विकासात्मक नियोजन तन्त्र की आवश्यकता है जो क्षेत्र में उपलब्ध आर्थिक संसाधनों के वैज्ञानिक प्रयोग से लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि कर सके । भारत की गरीबी पिछड़ेपन व बेरोजगारी की समस्या का मूल स्थान ग्रामीण क्षेत्र ही हैं । इसलिये विकास की प्रक्रिया में नियोजन प्रादेशिक, आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण अंग है । वर्तमान आर्थिक विकास के युग में प्रवेश कर रहे अध्ययन क्षेत्र में समग्र ग्रामीण विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करना अति आवश्यक है। अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों का जीवन स्तर अति निम्न है । आज भी 36प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे

जीवन यापन कर रहे हैं तथा 15 प्रतिशत लोग रोजगार कार्यालय में बेरोजगारों के रूप में दर्ज हैं । ग्रामों से नगरों की ओर अत्यधिक पलायन के फलस्वरूप अध्ययन क्षेत्र में स्थित नगरों के आकार व समस्याओं में अत्याधिक वृद्धि हो रही है। पचास वर्ष बीत जाने के बाद भी क्षेत्र में आज भी निरक्षरों की भारी संख्या एक शर्म की बात है । इस सबके लिये आवश्यक है कि एक समाकलित ग्रामीण विकास योजना हो तथा उसका ईमानदारी पूर्वक कार्यान्वियन किया जाए ।

1971 में वाराणसी में हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में ग्रामीण बस्तियों के नियोजन के सम्बन्ध में 4 शीर्षकों के अन्तर्गत विकास की रूपरेखा पर स्वीकृति हुयी थी ।

1. भूउपयोग की स्थानिक क्षमता, विपणन, जीवन दशाओं आदि के सम्बन्ध में नियोजन;
2. वर्तमान आर्थिक कल्याण और सामाजिक गतिशीलता तथा आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में नियोजन;
3. ग्रामीण सेवा केन्द्रों का नियोजन;
4. ग्रामीण उत्थान हेतु अवसंरचनात्मक विकास का नियोजन ।

इसलिए नियोजक को सामाजिक संगठन के संरचनात्मक तत्वों तथा योजना की इकाईयों व ग्रामीण अधिवासीय पद्धति के अनुपातिकता को जानना आवश्यक है । भारतीय सामाजिक संगठन के संरचनात्मक तत्वों को पांच भागों में बाँटा जा सकता है ।

1. जीविका पद्धति या आर्थिक पद्धति के आधार पर समुदाय अधिवासों का वर्गीकरण;
2. व्यवसाय व व्यवसाय हेतु प्रवास;
3. बहुभाषायी भारतीय सामाजिक पद्धति की विभिन्न उपपद्धति;
4. भारतीय सामाजिक प्रणाली- (अ) संस्थाओं तथा संघों की परमपरात्मक अवस्थित; (ब) ब्रिटिश उपनिवेश के पूर्व की संस्थाएं तथा संघ;
5. मूल उद्देश्य तथा स्वामिभक्ति-- (अ) परमपराएं जो ब्रिटिशकाल से चली आ रही है- (1) धर्म (2) परिवार व रिश्तेदारियाँ तथा व्यक्ति की सम्पत्ति व शरीर, (3) जाति, (4) व्यवसाय, (5)शिष्टता; (ब) सांस्कृतिक विरासत- (1) राजनैतिक, (2) आर्थिक, (3) नीतिगत ।

ब्राए (1946) ने सर्वप्रथम बस्तियों के समकलित विकास की रूपरेखा को दर्शाया । दुबे (1958) ने समुदायिक विकास परियोजना कार्यक्रम के आधार पर

8 प्रमुख शीर्षकों (कृषि, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, सामाजिक कल्याण, पूरक शिक्षा, आवासन) के अन्तर्गत अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया । इन्होंने विकास के अनेको कारकों को बताया तथा सामाजिक कारको के योगदान की खोज की । लाटन (1959) ने अपने अध्ययन में भारत के परिवर्तनशील ग्रामों के अध्ययन के सन्दर्भ में विभिन्न भौगोलिक कारको के योगदान का विश्लेषण किया । रामचन्द्रन (1967) ने स्थानिक तकनीकी मुख्तया सांख्यिकीय व समाजशास्त्री उपकरणों के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उपकरणों, साधनों के विसरण का अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

समन्वित ग्रामीण विकास संकल्पना- इस संकल्पना का अभिप्राय ग्रामीण विकास हेतु समन्वित उपागम की स्थापना करना है जिसमें ग्रामीण विकास के समस्त पक्षों- सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक आदि के समावेश पर बल दिया गया हो । भारत में 2 अक्टूबर 1980 से देश के सभी 5011 विकासखण्डों मे यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया ।

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार समन्वित ग्रामीण विकास ग्रामीण क्षेत्रों के गुणात्मक परिवर्तन के नियोजन एवं कार्यान्वियन की एक संकल्पना है जिसमें समस्त प्राकृतिक, तकनीकी, आर्थिक एवं संस्थागत अन्तर्सम्बन्धों एवं उसके भावी परिवर्तनों को संयोजित करके ग्रामीण जनता के सामाजिक एकीकरण एवं कल्याण हेतु प्रयत्न किया गया हो । इस संगठन ने 1977 में समन्वित विकास के उद्देश्यों की रूपरेखा को प्रस्तुत करते हुए क्षेत्रीय विकास उपागम को अपनाने का सुझाव दिया था । मलिक (1973) ने समन्वित ग्रामीण विकास संकल्पना के अन्तर्गत निम्न तत्वों को समाहित किया है -

1. ग्रामीण क्षेत्रों की कुल जनसंख्या (व्यवसाय निरपेक्षता के साथ);
2. ग्राम्य वातावरण से सम्बन्धित निराकरणीय समस्त समस्याएं;
3. ग्रामीणों की आवश्यकतायें;
4. ग्राम के निवासियों की दशा को सुधारने हेतु समस्त संसाधनों- भौतिक, सामाजिक, आर्थिक तकनीकी एवं विज्ञान आदि का प्रयोग;
5. विभिन्न सरकारी, अर्द्ध सरकारी तथा निजी संस्थाओं की भूमिका;
6. ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु विविध कार्यक्रमों का संयुक्त क्रियान्वयन ।

नियोजन की प्रक्रिया व तकनीक- नियोजन एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें सदैव नवीन स्वरूप का समावेश होता रहता है और इसी कारण से इसमें हमेशा अग्रगामी व पूर्वगामी विकास लहरों का उद्देलन होता रहता है । मिश्रा (1983) ने समन्वित ग्रामीण विकास हेतु निम्न नियोजन प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है ।

1. किसी भी समस्या के समाधान हेतु नियोजन प्रक्रिया को स्वीकार करने का निर्णय;
2. समस्या का गंभीरतापूर्वक निरीक्षण एवं पूर्ण परीक्षण;
3. आंकड़ों का संग्रह करने के पश्चात् विशेषज्ञों से परामर्श, आंकड़ों का विश्लेषण तथा उद्देश्य निर्धारण;
4. उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में विभिन्न उपागमों व विधियों का उपयोग सुनिश्चित करना;
5. चयनित उपागम के अनुसार विस्तृत योजना व योजना निर्माण;
6. उच्च स्तरीय समिति द्वारा योजना प्रारूप की समीक्षा;
7. विशेषज्ञ समीति द्वारा प्रमाणित, संशोधित, आंशिक रूप से संशोधित योजना प्रारूप पर विचार विनिमय के बाद उसके क्रियान्वयन पर विचार;
8. योजना क्रियान्वयन के पश्चात् मध्यावधि समीक्षा;
9. योजना प्रारूप में निर्धारित उद्देश्यों के सम्बन्ध में वास्तविक परिवर्तन का मूल्यांकन ।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं नीतियाँ- अध्ययन क्षेत्र में गांवों के विकास हेतु समय-समय पर शासन द्वारा विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया, जो निम्न हैं ।

1. 1950 से पूर्व के कार्यक्रम- श्री निकेतन ग्रामीण पुनर्निर्माण संस्थान कार्यक्रम, 1920, (2) गुड़गांव योजना, 1920-1926, (3) मारथेन्डम योजना, 1928, (4)गाँधी जी का 18सूत्रीय सबारमती कार्यक्रम, 1920, (5) सेवाग्राम कार्यक्रम, 1934, (6) मद्रास राज्य की फिरका विकास योजना, 1947, (7) अधिक अन्न उपजाओ कार्यक्रम, 1947, (8) इटावा पायलट योजना, 1948, (9) निलोखेड़ी परियोजना, 1949 ।

1950 के पश्चात् की योजनाएँ व कार्यक्रम- अध्ययन क्षेत्र में निर्धनता निवार्णाथ कुछ विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये है, जो निम्न हैं-

1. **समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम**- इसके अन्तर्गत निम्न कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है-

लक्ष्य उपागम (Target Approach)

(क) गरीब परिवारों में अति गरीब परिवारों के लिये कार्यक्रम- इसके अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहें लोगों को तीन उपवर्गो में विभाजित कर सहायता प्रदान की जा रही है ।

(1) वे परिवार जिनकी वार्षिक आय 2265 रूपये से कम है ।

(2) वे परिवार जिनकी वार्षिक आय 2266 रूपये से 3500 रूपये तक है ।

(3) वे परिवार जिनकी वार्षिक आय 3501 से 6400 रूपये तक है ।

(ख) लघु एवं सीमान्त कृषक विकास कार्यक्रम- इसके अन्तर्गत लघु एवं सीमान्त कृषकों को जिला ग्राम्य विकास अभिकरण द्वारा सघन कृषि तथा सामाजिक वानिकी हेतु धन प्रदान किया जाता है ।

(ग) अनुसूचित जाति/जनजाति विकास कार्यक्रम- अनुसूजित जाति/जनजाति के परिवार के एक सदस्य को इस योजनान्तर्गत लाभ प्रदान किया गया । स्पेशल कम्पोनेन्ट योजना के अन्तर्गत विभिन्न किस्म की सहायता प्रदान की गयी है ।

क्षेत्रीय विकास उपागम (Area Development Approach)

अध्ययन क्षेत्र में इसके अन्तर्गत निम्न योजनाएं क्रियान्वित हैं ।

1. सूखा प्रभावित क्षेत्र विकास कार्यक्रम;
2. समादेश क्षेत्र विकास कार्यक्रम;
3. मरूस्थलीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम;
4. सीमावर्ती क्षेत्र विकास कार्यक्रम;
5. वाटरशेड शुष्क कृषि विकास कार्यक्रम;
6. पर्वतीय/पठारी क्षेत्र विकास कार्यक्रम ।

ग्रामीण रोजगार योजना- इसके अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र में भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम को चलाया गया है । इसमे पारिश्रमिक स्वरूप धनराशि या खाद्यान्न प्रदान किया जाता है जिससे ग्रामीण लोगों के रोजगार के अवसर सुलभ हो सके । इस योजना के तहत सम्पर्क मार्गो, पंचायत भवन, विद्यालय आदि का निर्माण हुआ है।

ट्राइसेम योजना- इसके अन्तर्गत स्वत: रोजगार हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है । जिसमे 18 से 35 वर्ष के युवकों को विकासखण्ड स्तर पर चयन करके औद्योगिक इकाई स्थापित करने हेतु प्रोत्साहित किया गया है ।

पशुधन विकास कार्यक्रम- इसके अन्तर्गत पशुओं की नस्ल सुधारने, प्रजनन कार्यक्रम, कृत्रिम गर्भादान केन्द्रों की स्थापना की गयी है ।

ग्रामीण महिलाओं तथा बाल विकास कार्यक्रम- इस योजना के तहत ग्रामीण गर्भवती महिलाओं व बच्चों को संतुलित पोषक तत्व प्रदान किये जाते हैं ।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम- इस कार्यक्रम को दो भागों में विभाजित किया गया है । (1) मानव संसाधन विकास योजना, (2) क्षेत्रीय विकास योजना ।

समाकलित ग्रामीण ऊर्जा विकास कार्यक्रम- इसके अन्तर्गत ऊर्जा की समस्या के समाधान हेतु समाजिक वानिकी व बायो-गैस प्लांट की स्थापना पर बल दिया गया है।

जवाहर रोजगार योजना- इस योजना के तहत खेतिहर मजदूर परिवारों के एक व्यक्ति को एक वर्ष में 100 दिन रोजगार देने की योजना है । इसमें चार प्रकार के कार्यक्रम चलायें गये हैं- (1) उत्पादक परिसम्पत्तियों का सृजन, (2) सामाजिक वानिकी, (3) अनुसूचित जाति/जनजाति के कल्याणार्थ कार्य, (4) गांवों की सड़कों, विद्यालय भवनों तथा अन्य आवश्यक सामुदायिक भवनों का निर्माण ।

अध्ययन में क्रियान्वित विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं के समीक्षात्मक अध्ययन से यह परिकल्पना सत्य प्रतीत होती है कि ग्रामीण विकास के उपरोक्त समस्त कार्यक्रम दुर्भाग्य से अपने अभीष्ट उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सके हैं । इसके प्रमुख कारण निम्न हैं ।

1. विकासात्मक नीतियों का सच्चाई से लागू न किया जाना;
2. स्थानीय उपलब्ध संसाधनों का न्यायोचित दोहन न होना;
3. आधारभूत आवश्यक वस्तुओं का दोषपूर्ण वितरण;
4. जन सहभागिता का अभाव;
5. जन सामान्य की उपेक्षा ।

ग्राम्य दृश्यपरिवर्तन में सेवा केन्द्रों की योजना (Planning of Service Centres in the Rural Transformation)

अध्ययन क्षेत्र में वर्तमान ग्रामीण भूदृश्यावली में 1207 ग्रामीण अधिवासों में प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ प्रकार के सेवा केन्द्रों की कुल संख्या 97 है जो बहुत कम है । मानिकपुर, पहाड़ी, मऊ, नरैनी विकासखण्डों में सेवा केन्द्रों की अत्यधिक कमी है । इतना ही नहीं प्रथम श्रेणी के सेवा केन्द्र तिन्दवारी, बड़ोखर खुर्द, बबेरू, बिसण्डा, नरैनी, चित्रकूट, पहाड़ी, मऊ, मानिकपुर विकासखण्डों में नहीं हैं । द्वितीय स्तर के सेवा केन्द्र जसपुरा, बड़ोखर खुर्द, बिसण्डा, कमासिन, महुआ, मानिकपुर व मऊ विकासखण्डों में नहीं हैं । तृतीय स्तर के सेवा केन्द्र मऊ विकासखण्ड में नहीं हैं । मऊ विकासखण्ड के सभी पांच सेवा केन्द्र चतुर्थ स्तर के हैं जो एक विडम्बना है तथा स्पष्ट रूप से क्षेत्र के असन्तुलित विकास को दर्शित करता है । इसलिए समन्वित क्षेत्रीय विकास हेतु सेवा केन्द्रों का नियोजन दो दृष्टि से नियोजित होना आवश्यक है - (1) सेवा केन्द्रों की संख्या, (2) सेवा केन्द्रों का आकार ।

निःसन्देह 97 सेवा केन्द्र अध्ययन क्षेत्र में अपर्याप्त है । क्षेत्रीय स्तर पर सेवा केन्द्रों के आकार में भी निःसन्देह विषमता है । इसलिए विभिन्न सेवा इकाईयों की गणना, उनके द्वारा सेवित आदर्श जनसंख्या की गणना तथा क्षेत्र की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक भूदृश्य को जानना आवश्यक है । स्थानिक कार्यात्मक योजना में कार्यात्मक खालीपन का अभिज्ञान भी एक मुख्य कार्य है जिसे वर्तमान सेवा केन्द्रों की सहायता से तथा नये सेवा केन्द्रों की स्थापना से पूरा किया जा सकता है । इसे जानने की दो पद्धतियां हैं-

1. **प्रत्येक सेवा केन्द्र द्वारा सेवित जनसंख्या व उसका क्षेत्र-** यह स्थानिक कार्यात्मक खालीपन को जानने तथा उसके नियोजन करने में सहायक होगा ।
2. **सेवा केन्द्रों की कार्यात्मक जनसंख्या व उसका दबाव-** इससे भावी नियोजन सहायक होगा ।

परिवहन के साधनों को के उपयुक्त विकास के अभाव में भी सेवा केन्द्रों का समाकलित स्तर पर उपयुक्त विकास न हो सका अस्तु परिवहन के साधनों के उचित विकास की भी महती आवश्यकता है । मऊ, मानिकपुर विकासखण्डों में सड़क परिवहन की कमी के कारण सेवा केन्द्रों का उद्भव नहीं हो सका है । इसमें आर्थिक विपन्नता व संसाधनों की कमी भी एक कारण रही है । सेवा केन्द्र की कार्यात्मक जनसंख्या, स्थानिक कार्यात्मक खालीपन को जानने में सहायक है । अध्ययन क्षेत्र में केन्द्रीय सेवाओं की गणना, रीड म्यूनिच ढंग (हेगेट गुनावरडेना, 1974) के आधार पर की गयी है जिसका परिणाम तालिका संख्या 8.1 में दर्शाया गया है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ग्रामीण सेवा केन्द्रों के निर्धारण का उपरोक्त ढंग पूर्णतया लागू नहीं होता इसलिये उसमें कुछ संशोधन करने की आवश्यक है ।

विकासखण्ड मुख्यालय, पुलिस स्टेशन, गल्ला विपणन केन्द्र, टेलीग्राफ आफिस, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, कृतिम गर्भाधान केन्द्र, राष्ट्रीयकृत बैंक, उपडाक घर, सेवाओं हेतु क्षेत्र की जनसंख्या 80,000 को आधार मानकर योजना का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया गया है क्योंकि यह प्रथम स्तर की केन्द्रीय सेवाएं हैं । द्वितीय स्तर की केन्द्रीय सेवाओं हेतु अधिवास की जनसंख्या को आधार माना है जिसकी जनसंख्या सेवा इकाई के अनुसार तय की है । इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के विकास हेतु विभिन्न सेवा केन्द्रों का चुनाव व उनकी संख्या की गणना की गई

DISTRICT - BANDA
Proposed Service Centres
Ist Order
IInd Order
IIIrd Order
IVth Order
5 0 5 10 15 20
Km
No. 8.1
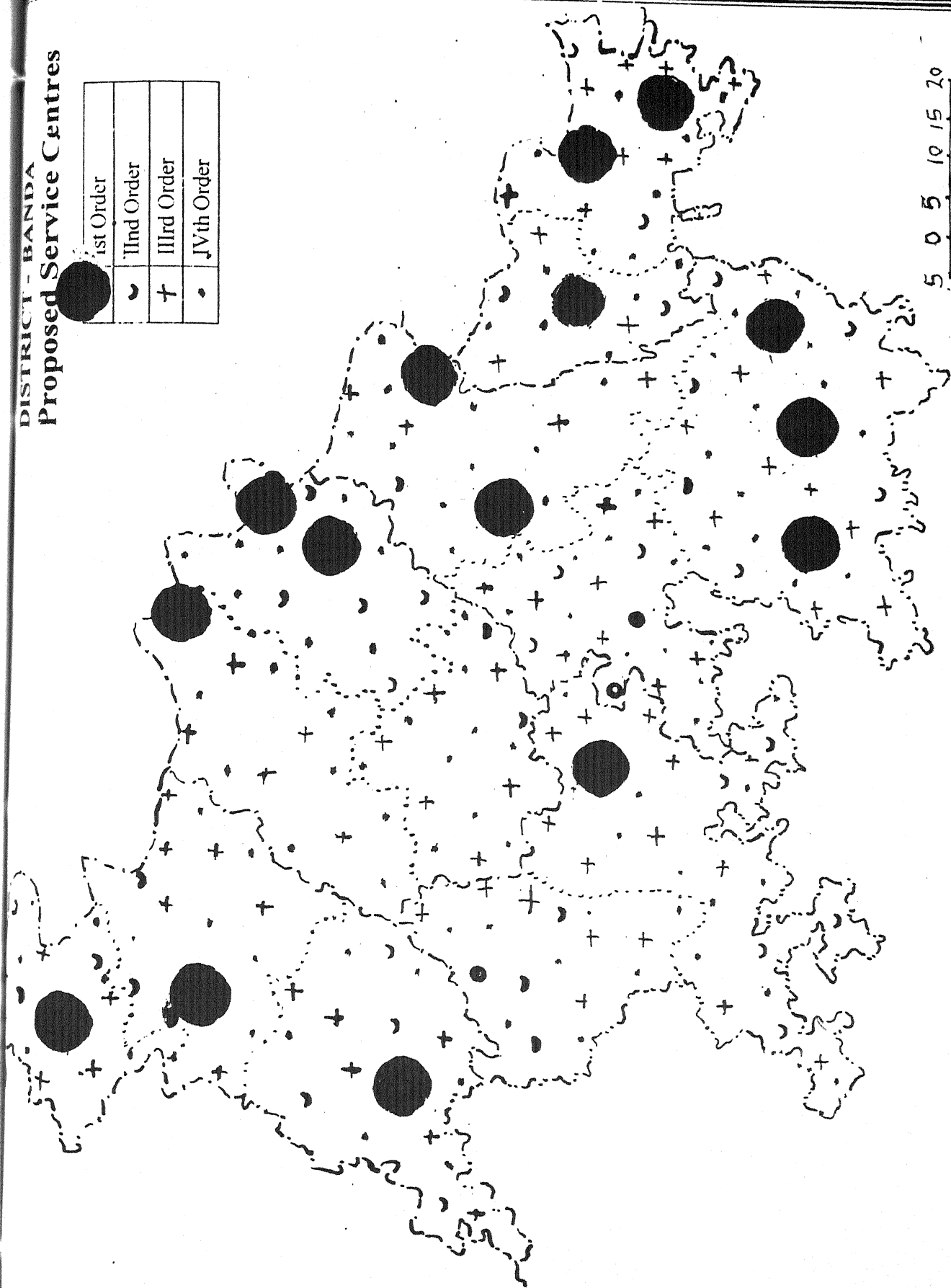
है । ग्रामीण सेवा केन्द्र व जनसंख्या दबाव की गणना द्वारा तालिका संख्या 8.1 में तैयार की गई है ।

उपयुक्र्त विश्लेषण एवं अध्ययन क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ स्तर के ग्रामीण सेवा केन्द्रों की समाकलित योजना सभी विकासखण्डो के लिए प्रस्तुत की गई है (तालिका संख्या 8.2 तथा चित्र संख्या 8.1) ।

तालिका संख्या- 8.1

ग्रामीण सेवा केन्द्र व जनसंख्या दबाव

सेवा कार्य	जनसंख्या	वर्तमान सेवा केन्द्र	अतिरिक्त प्रस्तावित सेवा केन्द्र
विकासखण्ड	7,000	13	7
पुलिस स्टेशन	7,000	21	29
पुलिस चौकी	2500	30	30
गल्ला विपणन केन्द्र	7,000	04	17
टेलीग्राफ आफिस	7,000	04	17
उप डाक घर	7,000	05	16
ब्रान्च डाक घर	2500	259	241
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	7,000	13	07
अस्पताल	4,000	58	105
पशु चिकित्सालय	4,000	54	109
कृतिम गर्भाधान केन्द्र	7,000	13	07
जच्चा-बच्चा केन्द्र	4,000	27	152
जूनियर हाई स्कूल	2500	230	350
हाई स्कूल	3,000	39	140
इण्टर कालेज	4,000	27	121
राष्ट्रीयकृत बैंक	7,000	16	07
सहकारी/ग्रामीण बैंक	4,000	88	75
बस स्टाप	4,000	130	100
बाजार	4,000	22	141
समिति	4,000	100	82
कृषि यन्त्र डीजल इंजन मरम्मत केन्द्र	4,000	10	110
ट्रैक्टर मरम्मत केन्द्र	4,000	10	110
बीज भण्डार	4,000	65	117
न्याय पंचायत	3,000	118	164
टेलीफोन इक्स्चेन्ज	3,000	58	200

तालिका संख्या- 8.2

प्रस्तावित सेवा केन्द्र

विकासखण्ड	प्रथम स्तर	द्वितीय स्तर	तृतीय स्तर	चतुर्थ स्तर
जसपुरा	जसपुरा	सिन्धनकला, चन्दवारा, रामपुर	बडागांव, नांदादेव, गडरिया, कानाखेरा	पैलानी डेरा, गलौली, सबादा, लसड़ा, सिकहुला,
तिन्दवारी	तिन्दवारी, पपरेंदा	पैलानी, चिल्ला, खपटिहाकला	नेवाइच, बेंदा, अतरहट, भुजरख, मिरगाहनी	अलोना, दोहतरा, पदारथपुर, जौहरपुर, धौसड़, माचा, पिपरगंवा
बड़ोखर खुर्द	बड़ोखर खुर्द	लुकतरा, जौरही, हथौडा, मोहनपुरवा	गोखरही, बरगहनी, महोखर, जारी, त्रिवेणी, तिन्दवारा	फतपुरवा, बिलबई, भरखरी, अरबई, डिगवाही, जखौरा
बबेरू	बबेरू टी0ए0 मर्का	मुरवल, भभुवा, ब्यौजा	करहुली, हरदौली, अलिहा, साथी, पल्हरी	पिण्डारन, अनवान, गुजैनी, सातर, समगरा, निभौर, परास, बघेटा, बडागांव
बिसण्डा	बिसण्डाटी0ए0 ओरन टी0ए0	सिंहपुर, मंसीवासानी	चौसड़, कोर्रही, पवइयां, उतरवां	कैरी, भदेदू, पुनाहुर, लौली टीकामऊ, तेन्दुरा, बाघा
कमासिन	कमासिन, वीरा	औगासी, छिलोलर	साडासानी, इंगुवा, औदहा	पतवन, जलालपुर, मुसीवा, नरायनपुर, पतवीरा, मऊ, सोनहुली, परसौली
महुआ	महुआ	गिरवाँ, बड़ोखर बुजुर्ग खुरहण्ड	पैगम्बरपुर, बहेरी बिलगांव, पनगरा खम्भौरा, अर्जुनाह, बरईमानपुर	छिबाव, नंनदना, पतौरा, सिमरिया मिरदहा, जरर, गोखिया, रिसौरा,
नरैनी	नरैनी टी0ए0 बदौसा	गुढाकला, महोतरा, रौलीकल्यानपुर, रसिन, फतेहगंज, कालींजर	जमवारा, नौगवां, पल्हरी, आऊ, दुबरिया, तुर्रा, पौहार, पुरैनिया, सढा, डढवामानपुर, करतल तरहटी कालींजर	बरकोला कला, मुकेरा, पडमई, तेराव, महुटा, मऊ, गोण्डा, बघेलावारी, नीबी कल्याणपुर, बहादुरपुर, पंचमपुर, मसौनी भरतपुर
पहाड़ी	पहाड़ी, राजापुर	बरद्वारा, सरधुवा, बछरन, हरदौली, नांदी	चिल्ली मलबांगर, बिहरवा, अर्की, भदेदू बांगर, औदहा अछरेठी, ओरा, कलवारा बुजुर्ग, गौहानीकला, तौरा, अशोह	सुरवल बांगर, रायपुर बांगर बेराउर बांगर, महुआ गांव, सुरसेन, दरसेडा, चौरा, बकटा बुजुर्ग, नोनार, लोहदा, सलिगपुर, इटौरा,

विकासखण्ड	प्रथम स्तर	द्वितीय स्तर	तृतीय स्तर	चतुर्थ स्तर
चित्रकूट	शिवरामपुर सीतापुर	पसौंजा, पहरा, घुरेटनपुर, खोह,	ईटखरी, भैसौधा, भरथैल, खोही, कपसेठी, रेहुनता, लोढ़वारा, रगौली, कसहाई	रमयापुर, सकरौली, तराव, मैनहाई, छपरामाफी, चितरागोकुलपुर, भंभई वनकट, कर्वीमाफी, सपहा, कंठीपुर, कोल गदइहा,
मानिकपुर	मानिकपुर टी0ए0 सरैया, केहुनिया	भौंरी, रैपुरा, मडैयन,चपगढ़ा, इटवा डुडैला, चुरेह केसेरूआ,	ऐचवारा, अगरहुडा, कौवारा, रूकमाखुर्द कल्याणगढ़, उमरी, सुरैया, हनुवा, ऊचाडीह,रूकमाबुजुर्ग	ब्यूर, बसरेही, सेमरदहा, कैलहा, तिवरिया जमुनाहाई बराहमाफी, तरौहा, कल्याणपुर, निही, चर, डोडामाफी, बगरेही, देवकली,
रामनगर	रामनगर	नादिनकुरम्यान, रामपुर,	खटवारा, छीबों, हन्नाबिनैका,	करौंदीकला, बरिया, रूपौलीमुस्तकिल,बरूआ-मुस्तकिल, खजुरिहाकला
मऊ	मऊ टी0ए0 बरगढ़	बियावल, गाहुर	सिकरी, मवईकला, मन्डौर, खण्डेहा, खपटिहा, मुरका	नीवी, छिउलहा, कोपा, पूरब पताई, कोटराखम्भा, खोहर, परदवामुस्तकिल, सेंमरा

ग्राम योजना प्रतिरूप (Village Plan Pattern)

अध्ययन क्षेत्र के ग्रामों के विकास हेतु भूउपयोग प्रतिरूप का निर्धारण अति आवश्यक है । अकृषित पिछड़ा हुआ भूभाग होने के कारण अध्ययन क्षेत्र का भूउपयोग बहुत दोषपूर्ण है ।अशिक्षा, गरीबी, जनसंख्या वृद्धि तथा गिरते हुए जीवन स्तर के कारण ग्रामीण इस दोषपूर्ण भूउपयोग को समझने मे सक्षम नहीं हैं । अन्ना प्रथा के कारण मार्च से जुलाई तक कोई फसल पैदा नही होती ।जहाँ पर सिंचाई के साधन हैं और ग्रामीण जायद की फसल उगाना चाहता है, इस प्रथा के कारण जायद की फसल उगाने में सक्षम नहीं है । सार्वजनिक स्थलों की कमी, जातिगत खांई तथा अकारण वैमनस्य के कारण अधिकतर लोग इस तरफ ध्यान नही दे पाते हैं । इसलिये स्थानीय स्तर पर गहन अध्ययन द्वारा यह पाया गया कि स्थान-स्थान पर ग्राम्य प्रतिरूपों में विषमता आना स्वाभाविक है । इसका कारण धरातल की बनावट है । प्रस्तावित भूउपयोग को ग्रामों की आवश्यकता तथा वैज्ञानिक प्राविधिकी के साथ अध्ययन किया गया तथा मैदानी क्षेत्र व उबड-खाबड़ पठारी ग्रामों हेतु दो ग्राम्य प्रतिरूपों की योजना की गयी है ।

मैदानी भाग हेतु योजना- कुल ग्राम क्षेत्रफल में 5 से 7 प्रतिशत आवासीय क्षेत्र; 4 से 5 प्रतिशत ग्रामीण उद्योग हेतु क्षेत्र; 20प्रतिशत ग्राम्य कुंज, बाग व चारागाह; 10 प्रतिशत सार्वजनिक उपयोग व रास्तों हेतु तथा 60 प्रतिशत कृषि हेतु भूमि उपयोग प्रस्तावित किया गया है ।

ऊबड़-खाबड़ पठारी भाग हेतु योजना- इन क्षेत्रों में कुल ग्राम क्षेत्रफल में 5प्रतिशत आवासीय क्षेत्र; 5प्रतिशत ग्रामीण उद्योग; 20प्रतिशत बाग, ग्राम कुंज व चारागाह; 10 प्रतिशत सार्वजनिक उपयोग व रास्तों हेतु, 20 प्रतिशत वन तथा 40 प्रतिशत कृषि हेतु भूमि उपयोग प्रस्तावित किया गया है ।

अन्ना प्रथा को समाप्त करने हेतु सामाजिक जागरण आवश्यक है तथा शासन द्वारा इस पर रोक लगाने हेतु कठोर कानूनी उपाय किये जाने चाहिए । जिससे जानवरों का स्वच्छन्द विचरण रोका जा सके तथा मार्च से जून माह तक भी कृषि कार्य हेतु भूमि उपलब्ध हो सके । इसके अतिरिक्त गांवों के समन्वित विकास को ध्यान में रखते हुए यह भी आवश्यक है कि ग्रामीणों को आवश्यक सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था हो ताकि लोग अपने खेतों पर घर बनाकर कृषि की उचित देखभाल कर सकें । इससे स्वच्छ ग्राम्य समावेश प्रणाली व सघन भूमि उपयोग प्रतिरूप का विकास सम्भव हो सकेगा ।

ग्रामीण गृह प्रतिरूप- अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण गृहों की स्थिति असंतोषजनक है क्योंकि सर्वेक्षण से स्पष्ट हुआ है कि ग्रामीण गृह अत्याधिक भीड़युक्त हैं तथा किसी उचित योजना को सोचे समझे बिना बनाये गये हैं । आवश्यक सुविधाओं का अभाव है तथा गृहों के टुकड़े होने से उनके आकार में बहुत न्यूनता हैं । मार्गो/रास्तों की चौड़ाई इतनी कम है कि बैलगाड़ी भी घर तक पहुंचना कठिन हैं। ग्राम का केन्द्रक भाग अत्याधिक घना है । ग्राम गृहों के सुधार हेतु निम्न सुझाव दिये जा रहे हैं ।

1. गृह प्रतिरूप को उनकी स्थिति में विस्तार करके आवश्यक सुविधाओं को समायोजित करते हुए बनाया जाना चाहिए तथा अनावश्यक गड्डों को, जो आबादी के पास हों, मिट्टी से भर दिया जाना चाहिए ।
2. सफाई, जल निकास, जल प्राप्ति तथा शौचालय की उचित व्यवस्था प्रत्येक आवासीय गृह में होनी चाहिए ।
3. सभी ग्राम व उसके पुरवे पक्के/कच्चे रास्तों/सड़कों से अपने मुख्य ग्राम या सेवा केन्द्र से जुड़े होने चाहिए ।
4. ग्राम अधिवास के अन्दर के सभी रास्ते पक्के/खडण्जा (ईटों से बना हुए) युक्त होने चाहिए तथा उसके दोनो तरफ गृहों से निकलने वाले गन्दे पानी के प्रवाह हेतु उचित नाली का निर्माण होना चाहिए जिससे रास्ते खराब न हो सकें ।
5. पिछड़ी जातियों/अनुसूचित जातियों/जनजातियों की बस्तियों में सरकारी

संसाधनों से पुनः निर्माण व सुविधायुक्त आवास निर्माण किया जाना चाहिए तथा उनकी आवश्यकतानुसार हरिजन कालोनियों का निर्माण होना चाहिए । शासन द्वारा निर्मित कालोनियां मानव आवास हेतु उपयुक्त नहीं पाई गयी है।

6. पशुशालाओं/पशु निवास, मानव निवास स्थल से कुछ दूर पर होना चाहिए जिससे मानव आवास गृह का वातावरण शुद्ध व प्रदूषण रहित रहे ।

गृह निर्माण योजना- ग्रामीण लोगों की आवश्यकता तथा भूमि के भौतिक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए गृहों में आवश्यक सुविधाओं का समावेश करते हुए अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीण गृहों के निर्माण हेतु निम्न प्रतिरूप प्रस्तावित किया गया है जो व्यवहार में लाभदायक है । बहुत से विद्वानों ने विभिन्न गृह प्रतिरूपों के स्वरूप को प्रस्तुत किया है लेकिन उनके गृह निर्माण योजना प्रतिरूपों में नगरीयकरण अधिक झलकने के कारण वह ग्रामीण क्षेत्रों के लिये उपयुक्त प्रतीत नहीं होते हैं। यहाँ पर ग्रामों के सर्वेक्षण व ग्रामीणों की आवश्यकताओं को देखते हुए कुछ प्रतिरूप प्रस्तावित है । जिसमें दो कमरे वाले मकान, तीन कमरे वाले मकान, चार कमरे वाले मकान का प्रतिरूप चिन्हित किया गया है जिसे चित्र संख्या 8.2 में दर्शाया गया है ।

स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भवन निर्माण सामग्री को गृह निर्माण में प्राथमिकता देना आवश्यक है । ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति व क्षेत्र में उपलब्ध भौतिक, सांस्कृतिक संसाधनों के सहयोग से भवन निर्माण सामग्री का चयन किया जाए । कच्चे-पक्के मकान अध्ययन क्षेत्र की जलवायु हेतु उपयुक्त है । क्षेत्रीय सर्वेक्षण से यह भी स्पष्ट हुआ है कि ग्रामीण कच्चे-पक्के मिश्रित मकानों में रहना अधिक उपयुक्त समझते है । पठारी क्षेत्र में जहाँ पत्थर सहज उपलब्ध हैं वहाँ पत्थर के प्रयोग को प्राथमिकता दी जाए । स्थानीय स्तर पर सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि पक्की ईट का कोई बड़ा भट्टा अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं है । पक्की ईंट अधिकांशतः इलाहाबाद व फतेहपुर जनपदों के ईंट भट्टों से मंगाई जाती है अस्तु भाडा व अन्य कठिनाइयाँ आती हैं इसलिए स्थानीय स्तर पर बनायी गयी पक्की ईंटों व पजेवा से बनी ईटें जिनमें क्षारीय पदार्थ नहीं है, के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

खपरैल की छत में प्रयुक्त होने वाली घरिया/खपरा का कुटीर उद्योग स्तर पर पर्याप्त उत्पादन होता है । स्थानीय स्तर पर सर्वेक्षण भी यह बताता है कि 92प्रतिशत भवनों की छतें खपरैलयुक्त हैं । इसलिये इसे परिवर्तीत करने की कोई आवश्यकता नहीं है । अध्ययन क्षेत्र में बढ़ते हुए तापमान के कारण यह छत उपयुक्त है ।

A

PROCESS OF HOUSE-DESIGN
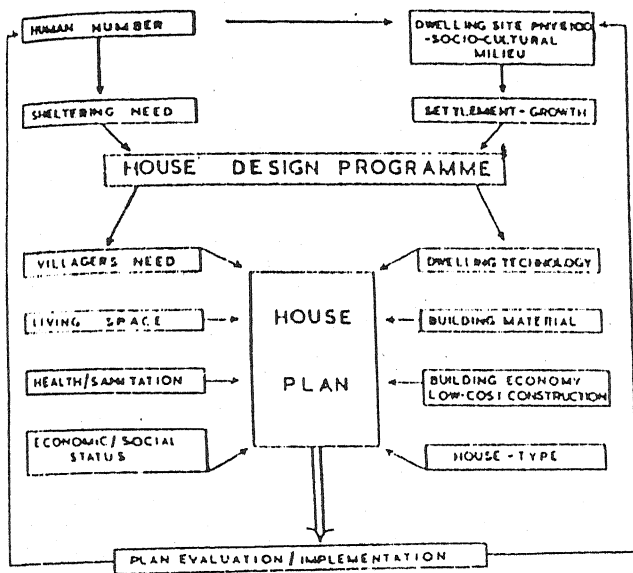
B

PROPOSED HOUSE-PLANS

(i) TWO-ROOM HOUSE
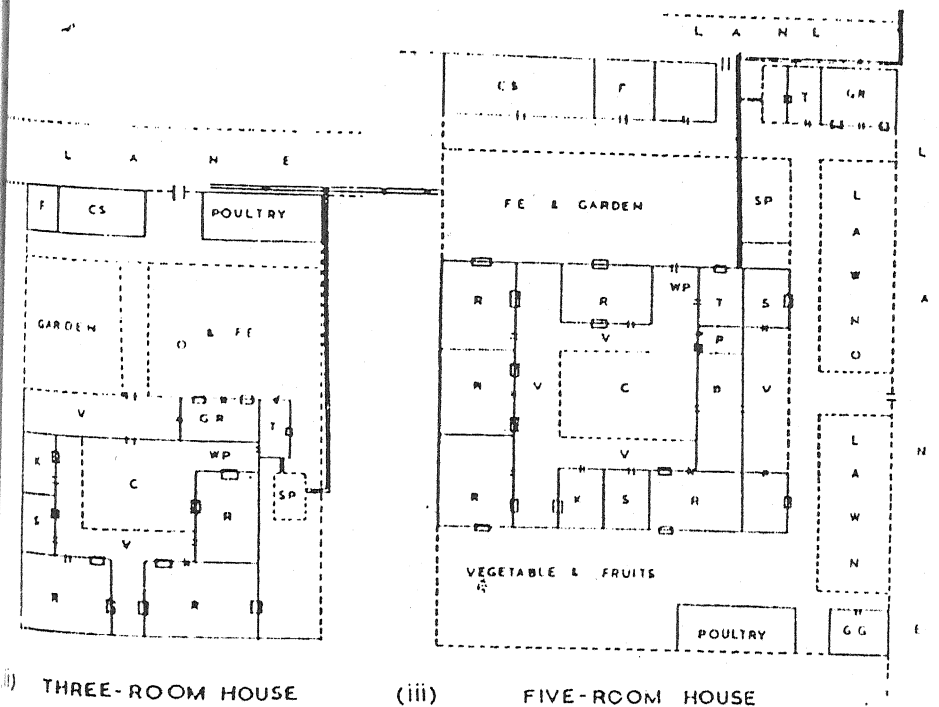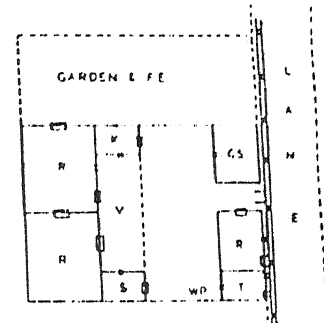
Fig No. 8.2

ग्राम कानाखेड़ा : एक मॉडल (Village Kanakhera : A Model)

ग्राम कानाखेड़ा जसपुरा विकासखण्ड में ग्राम जसपुरा से 8 कि0मी0 उत्तर-पूरब में स्थित है । इस गांव का कुल क्षेत्रफल 298.36 हेक्टेयर तथा 1991 की जनगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 1079 है जो 180 गृहों में निवास करती है । वर्ष 1998 में ग्राम सर्वेक्षण के समय कुल गृह 225 मिले जिसमें 91 आवासीय, 84 पशुशालाएँ एवं बाडा तथा 90 गृहों में मानव आवास व पशुशाला दोनों सम्मिलित रूप से मिले हैं ।

सेवा केन्द्र- इस ग्राम की स्थिति केन्द्रीय है । यहाँ तुलसी ग्रामीण बैंक, सहकारी समिति, अस्पताल, प्राइमरी पाठशाला, जूनियर हाईस्कूल, बस स्टाप, ब्रान्च पोस्ट आफिस, ट्रैक्टर की मरम्मत करने की दुकान, साप्ताहिक बाजार हैं । स्थिति को देखते हुए यहाँ प्रस्तावित सेवाएँ- हाईस्कूल, जूनियर हाईस्कूल बालिका, पुलिस चौकी, नियमिति बाजार, बीज भण्डार, जच्चा-बच्चा केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, पशु अस्पताल/सेवा, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र हैं ।

ग्राम योजना प्रतिरूप- इस गांव का बसाव बहुत अनियमित है । मकानों की आकृति व आकार में विषमता है । रास्ते व गलियाँ बहुत संकरी व तंग हैं जिनमें गन्दगी व पानी का भराव रहता है । प्रस्तावित योजना प्रतिरूप निम्न है-

आवासीय क्षेत्र हेतु	16 हेक्टेयर
रास्ता व सार्वजनिक उपयोग हेतु	15 हेक्टेयर
ग्रामीण उद्योग हेतु	19 हेक्टेयर
बाग एवं चारागाह	60 हेक्टेयर
कृषि (कृषि वानिकी सहित) हेतु	188.36 हेक्टेयर

आवासीय क्षेत्र हेतु प्रस्तावित गृह प्रतिरूप को चित्र संख्या 8.3 में दर्शाया गया है ।

सुझाव एवं संस्तुतियाँ (Suggestions & Recommendations)

अध्ययन क्षेत्र के समग्र ग्रामीण विकास हेतु सुझाव एवं संस्तुतियाँ निम्नवत हैं :

1. यातायात व संचार के साधन ग्रामीण विकास के मेरूदण्ड हैं अस्तु प्रस्तावित सभी सेवा केन्द्रों को पक्की सड़कों से जोड़ा जाये ।
2. शिक्षा वर्तमान युग की प्रमुख आवश्यकता है । अतः प्रभावी रूप से इसे ग्राम्य क्षेत्र में विस्तारित किया जाना चाहिए ।
3. सम्पूर्ण जनपद में अदालत पंचायत स्तर पर जूनियर हाईस्कूल (बालिका)

LAY OUT FOR THE VILLAGE KANAKHERA
PB PANCHYAT BHAWAN
PS PRIMARY SCHOOL
JHS JUNIOR HIGH SCHOOL
O POND
L LOWN
S SHOPS
PG PLAY GROUND
HOUSE
B BANK
SO SOCIETY
N
S
200 RESIDENCE
200 BADA(CATTLE)
100 OTHERS
500 TOTAL HOUSE
PB
SO
B
JHS
PS
L
PG
S
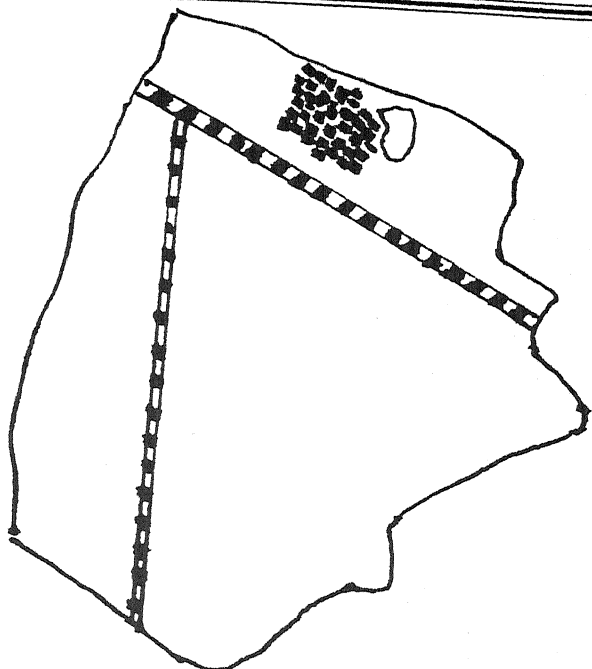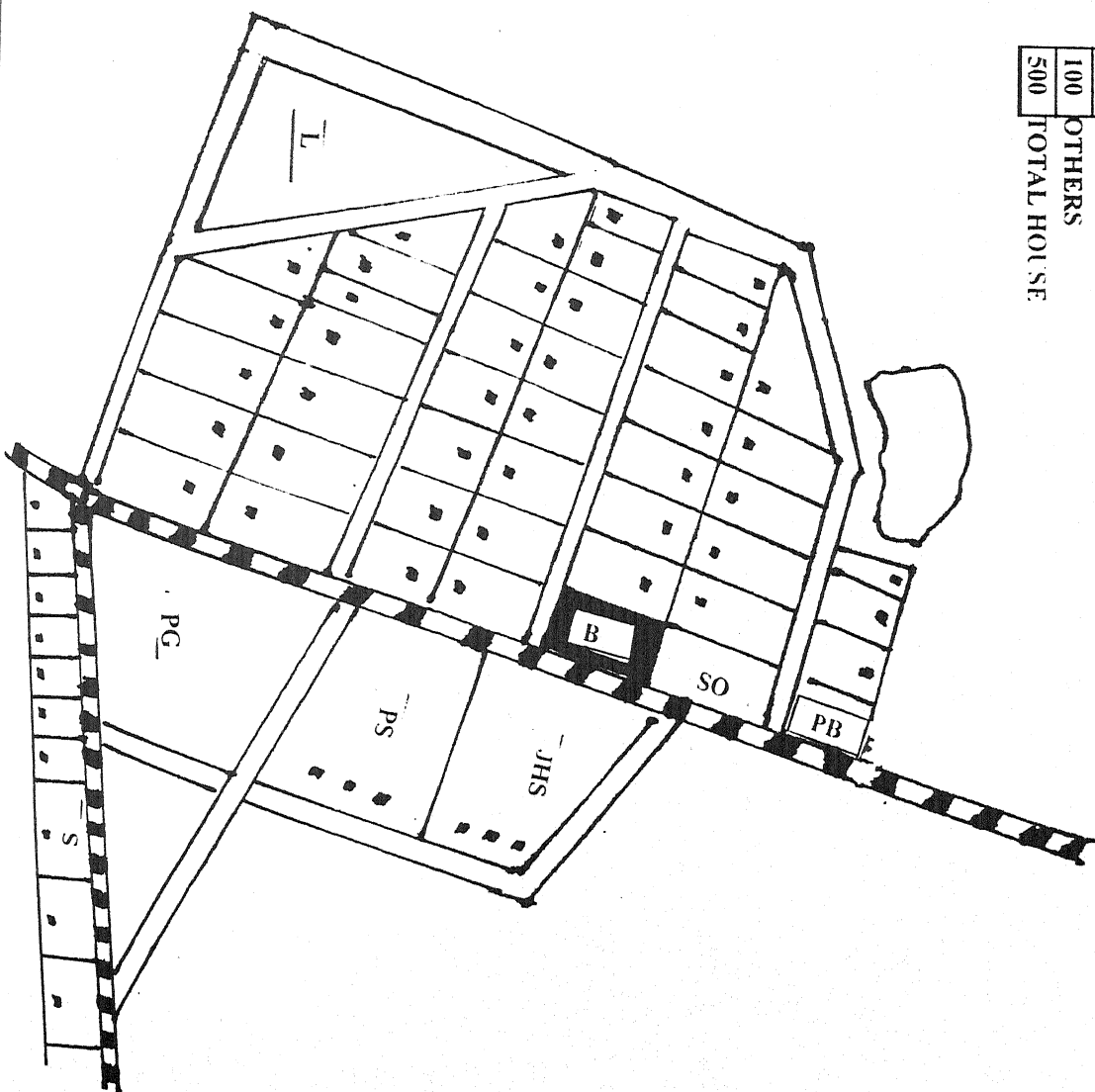
हाईस्कूल (बालक एवं बालिका) तथा विकासखण्ड स्तर पर बालक एवं बालिका इण्टर कालेज खोले जायें ।

4. क्षेत्र में प्राइमरी शिक्षा की स्थिति दयनीय है । प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की अनुपस्थिति आम बात है । सर्वेक्षण बताता है कि प्राइमरी शिक्षक शासन द्वारा थोपे गये विभिन्न सर्वेक्षण कार्यों में अपना समय व्यतीत कर देते हैं, इसलिए पढ़ाई में समय नहीं दे पाते । अस्तु उन्हें एक मात्र बालकों की पढ़ाई में लगा रहने दिया जाये ताकि बालकों की शैक्षणिक नींव कमजोर न हो। साथ ही प्रत्येक 500 जनसंख्या वाले अधिवास में प्राइमरी स्कूल खोला जाए।
5. विकासखण्ड स्तर पर तकनीकी शिक्षा केन्द्र की स्थापना कराई जाए ।
6. क्षेत्र के निवासियों को दुग्ध डेरी हेतु उचित प्रशिक्षण दिया जाए क्यों अध्ययन क्षेत्र में डेरी विकास की अपार सम्भावनाएँ हैं ।
7. स्वास्थ्य सुविधाओं का सभी प्रस्तावित सेवा केन्द्रों में प्रसार किया जाए तथा जो उपलब्ध सेवाए हैं उनकी कार्य क्षमता, कार्यकुशलता व दक्षता को बढ़ाया जाए।
8. शासन द्वारा प्रत्येक न्याय पंचायत में आवश्यक रूप से एक अस्पताल खोला जाये तथा प्रत्येक ग्राम में आधारभूत स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थापना की जाये।
9. शासन द्वारा प्रत्येक न्याय पंचायत में जच्चा-बच्चा केन्द्र व परिवार नियोजन केन्द्र की स्थापना की जाये ।
10. अन्ना प्रथा को समाप्त करने हेतु सामाजिक जन-जागरण का कार्य किया जाये।
11. ग्रामीण क्षेत्र के औद्योगिक विकास हेतु पांच औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना की जा सकती है । इससे ग्रामों क्षेत्रों से नगरों की ओर पलायन कर रहे लोगों को क्षेत्र में रोजगार मिल सके ।
12. बरगढ़ क्षेत्र में उत्तम किस्म के कांच उद्योग को विकसित करने की अपार सम्भावनाएँ विद्यमान हैं ।
13. ग्रामीणों को कृषि वानिकी का महत्व बताया जाये जिससे वनों की अति दयनीय स्थित में सुधार हो तथा पर्यावरण सुरक्षा हो सके ।
14. वनों की सुरक्षा व संरक्षण हेतु सख्त कदम उठाये जायें जिससे वनों के घटते हुए क्षेत्र को रोका जा सके तथा नये क्षेत्रों में वनों का रोपण किया जाये।

नि:सन्देह रूप से उपयुक्त सभी सुझावों पर अमल करने से अध्ययन क्षेत्र का तेजी से विकास होगा ।

References

1. Braye, F.L. (1946) : Better Village, Bombay and Oxford.
2. Dube, S.C. (1958) : Indias Changing Village, Bombay.
3. F.A.O. Issue, I.R.D. Draft Paper of E.S.H. Division, Colombo Session of Export on I.R.D. Oct. 1975.
4. Haggett, P. And Gunawardena, K.A. (1974) : Determination of Population Thresholds for Settlement Functions by Reed-Muench Method, Professional Geographer, Vol. 16, PP. 6-9.
5. Lowton, G.S. (1959) : India's Changing Village, Royal Geog. Soc. of Australia.
6. Milik, M.S. (1973) : Intregated Rural Development in Pakistan, Paper Presented in International Seminar on Rural Development, Lahore.
7. Mathur, J.S. (1977) : Area Planning - Critical Review and Regional Development, Unpublished Paper, 10th Course on I.R.D. Sept.-Oct. (Hyderabad, N.I.C.D.).
8. मिश्र, कृष्ण कुमार (1994) : ग्रामीण अधिवास भूगोल कुसुम प्रकाशन, अतर्रा ।
9. Misra, O.P. (1983) : Gonda Tahsil : A Study in Integrated Rural Development, Unpublished Ph.D. Thesis, Avadh University, Faizabad.
10. Ram Chandra, R. (1969) : Technical Change and Spatial Diffusion in Rural India, Worcester.
11. Sen, L.K. et. al. (1971) : Planning Rural Growth Centres for Integrated Area Development : The Study in Miryalguda Taluka (Hyderabad N.I.C.D.), P. 245.

परिशिष्ट - अ

प्रश्न-1 ग्रामीण सेवा केन्द्र में कार्यात्मक इकाईयों का सर्वेक्षण

क्रम संख्या	कार्यो के नाम	सेवा हाँ/नहीं	केन्द्र में कार्यात्मक इकाई की संख्या
1	ट्रैक्टर के उपकरण एवं ट्रैक्टर मरम्मत केन्द्र		
2	बैंक		
3	नाई की दुकान		
4	बैटरी भरने की मशीन		
5	साइकिल मरम्मत केन्द्र		
6	लोहार		
7	कागज,कलम तथा पुस्तक विक्रेता		
8	ईट के भट्‌टे		
9	बढ़ई		
10	कपड़ा बेचने की दुकान		
11	मोची		
12	प्राइमरी स्कूल		
13	जूनियर हाई स्कूल		
14	हाई स्कूल		
15	इण्टर कालेज		
16	पशु चिकित्सालय/पशु सेवा केन्द्र		
17	प्रैक्टिस करने वाले चिकित्सक		
18	औषधालय		
19	अस्पताल		
20	दवा विक्रेता/दवाखाना		
21	पुलिस चौकी		
22	पुलिस स्टेशन		
23	किला		
24	सरॉय/धर्मशाला		
25	सहकारी समिति		
26	बीज भंडार		
27	खाद भंडार		
28	परचून की दुकान		
29	बस स्टाप		
30	रेलवे स्टेशन		
31	उप डाक घर		
32	ब्रांच डाक घर		
33	हलवाई की दुकान		

34 चाय की दुकान
35 कृषि सेवा केन्द्र
36 रजाई गद्दा की दुकान
37 उद्योग
38 डलिया या झोला बनाने की दुकान
39 लकड़ी के कृषि यंत्र की दुकान
40 कृषि यंत्रों के मरम्मत की दुकान
41 दुग्ध एकत्रीकरण केन्द्र
42 लकड़ी चीरने का कारखाना
43 आटा चक्की
44 रूई धुनने की मशीन
45 बाजार
46 जानवर बाजार
47 टेलीग्राफ आफिस
48 टेलीफोन इकस्चेन्ज/पी0सी0ओ0
49 रेडियो तथा बिजली मरम्मत केन्द्र
50 सिलाई मशीन मरम्मत एवं बिक्री केन्द्र
51 जूते की फुटकर बिक्री की दुकानें
52 विशेष मेला
53 दर्जी की दुकाने
54 तकनीकी संस्थायें
55 फल/सब्जी बिक्री की दुकानें
56 केवल सब्जी की दुकानें
57 घड़ी मरम्मत एवं फुटकर बिक्री केन्द्र
58 मस्जिद
59 मन्दिर
60 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र
61 जच्चा-बच्चा केन्द्र
62 परिवार नियोजन केन्द्र
63 न्याय पंचायत
64 विकासखण्ड

प्रश्न-2 आपके गांव में पंचायत की कब स्थापना हुई तथा आपके गांव के विकास पर इसका क्या प्रभाव रहा है? यदि कोई अधोलिखित पर प्रभाव हो?

अ- पक्की सड़क या गली

ब- हाउस टैक्स तथा गृह निर्माण नियन्त्रण

स- शिक्षा

द- चुंगीघर

य- सीवेज

र- जलापूर्ति

ल- स्वास्थ्य सेवायें

त- सफाई

थ- पुलिस चौकी

द- थाना

प्रथम-3 आपके गाँव में स्थानीय सरकार के परिवर्तन के अनुभव जैसे (ग्राम सभा से न्याय पंचायत) उपरोक्त परिवर्तन ने आपके गांव को किस प्रकार प्रभावित किया ?

प्रथम-4 आपके गांव की उत्पत्ति तथा विकास का ऐतिहासिक विवरण अधोलिखित नवीन वस्तुओं ने आपके गांव को कब और कैसे प्रभावित किया?

1847-88	1888-1918	1918-47	1947-66	1966-71	1971-75	1975-80	1980-85	1985-90	1990 से अब तक

1. स्कूल
2. अस्पताल
3. दुकान
4. बस स्टाप
5. रेलवे स्टेशन
6. पशु अस्पताल
7. पुलिस चौकी
8. थाना
9. मदिरा केन्द्र
10. सहकारी समिति
11. होटल
12. बैंक
13. बाजार
14. मन्दिर
15. मस्जिद

प्रश्न-5 अधोलिखित घटनाओं का आपके सेवा केन्द्र के विकास तथा उन्नति पर क्या प्रभाव पड़ा?

1. ब्रिटिश आगमन
2. गदर तथा सैन्य विद्रोह का प्रभाव
3. सूखा
4. प्लेग (1901-1911)
5. इन्फ्लूएंजा (1911-18)
6. मलेरिया
7. विपन्नता (1930)
8. द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45)

9. देश की विभाजन (1947)
10. प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56), कृषि विकास
11. चकबन्दी का प्रभाव
12. चुनाव का प्रभाव
13. द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61), उद्योग धन्धों पर
14. तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66), ग्रामीण उत्थान तथा उद्योग धन्धों पर
15. समाज कल्याण विभाग
16. चतुर्थ पंचवर्षीय योजना
17. पंचम पंचवर्षीय योजना
18. छठी पंचवर्षीय योजना
19. सातवीं पंचवर्षीय योजना
20. आठवीं पंचवर्षीय योजना
21. नवी पंचवर्षीय योजना
22. अन्य

प्रश्न-6 किसी सेवा केन्द्र पर व्यापार से घिरे हुए क्षेत्र की निर्धारण की प्रश्नावलियाँ

1. जाति के आधार पर परिवारों की संख्या

1. गांव का नाम-
2. परिवारों की संख्या-
3. वर्गो की संख्या-

प्रथम-अ सामान्यत: अधोलिखित वस्तुओं को तुम कहाँ बेचते हो ?

1. अधिक कृषि उत्पादन
2. दूध तथा दूध से बनी वस्तुयें
3. सब्जी तथा फल
4. जानवर
5. घरेलू औद्योगिक वस्तुयें

प्रश्न-ब समान्यत: अधोलिखित को कहाँ खरीदने जाते हों ?

1. चाय
2. नमक
3. मदिरा
4. साबुन
5. मिट्टी का तेल
6. दियासिलाई
7. कपड़ा/खद्दर
8. शादी विवाह की सामग्री जैसे आभूषण, घड़िया, पलंग
9. ऊनी कपड़े
10. रेडियो/ट्रांजिस्टर
11. बक्से, सन्दूक, ताले
12. साइकिल

13. घरेलू बर्तन
14. जूते
15. छाता
16. कंघे एवं शीशे
17. पशु
18. सिगरेट तथा बीड़ी
19. बीज/खाद
20. कृषि सम्बन्धी यन्त्र
21. बैलगाड़ी
22. ट्रैक्टर
23. ईंट
24. अन्य

प्रश्न-स- सामान्यतः अधोलिखित सेवाएँ तुम कहाँ पाते हो?

1. प्राइमरी स्कूल
2. जूनियर हाईस्कूल
3. हाईस्कूल
4. इण्टर कालेज
5. तकनीकी संस्थायें
6. विश्वविद्यालय
7. चिकित्सा सुविधा;
   दवा विक्रेता, औषधालय, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, पशु चिकित्सालय, जच्चा बच्चा केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, चिकित्सालय, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र
8. वैद्य/हकीम
9. डाक्टर
10. दन्त चिकित्सक
11. नेत्र चिकित्सक
12. अस्पताल
13. हल की मरम्मत
14. कृषि यत्रों की मरम्मत
15. ट्रैक्टर मरम्मत
16. घरेलू वस्तुओं की मरम्मत
17. जूतों की मरम्मत
18. साइकिल मरम्मत
19. तालों की मरम्मत
20. अन्य

प्रश्न-द - सामान्यतः अधोलिखित सेवाओं के लिए तुम कहाँ जाते हो?

1. बस पकड़ने के लिए
2. रेल के लिए

3. पोस्ट आफिस
4. टेलीग्राफ
5. टेलीफोन करने या प्राप्त करने के लिए
6. बैंक व्यापार के लिए
8. सिनेमा
9. त्यौहार में शामिल होने के लिए
10. धार्मिक स्थानों के लिए
11. नियमित रूप से कार्य करने के लिए
12. सुरक्षा की सहायता हेतु
13. विकास सुविधाओं हेतु
14. अन्य

प्रश्न-य- गांव में यातायात के साधनों का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या?

BIBLOGRAPHY

Books :-

1. Acharya, P.K. 1993 : Architecture of the Mansara (London).
2. Ahmad, E. 1949 : Rural Settlements in the United Provinces of Agra and Oudh, Ph. D. Thesis, London University.
3 Allchins, B. and R. 1968 : The Birth of Indian Civilization (Harmondsworth : Penguin Books).
4. Baden Powell, B.H. 1892 : Land Systems of British India, Vol 1 (London), P. 97.
5. Baden Powell, B.H. 1896 : Indian Village Community (London : Longmans).
6. Berry, B.J.L. 1967 : Geography of Market Centres and Retail Distribution (Englewood: Cliffs, NJ : Prentice Hall. INC)
7. Blache, P. Vidal De La, 1952 : Principles of Human Geography, (London : Constable Publishers).
8. Bose, A.N. 1961 : Social And Rural Economy of Northern India (Calcutta : Firma K.L. Mukhopadhyay).
9. Brown, P. 1965 : Indian Architecture : Buddhist and Hindu Period (Bombay : D.B. Taraporevala Sons and Co. Ltd.).
10. Bunge, W. 1962 : Theoretical Geography, Lund Studies in Gepgraphy, Series C, General and Mathematical Geography, No. 1.
11. चांदना, आर0सी0 1994 : जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना ।
12. Chandrasekhar, S. 1967 : India's Population : Fact, Problem and Policy in Asia's Population Problems (Bombay : Allied Publishers, Pvt. Ltd.).
13. Chatterjes. S.P. 1964 : Fifty Years Of Sciences in India : Progress of Geography (Calcutta : Indian Seience Congress Association).
14. Chatterjee, S.P. 1968 : Progress of Geography in India 1964-68 (Calcutta).
15. Chisholm, M. 1968 : Rural Settlement and Land Use (London : Hutchison Ini. Press).
16. Christaller, W. 1933 : Die Zentralen Orte in Suddeutschland. Jena, Translated By C.W. Baskin, Central Places in Southern Germany (Englewood Cliff, New Jersey : Prentice Hall, 1966).
17. Clarke, J.I. 1970 : Population Geography (Oxford : Pergamon).
18. Cunningham, A. 1871 : Ancient Geography of India (London).
19. Doxiadis, C.A. 1968 : Ekistics, An Introduction to the Science of Human Settlements (New York : Oxford Uni. Press).
20. Doxiadis, C.A. 1969 A : The Future of Human Settlements in the Place of Value in a World of Facts, Edited by A. Tiselius and S. Nilsson, (Stockholm : Almqvist and Wiksell).
21. Dube, S.C. 1955 : Indian Village (London : Routelge and Kegan Paul).
22. Finch, V.C. and Trewartha, G.T. 1946 : Elements of Geography : Physical and Cultural, (New York : Mc Graw Hill).
23. Getis, A. And Boots, B. 1978 : Models of Spatial Processes, (Cambridge : The University Press).
24. Gosal, G.S. 1972 : Geography of Rural Settlements : A Trend Report in Survey of Research in Geography, ICSSR, New Delhi (Bombay : Popular Prakashan).
25. Guha, B.S. 1937 : A Racial Elements in Population, Oxford : Pamphlet No. 22.
26. Guha, B.S. 1937 B : An Outline of the Racial Ethnology of India.

27. Hagerstrand, T. 1967 : Innovation Diffusion as a Spatial Process, Translated by A. Pred (Chicago : Chicago University Press).
28. Haggett, P. 1965 : Locational Analysis in Human Geography (London : Edward Arnold).
29. Haggett, P. 1972 : Geography : A Modern Synthesis (New York and London : Harper and Row Publishers).
30. Havel, E.E. 1915 : Ancient And Medieval Architecture of India (London).
31. Inshihara, Hiroshi 1951 : Markets and Marketing in North India, Nagoya, Japan.
32. Jain, R.C. 1964 : The Most Ancient Aryan Society (VAranasi).
33. Jain, R.C. 1970 : Ethonology of Ancient Bharat (Varanasi).
34. Jarret, H.S. 1949 : Ain-i-Akbari, Translated (Calcutta).
35. Johnson, E.A.J. 1965 : Market Towns and Spatial Development in India (New Delhi).
36. Krishnan, M.S. 1960 : Geology of India and Burma (Madras : Higginbothams).
37. Lal, N. 1989 : Rural Development & Planning. Chugh Publications, Allahabad.
38. Losch, A. 1954 : The Economics of Location (New Haven : Yale University Press).
39. Mahajan, V.D. 1978 : Ancient India (New Delhi : S. Chand And Co. Ltd.).
40. Majumdar, R.C. 1977 : Ancient India (Delhi : Motilal Banarasi Dass).
41. Meitzen, A. 1895 : A Quantitative Geomorphic Study of Drainage Basin Characteristics in the Clinch Mountain Area, Virginia and Tennessee, Office of Naval Research, Geography Branch NR 389-402, Technical Report 3.
42. मिश्र, कृष्ण कुमार 1994 : अधिवास भूगोल, कुसुम प्रकाशन, अतर्रा ।
43. मिश्र, कृष्ण कुमार 1994 : ग्रामीण अधिवास भूगोल, कुसुम प्रकाशन, अतर्रा ।
44. Misra, H.N. edit, 1987 : Rural Geography, Heritage Publishers, New Delhi.
45. Misra, R.P. 1988 : Research Methodology : A Handbook, Concept Publishing Company, New Delhi.
46. Misra, R.P. 1990 : District Planning : A Handbook, Concept Publishing Company, New Delhi.
47. Mitchell, J.B. 1960 : Historical Geography (London : The English University Press Ltd.).
48. Mookerjee. R.K. 1950 : Hindu Civilization (Calcutta).
49. Morrill, R.L. 1962 : Simulation of Central Place Pattern Over Time, Lund Studies in Geography, Series B, Human Geography, No. 24.
50. Prasad, I. 1947 : History of India (Allahabad : Indian Press).
51. Ram Raj, 1823 : Essays on the Architecture of the Hindus (London).
52. Reilly, W.J. 1931 : The Law of Retail Gravitation (New York : Reilly).
53. Sen, L.K. et.al. 1971 : Planning Rural Growth Centres for Integrated Area Development : A Study in Miryalguda Taluka (Hyderabad : N.I.C.D.).
54. Singh, L.R. 1965 : The Tarai Region of U.P. : A Study in Human Geography (Allahabad: Ram Narainlal Beni Prasad).
55. Singh, R.L. 1971, (ed). : India : A Regional Geography (Varanasi : N.G.S.I.).
56. Singh, R.L. and Singh, K.N. 1968 : Eastern Uttar Pradesh in India : Regional Studies, Edited by R.L. Singh (Calcutta : Indian National Cemmittee for Geography).
57. Singh, R.L. and Singh, K.N. 1975, (eds) : Readings in Rural Settlement Geography, NGSI Publication No. 14 (Varanasi : N.G.S.I.).

58. Singh, R.L., Singh K.N. and Singh, R.P.B. 1976, (eds.) : Geographic Dimensions of Rural Settlements, NGSI Publication No. 16 (Varanasi : N.G.S.I.).
59. Singh, R.L. and Singh, R.P.B. 1978 : A Spatial Planning in India Perspective : an Approach Towards Theory and its Application (Varanasi : N.G.S.I.).
60. Singh, R.L. and Singh, R.P.B. 1978 B, (eds) : Transformation of Rural Habital in Indian Perspective : A Geographic Dimension (Varanasi : N.G.S.I.).
61 Singh, R.P.B. 1977 : Clan Settlements in the Saran Plain (Middle Ganga Valley): A Study in Cultural Geography, NGSI Research Publication No. 18 (Varanasi : N.G.S.I.).
62. Smith, D.M. 1975 : Patterns in Human Geography, Penguin Books (Harmondsworth, Middlesex : David and Charles).
63. Singh, S.B., 1977 : Rural Settlement Geography : A Case Study of Sultanpur District, Uttar Bharat Bhoogal Parishad, Gorakhpur.
64. Sinha, R.N.P., 1992 : Geography and Rural Development, Concept Publishing Company, New Delhi.
65. Sunderam, K.V. 1985 : Geography and Planning for Rural Development, New Delhi.
66. Thaper, R. 1967 : A History of India (Harmondsworth : Penguin Books).
67. Thakur, R.N. 1985 : Micro-Regional Central Place System in India, Inter-India Publication, New Delhi.
68. Thompson, D' Arcy W. 1917 : On Growth and form (Cambridge : Cambridge University Press), Revised in 1942.
69. Tiwari, P.S. 1973 : Agricultural Atlas of Uttar Pradesh (Pantnagar, Nainital : G.B. Pant Uni. of Agri. and Tech.)
70. Tiwari, R.C. 1984 : Settlement System in Rural India : A Case Study of the lower Ganga-Yamuna Doab (Allahabad Geographical Society, Allahabad).
71. Wanmali, S. 1987 : Geography of a Rural Service System in India, B.R. Publishing Corporation, New Delhi.
72. Zelinski, W. 1966 : A Prologue to Population Geography (Englewood Cliff : Prentice Hall), Quoted by Fielding, G.J. 1974 : Geography As A Social Science (New York Harper and Row, Publishers).

Articles :-

1. Ahmad, A. 1980-81, (ed.) : I.C.S.S.R. Journal of Abstracts and Reviews : Geography, Vols. 6-7, 1980 and 1981 (New Delhi : I.C.S.S.R.).
2. Asthana, V.K. 1994 : Shape Index of Village and their Relationship with Population and Area, Uttar Bharat Bhoogol Patrika, Vol. 30, No. 2. PP. 125-129.
3. Beaven, K.S.O. 1975 : Christaller's Central Place Theory : Reveiwed, Revealed, Revised, Research Paper No. 15 (Johannesburg : University of Witwatersrand, Deptt. of Geog. and Env. Studies).
4. भट्ट, आर0के0 1998 : ग्रामीण उत्थान का एक सोपान : आवास निर्माण, ग्रामीण विकास समीक्षा, अंक 23, पृष्ठ 86-92 ।
5. Bootes, B.N. 1978 : Haggett's Shape Index, Area, Vol 10, No. 2, PP. 86-97.
6. Boyce. R.R. And Clark, W.A.V, 1964 : The Concept of Shape in Geography, Geographical Review, Vol. 54, PP. 561-572.
7. Bracey, H.E.1953 : Towns as Rural Service Centers, Transactions, Institute of British Geographers, Vol 19, PP. 95-105.

8. Bracey, H.E. 1956 : A Rural Component of Centrality Applied to Six Southern Counties in the United Kingdom, Economic Geography, Vol. 32, PP. 38-50.
9. Butler, C., Jensen 1972 : Nearest Nearest Neighbour Analysis of a Central Place System, Tijds. Voor Econ. En. Soc. Geografie, Vol 63, No. 5, PP. 353-359.
10. Bylund, E. 1960 : Theoretical Considerations Regarding the Distribution of Settlements in Inner North Sweden, Geografiska Annaler, Vol. 42, PP. 225-231.
11. Clark, P.J. And Evans, F.C. 1954 : Distance to Nearest Neighbour as a Measure of Relationship in Population, Ecology, Vol. 35. PP. 445-453.
12. Clark, P.J. 1956 : Grouping in Spatial Distribution, Science, Vol. 123, PP. 373-374.
13. Crooke, W. 1896 : The Tribes and Castes of the North Western Provinces of Agra And Oudh. Vol. 2 (Calcutta : Govt. Press), P. 4.
14. Dacey, M.F. And Tung Tze Hsiung 1962 : Identification of Randomness in Point Pattern, Journal Of Regional Science, Vol. 4, PP. 83-96.
15. Dacey M.F. 1964 : Modified Poisson Probability Law for Point Pattern More Regular Than Random, A.A.A.G., Vol. 54. PP. 559-565.
16. Dacey M.F. 1965 : Order Distance in an Inhomogeneous Random Point Pattern, Canadian Geographer, Vol. 9, PP. 144-152.
17. Dakshinamurti, C, Michael, A.M. and Mohan, S. 1973 : Water Resources of India and their Utilization in Agriculture (New Delhi : Water Technology Centre, Indian Agricultural Research Institute), PP. 75-110.
18. Davis, K. 1953 : The Determinants and Consequences of Population Trends, Series A, Population Studies No. 17 (New York : United Nations), P. 8.
19. Demangeon, A. 1925-26 : Agricultural System and Schemes of Distribution of Population in Western Europe, The Geographical Teacher, Vol. 13, PP. 199-205.
20. Doxiadis C.A. 1969 B : Ekistics, An Attempt for the Scientific Approach to the Problems of Human Settlements in Science and Technology and the Cities (Washington D. C. : U.S. House of Representatives, Committee on the Science and Astronautics), PP. 9-32.
21. Eidt. R.C. 1975 : Towards a Unified Methodology in Abandoned Settlement Analysis : Contributions From Geography and Archaeology, Nat. Geog. Journal of India, Vol. 21. Parts 3 and 4, PP. 149-150.
22. Geddes, A. 1941 : Half A Century of Population Trends in India : A Regional Study of Net Change and Variablity, 1881-1931, Geographical Journal, Vol. 98, PP. 228-252.
23. Getis, A. 1964 : Temporal Land Use Pattern Analysis with the Use of Nearest Neighbour and Quadrant Method, A.A.A.G., Vol. 54, PP. 391-399.
24. Grossman, D. 1971 : Do We Have A Theory of Settlement Geography ? Professional Geographer, Vol. 23, PP. 197-203.
25. Haggett. P. and Gunawardena, K.A. 1964 : Determination of Population Threshold for Settlement Functions by Reed-Muench Method, Professional Geographer, Vol. 16, PP. 6-9.
26. Hall, R.B. 1931 : Some Rural Settlement Forms in Japan, Geographical Review, Vol. 21, PP. 93-123.
27. Harris, C.D. and Ullman, E.L. 1945 : The Nature of Cities, Annals of the American Academy of Political and Social Science, Vol. 242, PP. 7-17.
28. Hoyt, Homer 1936-37 : City Growth and Mortgage Risk, Insured Mortgage Portfolio, Vol. 1,. Nos. 6-10.

29. Hudson, J.C. 1968 : Pattern Recognition in Empirical Map Analysis, Journal of Regional Science, Vol. 9, PP. 189-199.

30. Hudson, J.C. 1969 : A Location Theory for Rural Settlements, A.A.A.G., Vol. 59, PP. 365-381.

31. Jayaswal, S.N.P. 1968 : Evolution of Service Centres of the Eastern Part of the Ganga- Yamuna Doab, U.P., The Geographical Knowledge, Vol. 1, No. 2 (Kanpur),P. 122.

32. Jayaswal, S.N.P. 1972 : Rural Settlement Types in the Eastern Part of the Ganga-Yamuna Doab in Rural Settlements in Monsoon Asia, Edited By R.L. Singh (Varanasi : N.G.S.I.), PP. 333-336.

33. Jefferson, M. 1931 : The Distribution of The World's City Folk, Geographical Review, Vol. 21, P. 453.

34. Lalwani, K.C. 1978 : Micro-Planning and Village Level Worker, Northern India Patrika (Allahabad), P. 4.

35. मालवीय, ए0के0, 1992 : ग्राम्य विकास : समस्याएँ एवं समाधान, ग्रामीण विकास समीक्षा, अंक 12, पृष्ठ 1-61 ।

36. Mathur, J.S. 1977 : Area Planning - Critical Review and Regional Development, Unpublished Paper, 10th Course on IRD, Sept. - Oct. (Hyderabad : N.I.C.D.).

37. Mehrotra, C.L. 1972 : Soils of Uttar Pradesh in Soils if India (New Delhi : Fertliser Association of India), PP. 278-296.

38. मिश्रा, डी0के0, 1993 : ग्रामीबजनसंख्या का शहरों की ओर पलायन, भू विज्ञान वाराणसी, अंक 8, भाग-1 व 2, पृष्ठ 45-51 ।

39. Misra, K.K. 1985 : Service Centre Approach Vis-a-Vis Rural Agricultural and Urban- Industrial Approach with Reference to the Development Planning of Hamirpur District, U.P., Transactions, Indian Council of Geographers, Vol. 14, PP. 4-8.

40. Misra, K.K. 1985 : The Introduction of Appropriate Technology for Integrated Rural Development, Transactions, Indian Council of Geographers, Vol. 15, PP. 35-57.

41. Misra, K.K. 1986 : Indentification of Functional Hierarchy of Service Centres in Hamirpur District, The Deccan Geographer, Vol. 24, No 3, PP. 98-114.

42. Misra, K.K. 1986 : A Survey Study of Basrehi Village in Banda District, Transactions, Indian Council of Geographers, Vol. 16, PP. 56-59.

43. Misra, K.K. 1987 : Service Centre Strategy in the Deveolopment Planning of Hamirpur District, U.P., Indian Journal of Regional Science, Vol. 19, No. 1, PP. 87-90.

44. Misra, K.K. 1988 : Rural Ecology : The Crucial Issues, The Deccan Geographer, Vol. 26, No. 283, PP. 429-434.

45. Misra, K.K. 1991 : Socio-Economic and Environmental Problems in Banda-Hamirpur Districts, U.P., Indian National Geographer, Lucknow. Vol. 6, No. 1&2, PP. 83-89.

46. मिश्र, कृष्णकुमार एवं तनवीर अहमद खान, 1991 : अविकसित अर्थतन्त्र में सेवा केन्द्रों का विकासात्मक प्रतिरूप, भूविज्ञान, वाराणसी, अंक 6, भाग- 1 एवं 2, पृष्ठ 47-57 ।

47. Misra, K.K. 1992 : Service Area Mosaic in a Slow Growing Economy,

Geographical Review of India, Vol. 54, No. 4, PP. 10-25.

48. मिश्र, कृष्णकुमार, 1992 : बांदा जनपद के विकास में तुलसी ग्रामीण बैंक की भूमिका, कुरूक्षेत्र, अंक 3, पृष्ठ 45-49 ।

49. Misra, K.K. 1993 : Socio-Economic Infrastructure in Banda-Hamirpur, U.P., Indian Journal of Landscape Systems and Ecological Studies, Calcutta, Vol. 16, No. 2, PP. 8-11.

50. मिश्र, कृष्णकुमार, 1995 : बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण से गांवों की अस्मिता खतरें में, कुरूक्षेत्र, अंक 8, पृष्ठ 7-8 ।

51. मिश्र, कृष्णकुमार, 1996 : बांदा जनपद : विकास की दृष्टि में, सिद्धार्थ ज्योति, मई अंक, पृष्ठ 23-25 ।

52. मिश्र, कृष्णकुमार एवं रमेशचन्द्र नामदेव, 1996 : सामाजिक सुविधाओं का स्थानिक वितरण एवं नियोजन : उरई तहसील (उ0प्र0) का एक प्रतीक अध्ययन, भूविज्ञान, अंक 11, भाग- 1 एवं 2, पृष्ठ 17-26 ।

53. मिश्र, कृष्णकुमार, 1996 : सुरक्षा बनाम ग्रामीण विकास, ग्रामीण विकास समीक्षा, अंक 20, पृष्ठ 53-55 ।

54. मिश्र, कृष्णकुमार, 1997 : गांवों के विकास में ताल-तलैयों की भूमिका, कुरूक्षेत्र, अंक 4-5, पृष्ठ 59-61 ।

55. मिश्र, कृष्णकुमार, 1998 : क्षेत्रीय विकास की समस्याएँ, ग्रामीण विकास समीक्षा, हैदराबाद, अंक 23, पृष्ठ 131-139 ।

56. मिश्र, कृष्णकुमार, 1998 : बाल श्रमिकों की स्थिति एवं उनके समाधान की दिशा, ग्रामीण विकास समीक्षा, हैदराबाद, अंक 24, पृष्ठ 130-138 ।

57. मिश्र, कृष्णकुमार, 1999 : बढ़ते हुए जल प्रदूषण से ग्राम्य जीवन संकट में, कुरूक्षेत्र, अंक 2, पृष्ठ 32-34 ।

58. Misra, R.P. 1982 : The Changing Perception of Development Problems, Pariyojan, Vol. 3, No. 2, P. 3.

60. Morrill, R.L. 1963 : The Development of Spatial Distribution of Towns in Sweden : An Historical Predictive Approach, A.A.A.G., Vol. 53, PP. 14.

61. Mukerji, A.B. 1979 : Geography of Rural Settlements in Survey of Research in Geography 1969-72, Edited by Moonis Raza, ICSSR, New Delhi (Bombay : Allied Publishers Pvt. Ltd.), PP. 177-187.

62. Pinder, D.A. and Witherick, M.E. 1972 : The Principles, Practice and Pitfalls of Nearest Neighbour Analysis, Geography, Vol. 57, PP. 277-288.

63. Raza, M. 1975-79, Ed.: I.C.S.S.R. Journal of Abstracts and Reviews,Geography, Vol. 1-5 (New Delhi : ICSSR).

64. Reddy, N.B.K. 1973 : Refinement of the Nearest Neighbour and Reflexive Neighbour Analysis, Indian Geographical Journal, Vol. 48, PP. 1-9.

65. Roy, K. 1989 : Spatial Distribution and Types of Rural Settlements in Fatehpur District, National Geographer, Allahabad, Vol. 24, No. 1, PP. 77-92.

66. Rozyeka, W. 1964 : Physiographic Research in Town and Country Planning, Problems of Applied Geography, II, PAN, PP. 251-262.

67. Sandner, G. 1961 : Agrakolonisation in Costa Rica : Siedlung, Wirtschaft und Sozialfuge an der Pioniergrenze, Schriften des Geographischen Instituts der Universitat, Kiel, Vol. 19, quoted in Haggett, P. 1965 : Locational

Analysis in Human Geography (London : Edward Arnold), P. 99.

68. Sankalia, H.D. 1965 : Traditional Indian Chronology and Cl 4 Dates of Excavated Sites in Pre-History, Edited by V.N. Misra And M.S. Mate (Poona : Deccan College), PP. 219-235.

69. Saxena, V.B. 1976 : Rural Housing in India : Cost Reduction Techniques, Rural India, Vol. 40. PP. 41-42.

70. Sharma, G.R. 1973 : Mesolithic Lake Cultures in the Ganga Valley. India, Proc. Pre-Hist. Society, Vol. 39, PP. 129-146.

71. Simmons, J.W. 1962 : Relationships Between the Population Density Pattern and Site of Cities, M.A. Thesis (Uni. of Chicago) Unpublished, Quoted in Berry, B.J.L. et. al. 1963 : Urban Population Densities : Structure and Change, Geographical Review, Vol. 53, PP. 389-405.

72 Singh, Kashi N. 1968 : The Territorial Basis of Medieval Town and Village Settlement in Eastern Uttar Pradesh, India, A.A.A.G. Vol. 58, PP. 203-220, Reprinted in Readings in Rural Settlement Geography (Varanasi : N.G.S.I., 1975), PP. 61-81.

73. Singh, Kashi N. 1972 : An Approach to the Study of the Morphology of the Indian Village in Rural Settlements in Monsoon Asia, Edited by R.L. Singh (Varanasi : N.G.S.I.), PP. 203-214.

74. Singh, O.P. 1976 : Spatial Functional System in Mirzapur District, Uttar Pradesh, the Geographer, Vol. 23, No. 1, PP. 49-64.

75. Singh, R.L.1955 B : Evolution of Settlements in the Middle Ganga Valley, Nat. Geog. Journal of India, Vol. 1, PP. 69-114.

76. Singh, R.L.1957 : Typical Rural Dwellings in the Umland of Banaras, India, Nat. Geog. Journal of India, Vol. 3, Part 2, PP. 51-64.

77. Singh, R.L.1961 : Meaning, Objectives and Scope of Settlements Geography, Nat. Geog. Journal of India, Vol. 7, PP. 12-20.

78. Singh, R.L. 1975 : Evolution of Clan Territorial Units Through Land Occupance in the Middle Ganga Valley, Nat. Geof. Journal of India, Vol.20, 1974,P.P. 1-19, Reprinted in Readings in Rural Settlement Geography (Varanasi : N.G.S.I.)P.P. 353-366.

79. Singh, R.L. et. al. 1976 : Baghelkhand Region : A Study in Population Resoruce Regionalisation and Development Modelds, Nat. Geog. Journal of India, Vol. 22, PP. 7-11.

80. Singh, R.L. And Singh, R.B. 1972 : Spatial Diffusion of Rajput Clan Settlements in a Part of Middle Ganga Valley in Rural Settlements in Monsoon Asia, Edited by R.L. Singh (Varanasi : N.G.S.I.), PP. 152-170.

81. Singh, R.N. And Pathak, R.K. 1980 : Integrated Area Development Planning : Concept and Background, National Geographer, Vol. 15, No. 2, PP. 157-171.

82. Singh. R.P.B. and Singh, U.P. 1978 : Structural Characteristics and Transformation of Village Shape in Spatial Matrix (Case of Gorakhpur District), National Geographer, Vol 13, No 2, PP. 143-154.

83. Stewart, J.Q. 1947 : Empirical Mathematical Rules Concerning the Distribution and Equilibrium of Population, Geographical Review, Vol. 37, PP. 461-485.

84. Stone, K.H. 1965 : The Development of a Focus for the Geography of Settlement, Economic Geography, Vol. 41, PP. 346-355.

85. Stone, K.H. 1968 : Multiple Scale Classification for Rural Settlement Geography, Acta Geographica, Helsinki, Vol.20, No. 22, PP. 307-328.

86. Subramanyam, N. 1926 : Rural Geography, Journal of Madras Geographical Association, Vol. 1, No. 1. PP. 118-122.

87. Thiessen, A.H. 1911 : Precipitation Averages for Large Areas, Monthly Weather Review, Vol. 39, PP. 1082-1084.

88. Tiwari, R.C. 1973 : An Appraisal of Location Theories for Rural Settlement, National Gepgrapher, Vol. 8, PP. 77-83.

89. Tiwari, R.C. 1976 : The Meaning and Scope of Settlement Geography, National Geographer, Vol. 11, No. 2. PP. 163-174.

90. Tiwari, R.C. 1979 : Spatial Distribution and Types of Rural Settlements in the Lower Ganga-Yamuna Doab, National Geographer, Vol 14, No. 2, PP. 129-146.

91 Tiwari, R.C. 1980 : Spatial Organisation of Service Centres in the Lower Ganga-Yamuna Doab, National Geographer, Vol 15, No. 2, PP. 103-124.

92. Tiwari, R.C. 1981 : Structural Characteristics and Measurements of Village Shape in the Lower Ganga-Yamuna Doab, National Geographer, Vol 16, No. 2, PP. 107-118.

93. Tiwari, R.C. 1982 : Evolution of Rural Settlements in the Lower Ganga-Yamuna Doab, National Geographer, Vol 17, No. 1, PP. 33-47.

94. उपाध्याय, विमला, 1997 : ग्रामीण विकास की दिशा में सार्थक पहल, ग्रामीण विकास समीक्षा, हैदराबाद, अंक 22, पृष्ठ 101-106 ।

95. Verma, R.V., 1982 : Spatial Reorganisation of Small Service Centres for Rural Development : A Case Study of Safipur Tahsil of Unnao District in Uttar Pradesh, Indian Journal of Regional Science, Vol. 14, No. 2, PP. 148-157.

96. Verma, R.B., 1987 : Decentralised Planning for Unified National Development, Indian Journal of Regional Science, Vol. 19, No. 1, PP. 91-94.

97. Wilkins, C.A. And Shaw, J. 1971 : Measurement of Shape Distortion in Urban Geography, Australian Geographer, Vol. 11, PP. 593-595.

98. यादव, एफ0पी0, 1998 : ग्रामीण विकास और हमारी योजनाएँ, ग्रामीण विकास समीक्षा, अंक 24, पृष्ठ 50-56 ।

99. Yadav, R.N. 1998 : Socio-Economic Profile of Village Nihalgarh, Haryana- A Case Study, Geographical Review of India, Vol. 7, No. 2, PP. 216-232.

Unpublished Ph.D. Thesis :

1. Gupta, A.K. 1993 : Analytical Study of Service Centres in Lalitpur District, Ph.D. Thesis, Bundelkhand University, Jhansi.

2. Misra, K.K. 1981 : System of Service Centres in Hamirpur District, Ph.D. Thesis, Bundelkhand University, Jhansi.

Government Publications :

1. Annual Plans of District Banda, 1994-95, 1996-97, 1998-99.
2. Credit Plan of District Banda (Lead Bank Report), 1992-93.
3. District Census Handbook of Banda, U.P. 1971 & 1981.
4. Population of Banda District, 1991, National Informatics, Centre, Census Office, Lucknow.
5. Statistical Bulletin of Banda, 1977.
6. Town & Village Directory of Banda District, 1981.